भारतीय डाकियों की सामाजिक स्थिति

डॉ० कीर्ति पाण्डेय

भारतीय डाकियों की सामाजिक स्थिति

भारतीय डाकियों की सामाजिक स्थिति

डॉ0 कीर्ति पाण्डेय



साहित्य संगम
इलाहाबाद

BHARTIYA DAKIYON KEE SAMAJIK STHITI

By : Dr. Kirti Pandey

Rs. 200=00

प्रकाशक : साहित्य संगम, नया 100, लूकरगंज, इलाहाबाद - 211 001

संस्करण : प्रथम 2001

टाइप सेटिंग : एवन स्क्रीनर, दरियाबाद, इलाहाबाद

मुद्रक : केशव प्रकाशन, इलाहाबाद

मूल्य : रुपये दो सौ मात्र

पूज्य माता-पिता
को
सादर समर्पित

अनुक्रमणिका



प्राक्कथन

किसी भी संस्था अथवा संगठन के लिये उसमें कार्यरत कर्मचारी सबसे महत्वपूर्ण साधन हैं। उसकी सफलता कर्मचारियों की कार्यकुशलता एवं सहयोग पर निर्भर है।

आज के संचार साधनों से देश के कल-कारखानों, व्यापार व विभागीय प्रशासनों के संचालन में बहुत सहायता मिलती है। ये संचार साधन तीन प्रकार के हैं :--

1. डाक सेवा 2. तार सेवा 3. रेल सेवा।

इन तीनों में डाक सेवा का महत्वपूर्ण स्थान है। डाक और डाकघर अन्तर्राष्ट्रीय एकता, विश्व बन्धुत्व और सामीप्य के सर्वसुलभ साधन के रूप में मनुष्यता के पर्याय बन चुके हैं। विश्व की इस महानतम सेवा का आदर्श वाक्य है 'अहर्निशं सेवामहे' अर्थात् दिन-रात सेवारत रहते हुए जनता की अनवरत सेवा करते रहना।

डाक विभाग का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अभिकरण डाकिया है जो गाँवों में रहने वाले, पहाड़ों की बर्फीली चट्टानों पर ड्यूटी देने वाले, रेगिस्तान के हजारों मील लम्बे मरूस्थल में निवास करने वाले व्यक्तियों तक पत्रादि पहुँचाता है।

यह उल्लेखनीय है कि भारत के सरकारी संस्थानों की सभी सेवाओं की कार्यक्षमता में गिरावट आई है और डाक सेवा भी इस नियम का अपवाद नहीं है परन्तु आज भी चिट्टियाँ तथा अन्य डाक देर-सबेर अपने गन्तव्य स्थान को पहुँच जाते हैं। यह हमारी डाक-सेवा और विशेष रूप से डाकिये की कार्य क्षमता व इसके उत्तरदायित्वपूर्ण कर्त्तव्य का परिणाम है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध समस्त गोरखपुर प्रखण्ड के अन्तर्गत कार्यरत कुल 180 डाकियों के अध्ययन पर आधारित है।

गोरखपुर डाक-प्रखण्ड के अन्तर्गत समस्त गोरखपुर जनपद व महाराजगंज जनपद में सम्मिलित हैं।

सन् 1991 की जनगणना के अनुसार जनपद की जनसंख्या 30,67280 तथा महराजगंज जनपद की जनसंख्या 16,79,342 है।

प्रस्तुत प्रबन्ध का उद्देश्य डाकियों की सामाजिक स्थिति का अध्ययन करना है। चूँकि सामाजिक स्थिति आर्थिक स्थिति पर निर्भर है, इसलिये प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत डाकियों की आर्थिक स्थिति का व्यापक रूप से अध्ययन किया गया है। इसके अतिरिक्त उनके व्यवसाय के समाजशास्त्रीय पक्ष क्या हैं, वे अपने समान व समकक्ष व्यवसाय में लगे कर्मियों की तुलना में सामाजिक व

आर्थिक दृष्टि से स्वयं को कहाँ स्थित पाते हैं, उनका व्यवसाय श्रमिक का है अथवा सफेदपोश कर्मियों का, उनके स्वास्थ्य, मनोरंजन कार्य की दशाएँ परिवार, सामाजिक प्रतिमान आदि का अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। आशा है इस सम्बन्ध में अनुसन्धानकर्तृ के निष्कर्ष उपयोगी सिद्ध होगें।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के निर्देशक पूज्य प्रो0 एस0 पी0 नगेन्द्र भूतपूर्व अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर के प्रति मैं अत्यन्त आभारी हूँ, जिनकी कृपादृष्टि से यह जटिल कार्य सम्पन्न हो सका। अपने शोध-कार्य के प्रारम्भ से अन्त तक उनके प्रभावशाली एवं अनुभवपूर्ण निर्देशन तथा प्रोत्साहन के लिए मैं उनकी आभारी हूँ।

मैं तत्कालीन विभागाध्यक्ष प्रो0 डी0 पी0 सक्सेना व प्रो0 जी0 बी0 सहाय, प्रो0 के0 के0 मिश्र के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने इस शोध कार्य के लिये सहयोग प्रदान किया है।

साथ ही मैं समाजशास्त्र विभाग के प्रो0 शिव बहाल सिंह तथा अन्य गुरुजनों के प्रति हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने शोध-विषय से सम्बन्धित अपनी विद्वतापूर्ण सलाह एवं सहयोग समय-समय पर दिया है।

मैं समस्त गोरखपुर प्रखण्ड में कार्यरत उन समस्त 180 उत्तरदाताओं के प्रति भी उनके योगदान के लिये अपना आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने इस कार्य में मुझे अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया है। इसके अतिरिक्त मैं डाक विभाग के उन समस्त अधिकारियों एवं कर्मचारियों के प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने हर प्रकार से मेरी सहायता की।

अन्त में मैं उन समस्त मित्रों एबं सहयोगियों की हृदय से आभारी हूँ जिनका सहयोग प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्राप्त हुआ है।

–डॉ0 कीर्ति पाण्डेय

भूमिका

भारतीय डाक सेवाओं ने वस्तुतः जनमानस के हृदय को आकर्षित किया है। सच बात तो यह कि भारतीय डाक सेवाओं के कर्णधार डाकिये हैं, ये मानव-शरीर में रक्त का संचरण करने वाली रक्तवाहिनियों के समान हैं जिन्हें शरीर में प्रत्येक स्थान पर समय-समय पर शुद्ध रक्त उपलब्ध कराना होता है। ठीक वैसे ही महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व का निर्वाह डाक-विभाग में कार्यरत डाकियों द्वारा पिछले डेढ सौ वर्षों से पूरी लगन, निष्ठा और ईमानदारी से किया जाता रहा है। डाक सेवा दूरस्थ स्थलों तक उपलब्ध है। समाज के प्रत्येक धनी-निर्धन वर्ग एवं विभिन्न सम्प्रदायों के मध्य समन्वय स्थापित कर निरन्तर सेवा की ओर उन्मुख होता हुआ डाक विभाग पारस्परिक सद्भावना का जागरण संदेश प्रसारित करता है। डाक सेवा निश्चय ही संस्कृति, विभिन्न विचारों के आदान-प्रदान एवं साहित्यसृजन में भी सहायक सिद्ध हुआ है। एक सामान्य पत्र भी प्रापक को वितरित हो जाना डाक-सेवा द्वारा सम्पादित महान कृत्य है।

ज्ञानवान तथा जिज्ञासु प्राणी होने के कारण ही मानव निरन्तर नवीन वस्तुओं की खोज करता है। अपनी लगन से ही शिक्षा ग्रहण करता है। अपने कार्यों द्वारा उसने पूर्ण रूप से यह स्पष्ट कर दिया है कि उसके लिये अब कुछ भी असम्भव नहीं है। मानव अपने सम्बन्धियों का समाचार जानने के लिये इच्छुक रहता है। वह चाहता है कि दूसरे के विषय में वह भी कुछ जाने तथा अपने विषय में दूसरों को बताये। इसके लिये उसने कई प्रयत्न किये। डाक प्राणाली इसी प्रयत्न का परिणाम है।

आज हमारे लिये पत्रों को भेजना और उनको प्राप्त करना एक साधारण बात मानी जाती है। अब डाक-सेवा की सुविधा प्रायः सभी को सुलभ है। इस डाक व्यवस्था का विकास अनेक वर्षों में हुआ है।

राज्यों के विभिन्न भागों में संचार सुविधाएँ बनाये रखना बहुत जरूरी था, अतः इसी आवश्यकता के फलस्वरूप डाक-सेवा प्रारम्भ हुई। वास्तव में डाक सेवा के बल पर ही सम्राट को विभिन्न क्षेत्रों के घटनाओं की जानकारी मिल पाती थी।

वैसे तो सृष्टि के आदिकाल से ही संदेश भेजने, कुशल क्षेम पूछने आदि कार्य प्रारम्भ हो चुका था। यह तो तभी प्रारम्भ हो चुका था जब आदम व हब्बा ने जन्म लिया था। प्राचीन काल में कौआ, कबूतर, चन्दा, बादल आदि सन्देश वाहक थे।

सुनियोजित संस्था अथवा डाकघर न होने से राजा-महाराजे दूत अथवा

नौकरों के माध्यम से पत्र भेजते थे। इन्हें (दूत अथवा नौकर) दुर्गम स्थानों जैसे- घने वन, नदी-नाले पर्वत आदि पार करके पहुँचना पड़ता था। इन्हें भयानक जानवरों तथा दस्युदलों का सामना करना पड़ता था। कभी-कभी तो इनकी मृत्यु तक हो जाती थी।

अब इस व्यवस्था में काफी कुछ बदल गया है। आज वायुयान, रेल तथा मोटर सेवा तीव्र गति से पत्रों को उनके सही पते पर पहुँचा देती हैं। जिस स्थान पर संचार के कोई साधन नहीं है वहाँ डाक-हरकारे आदि पहुँचाते हैं। पत्र पहुँचाने के लिये उन्हें जंगलों से गुजरना पड़ता है, पहाड़ों पर चढ़ना पड़ता है, नदियों को पार करना पड़ता है तथा जंगली पशुओं व डाकुओं से मुकाबला करना पड़ता है।

प्रत्येक देश की सरकार अपने नागरिकों को बेहतर सुविधा देने का प्रयत्न करती है किन्तु दिलचस्प बात यह है कि सरकारी तौर पर व्यवस्था आम जनता को 16वीं शताब्दी में मुहैय्या कराई जा सकी।

भारत में डाक-व्यवस्था सन् 1296 से ही शुरू है। सेना का समाचार पाने के लिये पठान शासक अलाउद्दीन ने घोड़ों व पैदल की डाक-व्यवस्था कायम की। शेरशाह ने, जिसने थोड़े काल के लिये शासन किया अपने राज्य में सड़कें बनवाकर उसके दोनों तरफ सरायें बनवाई। हर समय दो घोड़े डाक ले जाने के लिये तैयार खड़े रहते थे। अकबर के समय में (1556-1605 ई0 तक) परिवहन की व्यवस्था में और सुधार हुआ जिसमें घोड़ों के अलावा ऊँट से भी डाक जाने लगी थी। कहा जाता है कि मैसूर के राजा चिकदेव ने 1672 में ही अपने सम्पूर्ण राज्य में नियमित डाक-व्यवस्था लागू कर दी थी।

भारत में इंग्लैण्ड ने जब डाक-व्यवस्था सँभाली तो उनके लिये नागरिकों की सेवा उतनी महत्वपूर्ण नहीं थी, बल्कि उनका उद्देश्य लोगों के सन्देह पूर्वक संदेशों पर नजर रखना था, उनका दूसरा उद्देश्य आय प्राप्त करना भी था। हेनरी अष्टम ने इंग्लैण्ड में डाक व्यवस्था लागू की। बाद में उसमें काफी सुधार हुए।

1609 ई0 में सरकारी सन्देशवाहक ही पत्र ले जाने का कार्य कर सकते थे। सन् 1680 में एक लन्दन व्यापारी ने शहर तथा आस-पास के क्षेत्रों में अपनी डाक-व्यवस्था लागू की। सन् 1840 में सम्पूर्ण व्यवस्था बदल गई। अन्य देशों में भी इंग्लैण्ड की पद्धति के आधार पर ही डाक-व्यवस्था लागू की गई।

यद्यपि आज सबसे बड़ी-सेवा अमरीका की है, जहाँ कुल साढ़े सात लाख कर्मचारी कार्यरत हैं तथा वहाँ प्रतिवर्ष करोड़ पत्र डाले जाते हैं लेकिन जहाँ तक बेहतर सुविधा देने का प्रश्न है, भारत की डाक-व्यवस्था अमरीका से श्रेष्ठ मानी जाती है।

अन्य क्षेत्रों में परिवर्तन के साथ-साथ भारत की डाक-सेवा के क्षेत्र में भी परिवर्तन हुए हैं जिसमें आज वायुयान सेवा, जो कि 10 फरवरी 1911 में प्रारम्भ हुई द्वारा पत्र भेजे जा रहे हैं। इस उपलक्ष्य में एक नया डाक-टिकट भी जारी किया गया है।

डाक-विभाग संचार मन्त्रालय के अन्तर्गत आता है। सन् 1987 के आँकड़े के अनुसार इस समय एक लाख पैंतालीस हजार डाकघर हैं जिसमें 6 लाख कर्मचारी काम करते हैं तथा तैंतीस करोड़ पत्रों का वितरण प्रतिदिन होता है। उत्तर प्रदेश सरकारी सेवा का 1/8 वाँ भाग सेवा प्रदान करता है। इस प्रदेश में अट्ठारह हजार डाकघर हैं जिसके माध्यम से करीब 75 हजार कर्मचारी कार्यरत हैं। इन डाकघरों का 90 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में हैं। प्रति डाकघर औसतन 16.25 वर्ग कि0 मी0 के क्षेत्रफल में सेवा कार्य करता है तथा प्रति डाकघर छः हजार व्यक्ति इससे सेवा पाते हैं। कुल गाँवों के 14.14 प्रतिशत गाँव ऐसे हैं जहाँ डाकघर स्थित हैं, शेष गाँवों में नित्य डाक वितरण का प्रबन्ध है। इसका अर्थ यह है कि यदि वितरण के लिये डाक उपलब्ध है तो डाकिया अवश्य जाएगा।

उत्तर प्रदेश में कुल 71 हजार से भी अधिक लेटर-बॉक्स हैं जो प्रतिदिन खोले जाते हैं। गाँवों में जो डाकिया जाता है वह टिकट तथा डाक-सामग्री बेचने और रजिस्ट्री बुक करने में भी सक्षम होता है।

वर्तमान नीति के अनुसार गाँवों का ऐसा समूह जिसकी जनसंख्या 5 हजार हो और जिसके 3 कि0 मी0 के अन्दर कोई डाकघर न हो, नये डाकघर खोलने के औचित्य में आते हैं। पहाड़ी तथा पिछड़े इलाकों में इसके लिये जनसंख्या केवल 2500 होनी चाहिये। साधारण क्षेत्रों में 200 रु0 प्रतिमाह तथा पहाड़ी व पिछड़े इलाकों में 400 रु0 प्रतिमाह तक घाटे पर भी नया डाकघर खोला जा सकता है। ऐसे ही 500 जनसंख्या की आबादी पर लेटर-बॉक्स लगाने का प्राविधान है।

वितरण प्रणाली में अनुसार बड़े शहरों में दो से तीन बार डाक-वितरण की व्यवस्था है। छोटे कस्बों, ग्रामीण तथा अर्द्ध-ग्रामीण क्षेत्रों में केवल एक बार वितरण कार्य होता है। बड़े शहरों में कुछ चुने डाकघर निश्चित काल के पश्चात भी सेवा प्रदान करते हैं। डाक की इतनी बड़ी मात्रा जिसकी औसत संख्या करीब 16 प्रति व्यक्ति बनती है, देश में उपलब्ध सभी यातायात के साधनों के प्रयोग से गन्तव्य स्थान तक पहुँचाई जाती है। भारत के प्रत्येक कोने में चाहे वह राजस्थान का मरुस्थल हो, हिमालय की बर्फीली चोटी हो या उत्तर-पूर्व के घने जंगल, डाक विभाग की सेवा के क्षेत्र में आते हैं। हवाई जहाज से लेकर पैदल तक, नावों से लेकर खच्चर तक प्रत्येक साधन का प्रयोग डाक लाने व ले जाने के लिये किया जाता है। लेकिन इनमें रेल तथा बसों का ही अधिकतम प्रयोग होता है।

डाक-सेवा का मुख्य लक्ष्य डाक को द्रुतगति से सुरक्षा पूर्वक समयानुसार पहुँचाना तथा वितरित करना है किन्तु इसके अतिरिक्त धन एकत्र करने, धन का

स्थानान्तरण करने तथा अन्य स्थानीय सेवाएँ भी डाक के माध्यम से प्रदान की जाती हैं।

आधुनिक युग में पिनकोड सेवा तथा स्पीड पोस्ट सेवा द्वारा यह विभाग पत्रों को सही स्थान पर व शीघ्रता से पहुँचा रहा है। स्पीड-पोस्ट सेवा के माध्यम से जनता के कागजात, चेक, अभिलेख जिनका वजन 5 कि0 ग्रा0 तक हो शीघ्रता, सुरक्षा व गारण्टी के साथ वितरित किया जाता है। यह सेवा विदेशों के लिये भी उपलब्ध है।

सैनिक डाक सेवा के अन्तर्गत हरे रंग की वर्दियाँ पहने डाक-वितरण का कार्य करने वाले कर्मचारी थल सेना के अतिरिक्त वायु सेना तथा अर्द्ध सैनिक बलों के डाक की जरूरतों को क्षेत्र में पूरा करते हैं। उन क्षेत्रों में एफ0 पी0 ओ0 सामान्य डाक घर का लगभग सभी कार्य करते हैं। औपचारिक रूप से सेना डाक-सेवा की स्थापना पहली मार्च 1972 को की गई थी। आज इसका अपना एक इतिहास बन चुका है।

इस प्रकार डाकघर में गरिमामय गुरुतर उत्तरदायित्व का जिस शीघ्रता, कुशलता एवं सफलता से निर्वाह किया जाता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। इसीलिये इसे जनता की सेवा में रत देश के सबसे बड़े संस्थान का गौरव प्राप्त है।

पं0 जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में'' आधुनिक जगत में जो अच्छी और बुरी चीजें पैदा की हैं, उनमें डाक-प्रणाली बहुत ही लोकोपकारी प्रणाली है जो कि सारे विश्व में व्याप्त है।'' आधुनिक भारत के निर्माता का यह कथन अत्यन्त गौरवपूर्ण एवं प्रेरणादायक है'

भारतीय डाकघर का इतिहास 150 वर्ष पुराना है। इस अल्पकाल में अनेक उतार-चढ़ाव आये हैं, जनसंख्या वृद्धि, शिक्षा का प्रसार तथा देश के चतुर्मुखी विकास के साथ डाक-सेवाओं में उत्साह जनक वृद्धि हुई है। इसके द्वारा न केवल पूर्ण पतेवाली बल्कि अपूर्ण पते वाली डाक-सामग्री का भी सन्तोषजनक ढंग से निस्तारण किया जाता है।

डाक-सेवा अन्तर्राष्ट्रीय एकता, सार्वभौमिक विश्व-बन्धुत्व एवं मानवीय सामीप्य के सर्वसुलभ साधन के रूप में मनुष्यता का पर्याय बन गई है। सरकार का प्रत्येक कार्य, व्यापार, न्यूनाधिक रूप में डाक-सेवाओं से प्रभावित है।

डाक-सेवाओं के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने हेतु उसमें सुधार लाने पर विचार करने के लिये 9 अक्टूबर का दिन प्रतिवर्ष डाक-दिवस के रूप में मनाया जाता है। सन् 1874 में विश्व डाक संघ की स्थापना की गई थी। विश्व में इसे विश्व-डाक-दिवस में रूप में मनाया जाता है। डाक सेवाओं को डाकघरों के विशाल नेटवर्क के साथ अपनी तथा विश्व की जनता को एक दूसरे के करीब लाने तथा शान्ति मैत्री-भाव को प्रोत्साहन देने में महान उद्देश्य को निभाने पर गौरव होता है। डाक-दिवस का पावन-पर्व इस संकल्प हेतु प्रेरणा प्रदान करता है।

भारत सन् 1876 में अन्तर्राष्ट्रीय डाक संघ का सदस्य बना। इस प्रकार भारत से भेजी जाने वाली विदेशी डाक समस्या हल हो गई। जिन परिस्थितियों में इस संघ का जन्म हुआ था वह इसके लिये सर्वथा अनुकूल थी। डाक महासंघ का उदय विश्व डाक व्यवस्था के लिये महत्वपूर्ण कदम था, जिसका प्रसार उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। आज अन्तर्राष्ट्रीय डाक-संघ विश्व-डाक-व्यवस्था का अभिन्न अंग है।

डाक-विभाग के अन्तर्गत यदि देखा जाय तो सभी कर्मचारियों के कार्य महत्वपूर्ण हैं, किन्तु इसमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य सन्देश लाने व ले जाने वाले व्यक्ति का है। सन्देश वाहक या दूत को आज से ही नहीं प्राचीन काल से समाज द्वारा मान व स्नेह दिया जाता रहा है। डाक-विभाग में सन्देश वाहक डाकिया के नाम से जाना जाता है जिसे विभाग की तरफ से खाकी रंग की पैण्ट, कमीज व टोपी मिली होती है। कार्य की दृष्टि से उसका स्थान डाक-विभाग के कर्मचारियों में सबसे महत्वपूर्ण है। यह सबेरे से शाम तक पत्र, पैकेट, मनीआर्डर, बीमा, देहाती क्षेत्रों में टेलीग्राम एवं अन्य लिखित सन्देश घर-घर तक पहुँचाता है। डाकिये को देखकर छोटे से बड़े सभी को अपने ऐच्छिक सन्देश की याद आ जाती है जिसमें प्रसन्नता, विरह, क्लेश एवं भौतिक सुख आदि भी लालसा का भाव छिपा रहता है। लोगों की यही ललक डाकिये को सर्वप्रिय बना देती है।

इस प्रकार विभिन्न दृष्टिकोण से अवलोकन करने पर पता चलता है कि डाकिया एक सरकारी कर्मचारी होते हुए भी मानव-समाज का सेवक है जो ''अहर्निशं सेवामहे'' की भावना लिये अपने कर्तव्य पर डटा रहता है।

डाकिये के कार्य को अत्यन्त महत्वपूर्ण मानते हुए भूतपूर्व संचार-मन्त्री श्री स्टीफेन ने भोपाल में डाक-तार के उद्घाटन के अवसर पर ठीक ही कहा था कि ''अगर स्वर्ग में एक जगह खाली हो और भगवान का सभी विभागों के कर्मचारियों में से किसी एक का चयन उस जगह के लिये करना हो तो वे 'डाकिये' का ही चयन करेंगे क्योंकि उसने जीवन भर दूसरों के सन्देश घर-घर तक पहुँचाकर जो पुण्य कमाया है वह कोई दूसरा कर्मचारी नहीं कमा सकता।''

इस प्रकार डाकिया डाक-सेवा में तत्पर रहते हुए अनवरत एक महापुनीत अनुष्ठान करता रहता है। वह ''कर्मण्येवाधिकारस्ते माँ फलेषु कदाचन'' का सच्चा अनुगमन करता है।



: 1 :

समस्या का निरूपण, अध्ययन का विस्तार एवं उसकी पद्धति

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का उद्देश्य समस्त गोरखपुर प्रखण्ड व इसके अन्तर्गत उप प्रखण्डों के डाकियों की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना है। इस हेतु सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों के सम्बन्ध में डाकियों की अभिवृत्तियों को ज्ञात करने का प्रयास किया गया है। अध्ययन में आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक व्यावसायिक आदि क्षेत्रों में उनकी गतिशीलता तथा भूमिका को देखने का प्रयास किया गया है।

आज आधुनिकीकरण की प्रक्रिया तेजी से चल रही है। संचार-साधन आधुनिकीकरण का एक तरीका है। संचार साधनों के विकास से सम्पूर्ण विश्व में नवचेतना का उदय हुआ है।

19वीं शताब्दी में विश्व में विज्ञान, यातायात एवं औद्योगिकी के क्षेत्र में एक क्रान्ति हुई जो संचार साधनों द्वारा ही सम्भव हुई। राजनीतिक व आर्थिक तन्त्र में परिवर्तन हुआ, नयी मानसिकताओं का जन्म हुआ, नये दृष्टिकोण व नये व्यवहारों का देश के एक भाग से दूसरे भाग तक प्रसार हुआ और लोगों ने नगर व ग्रामीण समुदायों के अन्तर को जाना तथा जाति व भाषा के अन्तर को समझा। वे विकास के प्रति सोचने लगे। आर्थिक विकास, सामाजिक अस्थिरता और राजनीतिक परिपक्वता के प्रति लोगों में उत्सुकता हुई। ये सभी परिवर्तन आधुनिक संचार के साधनों के विकास के कारण सम्भव हुए।

भारत एक विकासमान देश है इसलिये यहाँ जनतन्त्र, समता, विषमता, कानून का शासन आदि सभी अभी अधूरे हैं। ये सभी आधुनिकता के अंग हैं। यहाँ आधुनिकीकरण का जो मूल्य है जिसे विकासमान देश ने स्वीकारा है, इसके लिये आवश्यक है कि यहाँ भी जन संचार सेवा का विकास किया जाय। इस दृष्टिकोण से हमने इसे अपने अध्ययन का विषय चुना है। हमारे देश में जहाँ भी डाक-तार सेवा आरम्भ हुई, उसने व्यक्ति से समय व दूरी को कम किया। आज भी ऐसे लोग जो गाँवों में रहते हैं उनके आधुनिकीकरण के लिये यह सेवा अत्यन्त आवश्यक है। अनेक सुविधाओं के होते हुए भी आज डाक-तार सेवा अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

यद्यपि डाक-तार सेवा आरम्भ हो रही है लेकिन आधुनिक डाक तार सेवा अंग्रेजों से प्राप्त हुई। इसने प्रतिस्पर्द्धा को बढ़ाया है। भारतवर्ष जो आधुनिकता की ओर अग्रसर हो रहा है, इस डाक व्यवस्था ने उसे आधुनिक बनाने में कितना

योगदान दिया है, इसे अध्ययन में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

डाक विभाग का सबसे महत्वपूर्ण अभिकरण डाकिया है जो हमें एक कोने से दूसरे कोने तक जोड़ता है। सम्पूर्ण डाक वितरण की व्यवस्था इन डाकियों के कन्धों पर टिकी है। डाक विभाग से इस वर्ग को हटा देने पर सम्पूर्ण डाक-व्यवस्था ठप हो जाएगी। इसीलिये हमने इसे अपने अध्ययन का विषय बनाया है। डाकिये का कार्य अत्यन्त कठिन है। यह चिलचिलाती धूप, मूसलाधार बारिश व कड़ाके की ठण्ड में भी नागरिकों के यहाँ डाक वितरण का कार्य करता रहता है। लोग अत्यन्त उत्सुकता से उसकी प्रतीक्षा करते हैं। इसका कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण होने के बाद भी अभी तक किसी ने चाहे साहित्य के क्षेत्र में अथवा अन्य किसी विषय में, अपने अध्ययन का विषय नहीं बनाया है। समाजशास्त्र में भी व्यवसायों के अनेक अध्ययन हुए हैं लेकिन डाकिये के सम्बन्ध में अभी तक कोई अध्ययन उपलब्ध नहीं है। इसलिये इस सम्बन्ध में यह अध्ययन और भी महत्वपूर्ण हो जाता है।

भारत की सम्पूर्ण डाक सेवा केन्द्रीय सरकार के नियन्त्रण में है। प्रशासनिक दृष्टि से इस विभाग का सर्वोच्च अधिकारी डायरेक्टर जनरल, नई दिल्ली है। प्रशासन की दृष्टि से पूरे भारत की डाक सेवा को डाक - परिमण्डलों में विभाजित किया गया है। 'उत्तर प्रदेश डाक परिमण्डल' पूरे उत्तर प्रदेश को मिला कर बना है। उत्तर प्रदेश में इसका सर्वोच्च अधिकारी चीफ पोस्ट मास्टर जनरल है जिसका मुख्यालय लखनऊ है। उ0 प्र0 परिमण्डल पाँच क्षेत्रीय मण्डलों में बँटा हुआ है, जिसका विभागीय अधिकारी पोस्टमास्टर जनरल है तथा इनका मुख्यालय इलाहाबाद, कानपुर, मेरठ, गोरखपुर व लखनऊ में है। ये मण्डल प्रखण्डों तथा उपप्रखण्डों में बँटे हुए हैं।

गोरखपुर प्रखण्ड गोरखपुर मण्डल के अन्तर्गत आता है। गोरखपुर प्रखण्ड व महाराजगंज जनपद सम्मिलित हैं।

गोरखपुर प्रखण्ड का अधिकारी प्रवर अधीक्षक डाक-विभाग गोरखपुर है। गोरखपुर प्रखण्ड उपप्रखण्डों में बँटा हुआ है। जिसका प्रशासन कार्य उपप्रखण्डीय निरीक्षकों के अधीन है।

डाकियों का स्थान श्रेणी के अनुसार चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों से ऊपर तथा तृतीय श्रेणी के कर्मचारियों में सबसे निम्न है।

वर्तमान समय में गोरखपुर जनपद में 6 तहसीलें, 19 ब्लाक हैं। सन् 1991 की जनगणना के अनुसार गोरखपुर जिले की जनसंख्या 30,67,280 है। इसी प्रकार महाराजगंज जिले में 3 तहसीलें, 12 ब्लाक हैं। सन् 1991 की जनगणना के अनुसार इस जिले की जनसंख्या 16,79,342 है। दोनों जिलों में गाँवों की कुल संख्या 4625 है।[1]

वर्तमान समय में गोरखपुर प्रखण्ड में दो मुख्य डाकघर, 86 उपडाकघर तथा 578 शाखा डाकघर हैं।[1] सभी शाखा डाकघर उपडाकघरों के ही अधीन है। गोरखपुर प्रखण्ड में वितरण हेतु समस्त डाक - वस्तुएँ छँटाई के लिये गोरखपुर रेलवे स्टेशन पर स्थित रेल - डाक-व्यवस्था कार्यालय में आती हैं। इस कार्यालय द्वारा मुख्य डाकघरों तथा उपडाकघरों को डाक वस्तुएँ छँटाई के बाद वितरण हेतु सीधे भेज दी जाती हैं। चूँकि उपडाकघरों के अधीन ही अनेक शाखा डाकघर भी हैं अत: इन शाखा डाकघरों की डाक-वस्तुएँ भी इनसे सम्बन्धित उपडाकघरों को ही भेज दी जाती हैं। ये उपडाकघर पुन: डाक वस्तुओं की छँटाई करके इन्हें सम्बन्धित शाखा डाकघरों को वितरण हेतु भेज देते हैं। सभी शाखा डाकघर गाँवों में ही स्थित हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति 3 कि0 मी0 की दूरी पर एक शाखा डाकघर की व्यवस्था की गई है और 5000-6000 व्यक्ति प्रति डाकघर इनसे सेवा प्राप्त कर रहे हैं। इन गाँवों में नित्य डाक वितरण का प्रबन्ध है। इसका अर्थ है कि यदि डाक बाँटने के लिये उपलब्ध है तो उस गाँव में डाकिया अवश्य जायेगा।[2]

डाक विभाग के अन्तर्गत डाक-वितरण का कार्य दो प्रकार के कर्मचारियों द्वारा किया जाता है- एक तो वे जो विभागीय डाकिये हैं, जिन्हें पोस्टमैन कहा जाता है, दूसरे वे जिन्हें अतिरिक्त विभागीय वितरण अभिकर्त्ता कहा जाता है।

विभागीय डाकिये विभाग के नियमित कर्मचारी हैं और विभाग के तृतीय-श्रेणी-कर्मचारियों के अन्तर्गत आते हैं। इनका वेतनमान 825-1200/- है। इसके अतिरिक्त इन्हें अन्य अनुमन्य भत्ते भी दिये जाते हैं।

डाक-वितरण का कार्य करने वाले अन्य दूसरे प्रकार के कर्मचारी जो अतिरिक्त विभागीय अभिकर्त्ता कहलाते हैं, की नियुक्ति पूर्णकाल के लिये न होकर अंशकालिक होती है। इन्हें कोई वेतनमान न देकर कार्य के घण्टों के अनुसार एक निश्चित भत्ता दिया जाता है। चूँकि इन वितरण-अभिकर्त्ताओं को थोड़े समय के लिये कार्य करना पड़ता है, इसलिये ये अपनी जीविका निर्वाह हेतु इस कार्य के अतिरिक्त अन्य कार्य करने के लिये स्वतन्त्र होते हैं। विभागीय डाकियों की भाँति इन्हें विभाग की तरफ से अवकाश, पेंशन, चिकित्सा-सुविधा, मकान का किराया, यूनिफार्म आदि की सुविधाएँ भी नहीं प्राप्त हैं। इसके अतिरिक्त इनकी सेवा शर्तें भी विभागीय डाकियों से भिन्न हैं।

चूँकि ये विभागीय कर्मचारी न होकर विभाग के अभिकर्त्ता (Agent) हैं तथा सेवा शर्तें भी डाकियों से भिन्न हैं, इसलिये इन्हें इस अध्ययन के अन्तर्गत सम्मिलित नहीं किया गया है। अध्ययन के अन्तर्गत केवल विभागीय डाकिये ही सम्मिलित हैं।

---

1. Classified list of Indian Post Offices 1982 P. 547, 597.
2. पत्रिका डाक संलाप (उ0 प्र0 डाक परिमण्डल परिवार की पत्रिका) जुलाई-अक्टूबर - 1987, पृष्ठ 65।

गोरखपुर प्रखण्ड व इसके अन्तर्गत उपप्रखण्डों में डाकियों की कुल संख्या 180 है। अत: यह शोध-प्रबन्ध इन समस्त 180 डाकियों की सामाजिक और आर्थिक दशा के अध्ययन से सम्बन्धित हैं। इसके अतिरिक्त इस अध्ययन के अन्तर्गत यह देखने का प्रयास किया गया है कि डाकियों के व्यवसाय के समाजशास्त्रीय पक्ष क्या हैं, सम्पूर्ण डाक-व्यवस्था में ये अपनी भूमिका किस प्रकार निभाते हैं, नगर व गाँवों को आधुनिकता से जोड़ने में उनका क्या हाथ है, ये कितना परिश्रम करते हैं, अन्य विभागों में अपने सम्मान व समकक्ष व्यवसाय में लगे हुए कर्मियों की तुलना में अपने को आर्थिक दृष्टिकोण से कहाँ स्थित पाते हैं, उनका व्यवसाय श्रमिक का है अथवा सफेदपोश कर्मियों का, इनके कार्य की दशाएँ स्वास्थ्य, मनोरंजन, परिवार, सामाजिक प्रतिमान आदि का अध्ययन करके उनके जीवन का एक समग्र चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

अध्ययन पद्धति

सामाजिक अनुसंधान की प्रक्रिया में अनेक अन्तरगुम्फित प्रक्रियाएँ पाई जाती हैं जो एक दूसरे को प्रभावित करती रहती हैं। इन कठिनाइयों को दूर करने के उद्देश्य से वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया जाता है।

अनुसंधान कार्य की पद्धति का प्रचलित सूत्र इस धारणा पर आधारित है कि अनुसंधान की विधि वैज्ञानिक पद्धति है।

वैज्ञानिक पद्धति के अन्तर्गत हमें एक स्तर से दूसरे स्तर दूसरे से तीसरे स्तर, तीसरे से चौथे इसी क्रम से होकर गुजरना पड़ता है। ये ही स्तर वैज्ञानिक पद्धति के प्रमुख चरण हैं। ये चरण निम्नलिखित हैं--

(क) कार्यकारी प्राक्कल्पना (उपकल्पना) का निर्माण।
(ख) तथ्यों का निरीक्षण एवं संकलन।
(ग) एकत्रित तथ्यों का वर्गीकरण एवं सारणीयन।
(घ) वैज्ञानिक निष्कर्षीकरण (सामान्यीकरण) एवं नियमों का प्रतिपादन।

प्रस्तुत अनुसंधान कार्य एक महत्वपूर्ण सामाजिक घटना के विषय में ज्ञान प्रदान करने तथा समझने वाला एक गहन तथा उद्देश्यपूर्ण अध्ययन है।

इस प्रकार के अनुसंधान का उद्देश्य मात्र ज्ञान अर्जित करना ही नहीं है बल्कि सामाजिक तथ्यों का आलोचनात्मक एवं वस्तुनिष्ठ विश्लेषण तथा निष्कर्ष निकाल कर एक ऐसा आधार तैयार करना है जो आगे के अनुसंधान कार्यों में उपयोगी सिद्ध हो सके।

प्रस्तुत अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धति के उपर्युक्त चरणों का प्रयोग करते हुए अध्ययन में वैज्ञानिकता लाने का प्रयास किया गया है।

अनुसंधान-अभिकल्प

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध गोरखपुर प्रखण्ड व इसके अन्तर्गत उपप्रखण्डों में कार्यरत समस्त 180 डाकियों के अध्ययन पर आधारित है। प्रस्तुत अध्ययन का

अभिकल्प गवेषणात्मक व वर्णनात्मक है।

डाक विभाग के अन्तर्गत डाकियों पर अभी तक कोई अध्ययन उपलब्ध नहीं है इसलिये इसमें उपकल्पना का निर्माण नहीं हो सका है जैसा कि इस प्रकार के अध्ययन में होना चाहिये था, इसलिये यह अध्ययन डाकियों की सामाजिक-आर्थिक दशा के अध्ययन के नये-नये क्षेत्रों में पर्दापण करता है और उससे सम्बन्धित उपकल्पनाओं के अध्ययन में सहायक होता है। इसलिये अध्ययन में गवेषणात्मक शोध अभिकल्प का प्रयोग किया गया है ताकि डाकियों के सामाजिक, पारिवारिक, वैवाहिक, व्यवसाय आदि विभिन्न क्षेत्रों में पदार्पण करते हुए उससे सम्बन्धित उपकल्पना का निर्माण किया जा सके क्योंकि गवेषणात्मक शोध-अभिकल्प का उद्देश्य समस्या का निरूपण करना होता है ताकि उस पर आधारित शोध अध्ययन सम्पादित किया जा सके।

चूँकि यह डाकियों पर किया गया प्रथम अध्ययन है तथा इस क्षेत्र में पहले कोई जानकारी नहीं प्राप्त है अतः हम इसे शुद्ध रूप से वर्णनात्मक शोध अभिकल्प नहीं बना सकते क्योंकि वर्णनात्मक-शोध अभिकल्प में हम उपकल्पना लेकर चलते हैं और प्रामाणिकता सिद्ध करते हैं लेकिन डाक विभाग से तथा डाकियों से हुई बातचीत व इसके अतिरिक्त अनुसंधानकर्त्ता के परिवार के लोगों का डाक-विभाग से सम्बन्ध होने के कारण उससे थोड़ी जानकारी अवश्य प्राप्त हुई है, अतः इस अध्ययन के अन्तर्गत हमारा शोध-अभिकल्प वर्णनात्मक भी है। वर्णनात्मक शोध अभिकल्प द्वारा प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत डाकियों की सामाजिक, पारिवारिक, वैवाहिक आदि विभिन्न दशाओं का विस्तृत चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

उपकल्पना

उपकल्पना का निर्माण वैज्ञानिक पद्धति का एक चरण है। यह एक ऐसा अनुमान अथवा कामचलाऊ निष्कर्ष है जिसकी सत्यता की परीक्षा अभी शेष है। उपकल्पना व सिद्धान्त एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है।

चूँकि डाकियों पर पहले से कोई अध्ययन उपलब्ध नहीं है इसलिये इसमें निश्चित उपकल्पनाओं को लेकर नहीं चल सकते लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि यह अध्ययन दिशाहीन तरीके से किया गया है बल्कि डाक विभाग से, डाकियों से हुई बातचीत तथा निकट के लोगों का डाक विभाग व डाकियों से सम्पर्क होने के कारण उनसे मिली सूचनाओं के आधार पर प्रस्तुत अध्ययन कुछ निश्चित, विशिष्ट मान्यताओं के साथ आरम्भ किया गया है। सार्थक निष्कर्ष को प्राप्त करने के लिये कुछ आवश्यक मान्यताओं को सामने रखना आवश्यक है। इन मान्यताओं को वैज्ञानिक भाषा में कार्यकार उपकल्पना का नाम दिया गया है।

इन मान्यताओं का मुख्य उद्देश्य अध्ययन को दिशा देना है। इनका उतना

ही महत्व है जितना उपकल्पनाओं का। जिन मान्यताओं को लेकर हम चल रहे हैं वे इस प्रकार हैं--

(क) डाकियों में कार्यकुशलता अधिक है पर पारिश्रमिक कम है।

(ख) इनकी आकांक्षाओं का स्तर निम्न है।

(ग) डाकियों में व्यवसाय के प्रति सन्तुष्टि कम है।

(घ) डाकियों में सामाज़िक गतिशीलता बढ़ी है (शिक्षा, व्यवसाय, आय आदि के क्षेत्र में)।

डाकियों को अपने भारत में होने वाले हर सामाजिक परिवर्तन ने अधूरा नहीं छोड़ा है। इससे निस्सन्देह डाकियों की स्थिति में भी परिवर्तन हुआ है, उसमें उनमें गतिशीलता बढ़ी है। स्वतन्त्रता से पूर्व उनकी जो स्थिति थी वह अब नहीं है। आज उनके बच्चे भी शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। बातों के आधार पर उपर्युक्त मान्यतायें प्रस्तुत की गई हैं।

अध्ययन का समग्र

किसी भी समूह के सम्बन्ध में तथ्य या आँकड़े एकत्रित करने की अलग-अलग पद्धतियाँ हैं। कौन सी पद्धति प्रयुक्त की जाएगी, यह अनुसन्धान की इकाइयों पर निर्भर करता है।

प्रस्तुत अध्ययन समस्त गोरखपुर प्रखण्ड के कुल 180 डाकियों के अध्ययन पर आधारित है। चूँकि इनकी संख्या बड़ी नहीं थी इसलिये इनका निदर्शन करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। अतः हमने जनगणना पद्धति के माध्यम से इनके सामाजिक-आर्थिक स्थिति का अध्ययन किया गया है। इसके द्वारा सभी डाकियों की विभिन्न दशाओं-सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक, व्यावसायिक, सन्दर्भ समूह व्यवहार आदि विभिन्न पक्षों का व्यापक रूप से अध्ययन जिस दृष्टिकोण से किया गया है, आशा है इससे उनकी सामाजिक-आर्थिक दशा पर पर्याप्त प्रकाश पड़ेगा।

अनुसन्धान की प्रविधि

अनुसन्धान की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि अध्ययन विषय के सम्बन्ध में कितनी वास्तविक व निर्भरयोग्य सूचनायें एवं तथ्य संकलित किये जाते हैं। यह सफलता सूचना प्राप्त करने के स्रोतों की विशवसनीयता पर निर्भर करती है। अतः सूचना या तथ्य के स्रोतों का सामाजिक अनुसन्धान में अत्यन्त महत्व है।

प्रस्तुत अनुसन्धान के अन्तर्गत सूचनाएँ एकत्र करने के लिये प्राथमिक एवं द्वैतीयक दोनों स्रोतों का प्रयोग किया गया है।

प्राथमिक सूचनाएँ एकत्र करने के लिये साक्षात्कार-अनुसूची प्रणाली का प्रयोग किया गया है।

द्वैतीयक सूचनाएँ प्रधान डाकघर गोरखपुर, प्रधान डाकघर कूड़ाघाट,

कार्यालय, प्रवर अधीक्षक, गोरखपुर प्रखण्ड, डाकतार चिकित्सालय गोरखपुर, डाकतार-प्रशिक्षण केन्द्र सहारनपुर तथा उत्तर प्रदेश डाक- परिमण्डल कार्यालय लखनऊ से एकत्र की गई।

क्षेत्रीय सर्वेक्षण करने के लिये साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है ताकि-अलग स्थानों पर कार्यरत विभिन्न व्यक्तियों के विचारों व सुझावों को प्राप्त किया जा सके। ऐसा सूचनाओं में वस्तुनिष्ठता लाने के लिये किया गया है।

अनुसन्धान क्षेत्र के अन्तर्गत कुल 180 डाकियों से सम्पर्क किया गया। उनसे विभिन्न विषयों पर अनेक प्रकार के प्रश्न किये गये। उनके अमूल्य टिप्पणियों तथा सुझावों को ज्ञात किया गया जिसे इस अध्ययन में सम्मिलित किया गया है। साक्षात्कार अनुसूची की प्रति प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के अन्त में सम्मिलित की गई है।

साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग साधारणतया अशिक्षित व्यक्तियों के लिये किया जाता है, किन्तु वर्तमान अध्ययन में इसे शिक्षित व्यक्तियों पर लागू किया गया है। यद्यपि इस पद्धति की अपनी कुछ सीमाएँ हैं। फिर भी यह सूचना एकत्र करने का महत्वपूर्ण उपकरण है।

जिस प्रकार की सूचना प्रस्तुत अध्ययन के लिये आवश्यक थी वह साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से प्राप्त हो गई। इसके माध्यम से डाकियों को प्रश्नों को आसानी से समझाया जा सका। अनुसूची का निर्माण करते समय उत्तरदाताओं की मनोदशा का पूरा ध्यान रखा गया है। इसमें ऐसे ही प्रश्न रखे गये हैं जिनका उत्तर उत्तरदाता आसानी से दे सकें, उन प्रश्नों को अनुसूची में नहीं रखा गया है जिनका उत्तर उत्तरदाता न दे सकें अथवा जिनसे वे नाराज हो जांय। अनुसूची में प्रश्न दो प्रकार के रखे गये हैं एक तो ऐसे प्रश्न जिनके उत्तर हाँ/नहीं में थे, दूसरे ऐसे प्रश्न जिनके उत्तर विकल्प या संख्या में थे। इस प्रकार साक्षात्कार अनुसूची को लेकर अनुसन्धानकर्ता गोरखपुर प्रखण्ड व इसके उपप्रखण्डों के डाकियों के पास गई और उनसे सम्पर्क करके भरा।

प्राप्त प्रदत्तों को एकत्र करके उन्हें विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया तत्पश्चात उन्हें सारिणीबद्ध करके शोध-प्रबन्ध लिखने में उनका उपयोग किया गया।

तालिका विश्लेषण

उत्तरदाताओं द्वारा प्रदत्त सूचनाओं को तालिका में आवृत्ति और प्रतिशत में रखा गया है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध अध्ययन के लिये चुने गये उत्तरदाताओं से प्राप्त प्रदत्तों के तालिका विश्लेषण पर ही आधारित है।

पूर्व परीक्षण

प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत साक्षात्कार अनुसूची का 10 उत्तरदाताओं पर पूर्व परीक्षण किया गया। अनुसन्धान की कुछ कमियाँ प्रकाश में आईं। पूरे साक्षात्कार के दौरान डाकियों की रूचि को कायम रखना अत्यधिक कठिन कार्य

था तथा यह काफी समय लेने वाला था। पूर्व परीक्षण के द्वारा अनुसन्धानकर्तृ साक्षात्कार-अनुसूची को अन्तिम रूप देते समय आवश्यक उचित परिवर्तन तथा दोषों व त्रुटियों को दूर करने में समर्थ हुई। अनुसूची को अन्तिम रूप देते समय पूर्व-परीक्षण से प्राप्त अनुभव का प्रयोग किया गया, प्रश्नों की संख्या तथा उनके क्रम बदलने पड़े ताकि उन्हें अधिक संक्षिप्त और स्पष्ट किया जा सके जिससे सूचनादाता उन्हें आसानी से समझ सकें। श्रमिक संघ की भूमिका को समझने के लिये साक्षात्कार अनुसूची में कुछ नये प्रश्न भी सम्मिलित किये गये।

इसमें तथ्यों के निष्कर्षीकरण में सांख्यकीय परीक्षण का प्रयोग भी किया गया है। इसके माध्यम से निष्कर्षों को व्यापक बनाने का प्रयास किया गया है।

क्षेत्र से सम्बन्धित कार्य

अनुसन्धानकर्तृ द्वारा विभिन्न शाखा डाकघरों एवं प्रधानडाकघर गोरखपुर में जाकर वहाँ कार्यरत डाकियों की कार्यप्रणाली का अवलोकन किया गया कि उन्हें जो डाक-वस्तुएँ वितरण के लिये दी जाती हैं उन्हें वे किस प्रकार अपने रजिस्टर में चढ़ाते हैं, पत्रों को किस प्रकार वितरण के लिये 'रूट-लिस्ट ऐण्ड बीट-मैप' के अनुसार क्रमबद्ध करते हैं तथा अपने बीट (वितरण-क्षेत्र) में जाने से पूर्व किस प्रकार व किस स्थान पर सामग्रियों को रखते हैं, उन्हें तथा वजनदार वस्तुओं जैसे बड़े-बड़े पार्सल आदि को वितरण के लिये किस प्रकार लेकर जाते हैं, वितरण के पश्चात पुन: कार्यालय वापस आने पर सभी डाक-वस्तुओं की वापसी को सम्बन्धित अनुभागों में कैसे देते हैं। इसके अतिरिक्त अनुसन्धानकर्तृ ने डाकियों के डाक-वितरण क्षेत्र में जाकर उनकी कार्य प्रणाली का सूक्ष्म अवलोकन किया।

इस प्रकार उत्तरदाताओं से आवश्यक सम्बन्ध स्थापित करने के पश्चात साक्षात्कार को भरा गया है। ये कार्य हिन्दी में किये गये हैं। शाखा डाकपालों, उपडाकपालों तथा प्रधान डाकघर में सहायक डाकपालों की मदद से उत्तरदाताओं से सम्पर्क स्थापित किया गया। इस प्रकार इन लोगों ने काफी सहायता की। अपने-अपने डाकघरों में इन लोगों द्वारा डाकियों को बुलाया गया तथा उनसे साक्षात्कार करने के लिये पर्याप्त स्थान दिया गया जहाँ पर उत्तरदाताओं से साक्षात्कार करके अनुसूची भरी जा सकी।

अध्ययन के दौरान कठिनाइयाँ

अनुसन्धानकर्तृ का क्षेत्र-कार्य का अनुभव यह है कि उत्तरदाताओं से सम्बन्ध स्थापित करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा क्योंकि उनमें से कुछ के मन में अनुसन्धानकर्तृ के प्रति भ्रमित विचार थे। उन्हें सन्तुष्ट करने में काफी समय लगा। कभी-कभी तो उत्तरदाताओं ने तब तक कोई सूचना नहीं दिया जब तक कि अनुसंधानकर्त्ता ने अपने विषय में यह स्पष्ट न कर दिया कि वह न तो सरकारी कर्मचारी है और न ही गुप्तचर विभाग की कोई सदस्याही।

कुछ मामलों में तो उत्तरदाताओं ने गलत सूचनाएँ दी लेकिन वे अन्य प्रश्नों के माध्यम से पकड़ ली गई। शाखा डाकपालों, उपडाकपालों तथा सहायक डाकपालों से सम्पर्क स्थापित करने में कोई परेशानी नहीं हुई।

दूसरी समस्या यह थी कि इन डाकियों के पास समय का अत्यन्त अभाव रहता था। समय निर्धारित करने के बाद भी उनके पास जाने पर एक बार जाने में पूरी अनुसूची नहीं भरी जा सकती थी क्योंकि इनकी ड्यूटी कार्यालय में बहुत कम है, क्षेत्र में ही अधिक है। कार्यालय में रहने पर भी इन्हें अनेक प्रकार के कार्य देखने पड़ते हैं। इसलिये सभी डाकियों से सम्पर्क करके अनुसूची भरने में काफी समय लगा।

तीसरी कठिनाई द्वैतीयक स्त्रोतों से सूचना एकत्र करते समय आई। समस्त सूचनाएँ स्थानीय अधिकारियों के पास न उपलब्ध होने के कारण उत्तर प्रदेश डाक परिमण्डल-कार्यालय लखनऊ से सम्पर्क स्थापित करना पड़ा। सूचना एकत्र करने में अत्यधिक कठिनाई हुई एवं अधिक समय भी व्यय करना पड़ा।

अध्ययन से सम्बन्धित अध्यायों का वर्गीकरण

प्रस्तुत शोध-अध्ययन 7 अध्यायों में विभक्त किया गया है।

ये इस प्रकार हैं :--

1. प्रथम अध्याय अध्ययन की पद्धति से सम्बन्धित हैं जिसमें डाकियों तथा डाकघर के विषय में संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत करने के अतिरिक्त वैज्ञानिक पद्धति, उसके चरण, उसका वर्तमान अध्ययन में उपयोग, अध्ययन का समग्र, समग्र का आकार, अनुसंधान की प्रविधि, शोध अभिकल्प, उपकल्पना क्षेत्र-कार्य, तालिका विश्लेषण, साक्षात्कार अनुसूची तथा वर्तमान अध्ययन में आने वाली कठिनाइयों आदि की चर्चा की गई है।
2. द्वितीय अध्याय भारतीय डाकघर के इतिहास से सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत डाक-प्रणाली की प्राचीनतम व्यवस्था से लेकर वर्तमान समय तक की डाक व्यवस्था का वर्णन किया गया है। डाकघर का प्रथम आगमन, स्वतन्त्रता से पूर्व तथा स्वतंत्रता के बाद डाकघर का स्वरूप, डाक टिकट का प्रचलन, समुद्री डाक सेवा, वी. पी. पी., बचत बैंक पिनकोड प्रणाली, स्पीड, पोस्ट-सेवा, रेल डाक-व्यवस्था का प्रचलन कब हुआ, इसकी भी चर्चा की गई है।
3. तीसरा अध्याय डाकियों की सामाजिक पृष्ठभूमि से सम्बन्धित है। इसमें डाकियों की आयु, उनकी भाषा, धर्म, धार्मिक-विश्वास, जाति, शैक्षणिक योग्यता तथा अन्य सामाजिक अवधारणाएँ जैसे अस्पृश्यता, भाग्य में विश्वास आदि पर प्रकाश डाला गया है।
4. चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत उत्तरदाताओं की पारिवारिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला गया है। इसके अन्तर्गत पारिवारिक पृष्ठभूमि का विभिन्न दृष्टिकोणों से अध्ययन किया गया है-- जैसे उनकी पारिवारिक संरचना किस प्रकार की

है अर्थात् वे एकाकी परिवारों से सम्बन्धित हैं अथवा कई पीढ़ियों वाले परिवारों से, उनकी वैवाहिक स्थिति किस प्रकार की है, वे विवाहित, अविवाहित, विधुर अथवा तलाक शुदा हैं उनका निवास स्थान कैसा है, वे ग्रामीण हैं या नगरीय, बच्चों के विवाह की आयु के सम्बन्ध में उनके क्या दृष्टिकोण हैं, इसके अतिरिक्त उनके बच्चों की शिक्षा का विवरण, शिक्षा का उद्देश्य, परिवार नियोजन आदि के सम्बन्ध में उनके विचार में उनके विचार आदि विविध विषय इसमें सम्मिलित किये गये हैं।

5. पाँचवा अध्याय डाकियों की आर्थिक पृष्ठभूमि से सम्बन्धित है। इसमें उत्तरदाताओं की आय, उनकी आय के स्रोत, व्यय, ऋण, उनमें बचत की स्थिति, आवासीय स्थिति, स्वास्थ्य, मनोरंजन पर किये जाने वाले व्यय, उनमें व्याप्त दुर्व्यसन, उनकी आदतें तथा उनके रहन-सहन के विभिन्न स्तरों का वर्णन किया गया है।
6. छठाँ अध्याय डाकियों के कार्य की दशाओं के सम्बन्ध में सूचनाएँ प्रदान करता है। इसके अन्तर्गत डाकियों के इस व्यवसाय को करने का उद्देश्य कार्यस्थल के विषय में पूर्ण विवरण, कार्यस्थल से निवास के बीच दूरी, व्यवसाय के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की कठिनाइयाँ, उनको मिलने वाली सुविधाएँ, सामान व समकक्ष व्यवसाय के कर्मियों की तुलना में अपना स्थान, अपने पेशे के प्रति दृष्टिकोण, उनके कार्य की दशाओं आदि की विस्तार से रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। इसके अतिरिक्त श्रमिक संगठन के विषय में उनके विचार और सुझाव भी इसमें प्रस्तुत किये गये हैं।
7. सातवाँ अध्याय निष्कर्ष का है, जिसके अन्तर्गत डाकियों की समस्त सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक कार्य आदि दशाओं का संक्षेप में मूल्यांकन किया गया है। इसी अध्याय के अन्तर्गत बहुत सी कमियों की ओर भी प्रकाश डाला गया है।

इस अध्याय के बाद पुस्तकों की सूची (Bibliography) तथा साक्षात्कार अनुसूची की प्रति भी लगाई गई है, जिसका प्रयोग क्षेत्र में तथ्य संकलन के लिये किया गया था।



: 2 :

भारतीय डाक-सेवा : ऐतिहासिक पुनरावलोकन

संचार माध्यमों ने विश्व में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया है। कुछ सौ वर्षों के अन्तराल में ही संचार माध्यमों ने आज पूरे विश्व को हमारे दरवाजे पर लाकर खड़ा कर दिया है। इन्हीं संचार माध्यमों में डाक प्रणाली एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

पं. जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में "Among the many things, good and bad, that the modern world has produced surely the postal system which covers the world, is one of its most beneficient activities."[1] आज डाक विभाग अन्तर्राष्ट्रीय समीप्य के सर्व सुलभ साधनों के रूप में ख्याति प्राप्त कर रहा है। शहरों से लेकर दूर-दूर तक फैले हुए गाँव, पहाड़ों व रेगिस्तानी इलाकों में भारतीय डाक विभाग ने डाक वितरण की व्यवस्था कर रखी है।

डाकघर का इतिहास संसार की दूरियों को कम करने का इतिहास है। इसका इतिहास अत्यन्त ही रोचक है। विश्व की डाक प्रणाली के उत्थान में विश्व की सबसे बड़ी डाक-सेवा की गरिमा से विभूषित भारतीय डाकघर की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। आधुनिक डाकघर की कार्य प्रणाली से पूर्व भारत में प्राचीन काल से ही समय-समय पर अनेक डाक-प्रणालियाँ प्रचलित थीं। वैदिक काल में ऋषियों द्वारा अपना संदेश विश्वसनीय व्यक्तियों के माध्यम से भेजा जाता था। रामायण और महाभारत काल में भी संदेश भिजवाने के अनेक प्रमाण मिलते हैं। राजा जनक ने सीता स्वयंवर का संदेश देश-विदेश के सभी प्रमुख राजाओं को भिजवाया था। पाण्डवों ने पाँच गाँव देने का प्रस्ताव भी दूत (श्रीकृष्ण) द्वारा ही धृतराष्ट्र को भिजवाया था। महाकवि कालिदास ने अपने अमर काव्य मेघदूत में संदेश वाहकों यानि डाकिये के रूप में मेघों की कल्पना की थी।

इतना ही नहीं संदेश व समाचारों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के ऐसे विचित्र साधनों के प्रमाण और उल्लेख आज प्राप्य हैं कि आश्चर्य होता है। अनेक आदिम जातियों में अभी भी विभिन्न संदेशों को अन्यत्र भेजने के लिये ढोल नगाड़ों और अग्नि शलाकाओं का प्रयोग किया जाता है।

चन्द्रगुप्त (322 ई. पू.) के शासन काल में पाटलीपुत्र में डाक के

---

1. रत्न प्रकाश शील द्वारा उद्धृत 'भारतीय डाकघर-रोचक इतिहास व विकास'।

आदान-प्रदान की क्या व्यवस्था थी उसका उल्लेख हमें कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलता है। इस काल में डाक के आदान-प्रदान का कार्य कबूतर करते थे। अलग-अलग गन्तव्य स्थानों के लिये अलग-अलग कबूतर होते थे जो कि पूर्णरूप से प्रशिक्षित किये जाते थे। ये कबूतर उड़ने पर अपने गन्तव्य स्थान पर ही जाकर रुकते थे। बहुत ही हल्की अँगूठियों में संदेश लिखकर रख दिया जाता था और उसे कबूतर के पंजों की जड़ों में बाँध दिया जाता था। कबूतर भेजने से पहले उसे भरपेट भोजन कराया जाता था ताकि रास्ते में वह कहीं दाना आदि देख कर नीचे न उतर आए।[1]

अशोक के शासनकाल में भी कबूतरों द्वारा डाक सेवा प्रचलित थी। उड़ीसा (तत्कालीन कलिंग प्रदेश) में कबूतरों द्वारा डाक भेजने की प्रथा आज भी जीवित है। कबूतरों द्वारा डाक-सेवा का प्रचलन हमारे देश में कुषाण काल के क़ाफी बाद तक रहा।

प्रसिद्ध अरब यात्री इब्नबतूता मुहम्मद बिन तुगलक के शासनकाल (1325-1351) में भारत आया था। सम्राट इतने प्रसन्न हुए कि उन्हें दिल्ली का काजी बना दिया। इब्नबतूता ने मुहम्मद बिन तुगलक की शासन व्यवस्था पर एक पुस्तक लिखी थी। उसने उस पुस्तक में उस समय की डाक-प्रणाली के विषय में भी प्रकाश डाला है। उस काल में शाही डाक लाने व ले जाने की दो प्रकार की व्यवस्थाएँ थीं। पहली व्यवस्था पैदल धावकों द्वारा तथा दूसरी घुड़सवारों द्वारा थी। ये धावक बहुत ही साहसी तथा राज्य के विश्वासपात्र व्यक्ति होते थे। राज्य के लगभग सभी मुख्यालयों को जाने वाली सड़कों पर तीन-तीन मील की दूरी पर कच्ची-पक्की कोठरियाँ अर्थात् डाकघर बने थे। धावक या घुड़सवार शाही दरबार की डाक पहले डाकघर पहुँचाते, वहाँ से दूसरा धावक या घुड़सवार उसे लेकर दूसरे डाकघर पर पहुँचता था। इस प्रकार वह डाक तीन-तीन मील की दूरी तय कर निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचती थी। वहाँ से शाही दरबार के नाम भेजी जाने वाली डाक भी इसी क्रम में दिल्ली तक लाई जाती थी। इस प्रकार प्रत्येक धावक को तीन मील आना, तीन मील जाना पड़ता था। डाक ले आने व ले जाने वाले ये 'दौड़ते डाकघर' इतने बहादुर होते थे कि रास्ते की प्रत्येक बाधा को काट-छाँट डालते थे। इनके एक हाथ में डाक होती थी और दूसरे हाथ में कोड़े या डण्डे में लगी घण्टियाँ होती थीं। अगले डाकघर पहुँचने से पूर्व ही ये घण्टियाँ बजाने लगते थे। घण्टियों की आवाज सुनते ही डाकघर से दूसरा युवक लपक कर डाक का थैला अपने हाथ में ले लेता था और अगले डाकघर तक पहुँचने के लिये चल पड़ता था। इस प्रकार तीन-तीन मील पर बने ये डाकघर उन दिनों सैनिक चौकियों का काम भी करते थे। साथ ही थके हुए धावकों या घुड़सवारों के आराम का भी प्रबन्ध करते थे, ताकि

1. रत्नप्रकाश शील - भारतीय डाकघर रोचक इतिहास व विकास।

डाक शीघ्र से शीघ्र और बिना किसी परेशानी के गन्तव्य तक पहुँचाई जा सके।

विदेशों में सदियों पूर्व- कुछ वर्ष पूर्व मिस्त्र में खुदाई के दौरान ऐसी पट्टियाँ मिलीं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि अपने राज्य के संदेश एक नगर से दूसरे नगर तक भेजने के लिये वहाँ प्राचीन शासकों ने ईसा से 1500 वर्ष पूर्व भी डाकिये नियुक्त कर रखे थे।

चीन में भी कुछ ऐसी प्रचीन पट्टियाँ मिली हैं, जिन्हें ईसा से लगभग 1000 वर्ष पूर्व तत्कालीन चीनी शासक ने अपने 'गवर्नरों' को पत्र के रूप में भेजा था। यूनानी इतिहासकार हैराडोटस (500 वर्ष ईसा पूर्व) ने फारस में प्रचलित डाकघर और डाक सेवा का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है--

फारस की राजधानी से राज्य के अन्य भागों में तेज घोड़ों और साँड़ों द्वारा संदेश भेजे जाते थे। दो-दो सौ मील के फासले से उनके लिये 'स्टेशन' बने थे।

ऐसा ही प्रबन्ध सिकन्दर ने अपनी डाक सेवा के लिये किया था। उसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि अधिकारी चाहे कितनी भी दूर क्यों न हो, वह उनसे निरन्तर सम्पर्क में रहता था।

महाजनी डाकघर- अनेक देशी रियासतों और रजवाड़ों में बँटा भारत मुगल काल (16 वीं शताब्दी) में पुनः एक शासन तले आना शुरू हुआ। इससे व्यापारों की परिधि बढ़ने के साथ-साथ परिवारों का भी फैलाव आरम्भ हुआ। लोगों में यात्राओं के प्रति झुकाव उत्पन्न होने लगा, सड़कों की स्थिति में भी सुधार हुआ। अकबर के शासनकाल में आगरा, लाहौर, अहमदाबाद, बनारस, पटना, ढाका, वर्दवान आदि नगरों में बड़ी-बड़ी व्यापारिक कोठियाँ और मण्डियाँ बन चुकी थीं। ईरान व अरब देशों से व्यापारिक सम्बन्ध जुड़ चुके थे। देश में एक स्थान का माल दूसरे स्थान पर जाना शुरू हो चुका था। देश के बड़े व्यापारियों को अब एक ऐसी डाक-व्यवस्था की आवश्यकता अनुभव होने लगी थी, जिसके द्वारा वे अपने दूर दराज के आसामियों और व्यापारियों से सम्पर्क कर सकें। यद्यपि सेठ साहूकारों की अपनी महाजनी डाक-सेवा मुहम्मद बिन तुगलक या उससे पहले से ही किसी न किसी रूप में चलती आई थी, तथापि वह काफी मँहगी पड़ती थी। पत्र कम पार्सल होते थे और धावकों पर खर्च अधिक आते थे।[1] अतः अधिकतर सेठ साहूकार 'शाही धावकों को ही कुछ न कुछ नजराना देकर अपनी व्यापारिक अथवा व्यक्तिगत डाक भेज देते थे। वैसे भी उन दिनों डाक लाने, ले जाने का काम साहसी लोगों का व्यवसाय बन चुका था। विभिन्न रियासतों में मिर्धा डाक सेवा, चिलका डाक और ब्राह्मणी डाक सेवा आदि कई डाक-प्रणालियाँ प्रचलित थीं। अधिकांश को राज्याश्रय भी प्राप्त थी। किन्तु कठिनाई यह थी कि उन दिनों डाक सेवा के क्षेत्र अत्यन्त सीमित थे। मुगल काल में जब आधे से अधिक भारत एक शासक (अकबर) के आधीन हो

1. भारतीय डाकघर-रोचक इतिहास और विकास- रत्न प्रकाश शील पृष्ठ-7

गया तो सुविधा की दृष्टि से सम्पन्न महाजनों ने महाजनी डाक-सेवा अधिक व्यवस्थित ढँग से शुरू कर दी। कुछ ही दिनों में जनसाधारण भी इस डाक सेवा का उपयोग करने लगा। उन दिनों डाक शुल्क की दरें निश्चित नहीं थी। डाक सेवा के अधिकारी (डाकपाल) ने जितना ठीक समझा, पैसा वसूला और डाक ले ली। इससे डाक-सेवा पर आने वाला खर्च कुछ अंशों में पूरा होने के कारण 'महाजनी डाक-सेवा' सस्ती पड़ने लगी।

शाही डाक सेवा में जहाँ साधारणतया लाल फीताशाही और भाई-भतीजावाद चलता था, वहाँ महाजनी डाक-सेवा या अन्य डाक सेवाएँ इस प्रकार की बुराईयों से दूर थीं। चूँकि महाजनी डाक सेवा से महाजनों को कुछ लाभ भी होता था, इसलिये अधिक लाभ की दृष्टि से उन्होंने जनसाधारण के लिये इसे अधिक सुविधाजन भी बनाया। महाजनी डाक सेवा के रास्ते भी सामान्यतया वही थे जो शाही डाक सेवा के थे। उन रास्तों पर बने शाही डाकघरों में आराम की सुविधा पाने के लिये, महाजनों को शासन की ओर से भी कुछ सुविधाएँ मिली हुई थीं। बदले में यदाकदा महाजनी डाक सेवा के डाकिये शाही डाकियों की सहायता भी करते थे।

उन दिनों के धावक-पत्र-वाहकों के विशेष पोशाक में घण्टियाँ सिली होती थीं जो उनके दौड़ने के साथ-साथ बजती रहती थीं। इससे उनके आस-पास ही होने का आभास मिल जाता था। आत्मरक्षा के लिये उनके पास तलवार भी होती थी और विविध बैज भी होते थे, जो एक प्रकार से उनका परिचय-पत्र कहलाते थे। उस समय की डाक सेवा में धावक, घुड़सवार और अन्य सवारियों के साथ-साथ घोड़ा-गाड़ी, ऊँट-गाड़ी और बैलगाड़ी भी जुड़ गई थी। इस प्रकार डाक सेवा का रूप किसी भी काल में कुछ भी रहा हो, इसका उपयोग वर्तमान डाक प्रणाली के उदय तक सदा ही समर्थ और अधिकार प्राप्त व्यक्ति के लिये होता आया था।

उपर्युक्त उपलब्धियों से स्पष्ट है कि संदेश भेजने की दो विधियाँ अनादि काल से हमारे देश में प्रचलित थीं, प्रथम विधि स्वर अथवा संकेत द्वारा अपनी बात दूसरों तक पहुँचाने की, दूसरी विधि थी लिखित या अंकित शब्दों द्वारा अपनी बात दूसरों तक पहुँचाने की। दोनों विधियों के माध्यम चाहे जैसे भी रहे हों लेकिन उनके उद्देश्य एक ही थे। पहली विधि में जहाँ संदेश भेजने वाले की भावना के अनुसार सही और पूरी बात गन्तव्य तक पहुँच पाने में अनिश्चतता रहती थी, वहाँ दूसरी विधि में ऐसी कोई अनिश्चतता नहीं थीं। फिर जैसे-जैसे सम्बन्धों का विस्तार हुआ, पहली विधि अपनी सीमित क्षमता के कारण गौण होती गई और दूसरी विधि महत्व पाती गई। लिपि और कागज के आविष्कार ने भी दूसरी विधि के प्रचार-प्रसार में भारी योगदान दिया।

सन्देश भेजने की ये पुरानी डाक पद्धतियाँ आज भी किसी न किसी रूप

में जीवित हैं। आज भी अनेक क्षेत्रों में ब्राह्मण अथवा नाई द्वारा संदेश प्रेषित किये जाते हैं। युद्ध के समय संदेश भेजने के लिये कबूतरों का उपयोग भी होता है। देश के दुर्गम क्षेत्रों में अभी भी धावक-डाक-सेवा या घुड़सवार-डाक-सेवा यानि 'दौड़ते डाकघर' प्रचलित हैं। यही नहीं डाक-सेवा में आज ऊँट (राजस्थान में), खच्चर (दार्जिलिंग आदि पर्वतीय क्षेत्रों में) और नौकाएँ (कश्मीर में केरल आदि में) भी शामिल हो गई हैं।

पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त तक दुनिया की परिधि में व्यापक विस्तार हुआ। कोलम्बस ने अमेरिका की खोज की (1942), पुर्तगाली नाविक वास्को-डि-गामा ने भारत के समुद्री मार्ग का पता लगाया। (1948), यूरोप में सामाजिक चेतना जागृत हुई आवागमन बढ़ा। ऐसी स्थिति में सूचना पाने और समाचार भेजने की आवश्यकताएँ भी बढ़ गई।

अब ब्रिटेन व यूरोपीय देशों में डाक जैसी किसी व्यवस्था की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी लेकिन फिर भी शासकों और अमीरों के प्रयोग की ही वस्तु रही। सामान्य जनता इससे लाभ उठाने की स्थिति में नहीं थी। उन दिनों पत्र केवल अमीर व्यक्ति ही भेज सकते थे। आज के पोस्टकार्ड जितने एक पत्र का शुल्क उन दिनों कम से कम एक रुपया था, जो आज के 20-25 रुपयों से भी अधिक था।[1]

भारत में डाकघर का आगमन- सन् 1600 में अंग्रेज व्यापारी भारत आए। सन् 1615 में सर थामस रो नामक ब्रिटिश दूत जहाँगीर के दरबार में आया। अपने साथ वह इंग्लैण्ड के राजा जेम्स प्रथम का एक पत्र भी लाया था। जहाँगीर से उसने सूरत में मुक्त व्यापार करने का फरमान प्राप्त कर लिया। इस प्रकार अंग्रेज व्यापारियों की संस्था 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' ने सन् 1619 तक सूरत, आगरा, भड़ौच और अहमदाबाद में अपनी व्यापारिक कोठियाँ खोल लीं। सन् 1639 में कम्पनी की कोठियाँ मद्रास में और 1688 के बीच कलकत्ता में भी खुल गईं।

उस समय 1635 तक ब्रिटेन में डाक-व्यवस्था का पुनर्गठन हो चुका था, वह गतिशील और कम खर्चीली बन चुकी थी, रात दिन काम करने लगी थी। पत्र आदि 120 मील प्रतिदिन की गति से भेजे जाने लगे थे। सन् 1660 में वहाँ पर प्रथम महाडाकपाल (पोस्ट मास्टर-जनरल) की नियुक्ति हो चुकी थी और विलियम डोकबरा ने 'लंदन पोनी पोस्ट', नाम से राज्य पोषित डाक सेवा के समानान्तर एक अलग डाक सेवा (1680) भी शुरू कर दी थी। उसमें एक पौंड भार के पार्सल पर केवल एक शिलिंग शुल्क लिया जाता था। उस पर मुकदमा चला। 'लंदन-पेनी-पोस्ट' सेवा राज्य घोषित डाकघर में (1682) मिला दी गई। जब ब्रिटेन में यह सब चल रहा था तब भारत में 'ईस्ट-इण्डिया कम्पनी'

---

1. डाक पत्रिका-डाक विभाग का त्रैमासिक जरनल।

व्यापार के साथ-साथ समूचे देश को हड़पने के सपने देख रही थी। साम, दाम, दण्ड भेद आदि नीतियों से उसने मुगल शासकों के अनेक अधिकारियों और देश के कई 'दबदबे वालों को अपने पक्ष में कर लिया था। उसकी कोठियों के साथ-साथ व्यापार का यथेष्ट विस्तार भी हो रहा था। सुरक्षा के नाम पर उसके पास छोटी-मोटी सेना भी तैयार हो रही थी। चार्ल्स द्वितीय के अधिकार पत्र (1661) के अनुसार उसे अपनी कोठियों और कारखानों की सुरक्षा के लिये ब्रिटेन से सैनिक जहाज़, सैनिक और गोला-बारूद मँगाने का अधिकार प्राप्त हो गया था। परेशानी थी तो बस यह कि 'कम्पनी' के सभी केन्द्रों में आपसी तालमेल का अभाव था। एक केन्द्र के सन्देश दूसरे केन्द्र पर भेजने में कम्पनी के अंग्रेज अधिकारियों को तत्कालीन 'महाजनी' अथवा 'शाही' डाक-सेवा का ही सहारा लेना पड़ता था। सदा भय रहता था कि उनकी कूटनीति का भण्डाफोड़ न हो जाय। भारतीयों द्वारा चलायी जाने वाली डाक-सेवा और भारतीय डाकियों पर उन्हें रत्ती भर विश्वास न था। सम्भवतया इसी विचार ने कम्पनी को अलग डाक-सेवा आरम्भ करने पर विवश किया।[1]

प्रथम भारतीय (कम्पनी) डाकघर का स्वरूप

सन् 1688 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपनी पृथक् डाक-सेवा का श्रीगणेश ही कर डाला। इसके लिये बम्बई में एक डाकघर खोला गया। उसमें यह व्यवस्था की गई कि पहले कम्पनी की सारी डाक वहाँ जमा होगी, फिर वहीं से गन्तव्य स्थान पर भेजी जायेगी। वहीं पर बाहर से आने वाली सारी डाक भी ली जायेगी। इस प्रकार सही रूप और अर्थों में ऐसे प्रथम डाकघर की स्थापना हुई जिसमें थोड़ी बहुत व्यवस्था थी। यद्यपि इस नई डाक-व्यवस्था में भी जिसे कम्पनी डाक-सेवा का नाम दिया गया, डाक-धावक या घुड़सवार ही लाते, ले जाते थे। फिर भी उसके प्राप्त करने और प्रेषित करने का स्थान एक होने से उसे व्यवस्था मिली।

जैसे-जैसे कम्पनी के इरादे और व्यापार बढ़ते गये, देश के कम्पनी शासित अन्य प्रमुख नगरों में भी ऐसे ही डाकघर स्थापित किये जाने लगे। सन् 1766 में लार्ड क्लाइव ने एक आदेश जारी किया कि सारी डाक गवर्नमेन्ट हाउस (कलकत्ता) ही से भेजी जाए। इस काम के लिए एक डाकपाल और उसके एक सहयोगी की नियुक्ति की गई। वे दोनों प्रतिदिन रात्रि में गवर्नमेन्ट हाउस आते, आती हुई डाक को छाँटते और गन्तव्य स्थान पर भेजने का प्रबन्ध करते थे। विभिन्न स्थानों की डाक अलग-अलग थैलों में भेजी जाती थी। इन थैलों को कम्पनी की सील लगाकर बन्द किया जाता था और उन्हें खोलने का अधिकार केवल कोठियों-कारखानों के मुख्य अधिकारी अथवा अधिकृत प्रतिनिधि को ही होता था।[2]

---

1. बी. बी. यादव- (लेख) 'डाक इतिहास के आइने में'।
2. केन्द्र वाणी- डाक-तार प्रशिक्षण केन्द्र, सहारनपुर की पत्रिका।

डाक के इन थैलों को क्रम संख्या दी जाती थी। प्रत्येक थैले पर एक कागज चिपका होता था। उस थैले को भेजने का समय और तारीख एवं उसमें बन्द पत्रों और पार्सलों की संख्या लिखी होती थी। थैला पाने वाले को उसकी प्राप्ति रसीद उस क्षेत्रों के अधिकृत प्रतिनिधि को भेजनी होती थी, जिस क्षेत्र से वह डाक-थैला भेजा गया था। यदि कोई थैला अथवा उसमें बन्द पार्सल गायब हो जाता था तो उसे लाने, ले जाने वाले 'डाकिए' को सजा दी जाती थी। डाक लाने व ले जाने वाले मार्ग में पड़ने वाले गाँवों के जमींदारों और भूमिधरों को भी आदेश था कि वे अपने-अपने क्षेत्र में डाक-धावकों की सुरक्षा और सुविधा का ध्यान रखे तथा तेज गति से डाक लाने और ले जा सकने वाले धावकों का प्रबन्ध भी करें। इसके साथ ही जनता की सहानुभूति प्राप्त करने के लिये कम्पनी ने अपने डाकघरों पर अन्य लोगों की डाक ले जाने की रोक भी न लगाई।

इस सुविधा से जन साधारण के लिये भी दूर-पास बसे अपने परिवार के सदस्यों को पत्र भेजने का मार्ग प्रशस्त कर दिया। वे कम्पनी के डाक-धावकों या उनका प्रबन्ध करने वाले अधिकारियों, जमींदारों अथवा भूमिधरों को कुछ नकदी देकर अपनी डाक भी भिजवाने लगे। इस प्रकार शुल्क लेकर डाक भेजने का एक नया रास्ता खुला।

ब्रिटिश भारत में नियमित डाक सेवा का संस्थापक लार्ड क्लाइव ही था। उसी के लगाये पौधे ने बाद में जाकर भारतीय डाकघर का विशाल रूप धारण किया। उससे पहले भी भारत में डाक-सेवा धावकों या घुड़सवारों के बल पर चलती थी किन्तु क्लाइव ने उस व्यवस्था को सुगठित रुप दिया। डाकियों पर व्यय करने वाले जमींदारों और भूमिधरों को लगान में उसने पर्याप्त छूट भी दी।

क्लाइव ने सबसे पहले बंगाल की डाक व्यवस्था (1766) ठीक की, इसके बाद उन प्रान्तों की, जिनमें उस समय तक कम्पनी का शासन हो चुका था। वह और भी कुछ करता, इससे पूर्व ही अस्वस्थता के कारण वह ब्रिटेन (1776) लौट गया।

नियमित डाक-सेवा- सन् 1770 में स्थल मार्ग से डाक ले जाने के लिये मद्रास से कलकत्ता तक नियमित डाक-सेवा प्रारम्भ की गई। इसके अन्तर्गत इस मार्ग पर साप्ताहिक डाक-सेवा प्रारम्भ हुई। इसी प्रकार की एक दूसरी डाक-सेवा सन् 1775 ई0 में मद्रास और बम्बई के बीच शुरु की गई।

वारेन हेस्टिंग्ज के गवर्नर काल में (1772-85) सरकारी डाक के साथ-साथ कुछ सीमा तक जनता की डाक भी अधिकृत रूप में स्वीकार की जाने लगी। उस समय तक भी ऐसी डाक का कोई निर्धारित शुल्क न था। यह भी आवश्यक न था कि किसी की डाक को भेजने के लिये स्वीकार ही किया जाय। डाक-भेजने के लिये लेना या न लेना डाकपाल की मर्जी पर निर्भर था।



जिला डाक-सेवा- अब तक डाक-अधिकारियों को ही यातायात, धावकों और उनके रहने आदि का प्रबन्ध करना पड़ता था। 31 मार्च, 1774 को वारेन हेस्टिंग्ज ने डाक-सेवा के इस समूचे कार्य का पुनर्गठन किया। डाक-सेवाओं के प्रबन्ध के लिये पोस्ट मास्टर जनरल की नियुक्ति की गई और पहली बार प्रति सौ मील (160 कि0 मी0) की दूरी के लिये दो आने के मूल्य वाले तांबे के टिकट सिक्के शुल्क रूप में निर्धारित किये गये। उसे डाक भेजने वाले को चुकाना होता था।

सन् 1774 में दूरी के हिसाब से डाक-शुल्क वसूल करने के लिये ताँबे के जो टिकट-सिक्के जारी किये गये थे, वे दो आने और एक आने मूल्य के थे। उन पर अंग्रेजी में 'पटना-पोस्ट' शब्द अंकित होते थे। इस अद्भुत टिकट की डिजाइन भारत के इण्डिया सिक्योरिटी प्रेस ही ने बनाया था।[1]

यह डाक-सेवा देश के उन्हीं भागों में प्रचलित थी, जहाँ या तो कम्पनी का शासन था या जहाँ कोई अधिकारी रहता था। अतः 18 वीं शताब्दी के अन्त तक देश के कुछ भागों में जहाँ कम्पनी शासन नहीं था, डाक-सेवा धावकों या घुड़सवारों के बल पर चलती रही।

तब तक ब्रिटेन में घोड़ा-गाड़ी डाक-सेवा (1784) का प्रचलन हो चुका था। सुरक्षा की दृष्टि से उस गाड़ी के सशस्त्र सिपाही भी चला करते थे लन्दन में एडिनबर्ग तक की 43 घण्टों की उस डाक-सेवा में 42 घोड़ा-गाडियाँ व्यस्त रहती थीं। 1798 में लार्ड बैलेजली भारत का गवर्नर बनकर आया। उसके शासनकाल में कम्पनी के शासन क्षेत्र का विस्तार होने के साथ-साथ डाक सेवाओं का भी विस्तार हुआ किन्तु उसका रूप वही रहा। मुख्य उद्देश्य भी शासन की सेवा ही रही।

यह डाक सेवा देश के मुख्य नगरों (कलकत्ता, पटना, ढाका, सूरत, बम्बई, तंजौर, अहमदाबाद, लखनऊ आदि) से ही सम्बन्धित थी। अतः एक और समानान्तर डाक-सेवा का उदय हुआ। वह डाक-सेवा जिला स्तर पर थी और उसका उद्देश्य प्रत्येक जिले के मुख्यालय को जिले के शेष नगरों से जोड़ना था। इस डाक-सेवा का नियन्त्रण जिले के अधिकारी करते थे। व्यय का प्रबन्ध जमींदारों या सामान्य जनता पर कर लगाने से प्राप्त राजस्व और सरकारी सहायता से होता था। इस जिला-डाक-सेवा का मुख्य उद्देश्य था सरकारी डाक या पार्सलों का जिला स्तर पर वितरण। 'भारतीय (कम्पनी) डाकघर' की ओर से यह उन देहाती क्षेत्रों की सेवा भी करती थी, जिनमें धावक यदा-कदा ही आते जाते थे। पत्रों का वितरण पुलिस के सिपाही या गाँव के चौकीदार करते थे। यह उनसे एक प्रकार की बेगार ली जाती थी। इसका फल यह होता था कि लापरवाही से काम करने के कारण काफी पत्र बिना वितरण के रह जाते थे।

---

1. डाक पत्रिका- डाक विभाग का त्रैमासिक जरनल।

एक जैसे नियम भी नहीं थे। प्रत्येक जिला-क्षेत्र के अपने अलग नियम और कायदे-कानून थे। जिसकी जो इच्छा हुई पत्र या पार्सल के शुल्क के रूप में वसूल करता था। लोग इसके लिये कुछ कह भी नहीं सकते थे क्योंकि अन्य सरकारी विभागों की अपेक्षा उस 'डाकघर' में भ्रष्टाचार अपेक्षाकृत कम था। उनके लिये यह सन्तोष की बात थी।

लावारिस पत्रों की व्यवस्था- ऐसी डाक के बारे में भी कानून बनाया गया, जिसके पाने वाले का पता न लग पाया हो। उस नियम के अन्तर्गत ऐसे पत्र डाकघर में तीन महीने तक सुरक्षित रखे जाते थे। उन पत्रों के बारे में शासकीय गजट में विज्ञप्ति प्रकाशित की जाती थी ताकि उनके दावेदार आकर ले जांय। अट्ठारह महीने बाद उन 'लावारिस' पत्र या पैकटों को खोलकर देख लिया जाता था। यदि उनमें कोई मूल्यवान वस्तु होती थी तो उसे राजकीय कोषागार में जमा कर दिया जाता था, शेष नष्ट कर दिये जाते थे। वितरित न किये जा सकने वाले ऐसे पत्र-पार्सलों को निश्चित अवधि तक सुरक्षित रखने के लिये डाकघर के अन्तर्गत 'डेड-लेटर-आफिस' बनाया गया जो आज तक कार्यरत है।

सन् 1837 ई0 में 'पोस्टल-रेग्युलेशन-ऐक्ट-17' पारित किया गया। इस नियम के अन्तर्गत कम्पनी के राज्य में सरकार की डाक-सेवाएँ चला सकती थी। इसके लिये उसे सर्वाधिकार सुरक्षित कर लिया गया। इस प्रकार सभी स्थानों के लिये एक जैसे नियम बन गये। डाक-सेवा के विस्तार और विकास के लिये राजकीय स्तर पर सोचा जाने लगा। योजनाएँ बनने लगीं। सन् 1837 के कुछ वर्ष बाद डाकघर को अधिक सक्षम, सरल एवं दक्ष बनाने के लिये तीन व्यक्तियों-कार्टने, फारबिस तथा बीडन की एक समिति बनाई गई।[1]

अगले वर्ष उस समिति ने अपनी रिपोर्ट सरकार को दी। रिपोर्ट आधुनिक डाकघर का आधार बनी। उन्हीं तीनों की प्रस्तुतियों के आधार पर डाकघर और डाक-सेवाओं के सम्पूर्ण स्वरूप और विधि-विधान की नींव रखी गई।

1854 का वर्ष नये युग के सूत्रपात के रूप में- सन् 1854 भारतीय डाकघर के इतिहास में महत्वपूर्ण वर्ष सिद्ध हुआ। इसी वर्ष भारतीय डाकघर और उसकी गतिविधियों के राष्ट्रीय महत्व के स्तर को स्वीकार किया गया। भारत भर की डाक सेवाओं के प्रबन्ध के लिये डाक महानिदेशक की नियुक्ति की गई। श्री रिडेल भारतीय डाकघर के प्रथम महानिदेशक नियुक्त किये गये।

इतना ही नहीं कार्टने, फारबिस और बीडन की संयुक्त रिपोर्ट के आधार पर समूचे देश की डाक-सेवाओं के लिये बिल्कुल एक जैसे नियम बनाये गये। फिर भी डाक शुल्क की वसूली का रूप एक जैसा नहीं बन पाया। कहीं पर शुल्क पत्र-पार्सल भेजने वाले से लिया जाता रहा और कहीं पत्र-पार्सल पाने

---

1. डाक-संलाप- उत्तर प्रदेश डाक परिमण्डल की पत्रिका।

वाले से, कहीं पर शुल्क मुद्रा के रूप में वसूल किया जाता तो कहीं वस्तुओं के रूप में, वह भी मनमाने ढँग से।

कभी-कभी जब डाकिये को पैसे की जरूरत पड़ती थी तो वह कुछ नकली पत्र-पार्सल बनवा डालता था। उन पर धनाढ्य या सरलता से बहकाए जा सकने वाले व्यक्तियों के नाम, पते उस पर लिख कर मौज मनाते थे और मनचाहा शुल्क लेते थे। इसके विपरीत कभी-कभी ऐसा भी होता था कि पत्र पांने वाले ही 'डाकघर' को नुकसान पहुँचा देते थे। उन दिनों भारत के लगभग प्रत्येक क्षेत्र की अपनी-अपनी लिपि व भाषा थी। हिन्दी, उर्दू, तमिल, बंगला आदि प्रमुख भाषाओं की लिपियों में भी कदम-कदम पर विविधता थी। डाकघर के पास सुगमता से उपलब्ध नहीं थे जिनसे किसी भाषा व लिपि में लिखे पत्र को शीघ्र पढ़ा या पढ़ाया जा सके।

दूसरी बात यह थी कि सामान्य जनता में पता किस ढँग से लिखा जाय, इसके प्रति जागरूकता नही के बराबर थी। वैसे तो आज भी सारे पत्र भेजने वालों को पता ठीक ढँग से लिखना नहीं आता इसके लिये भारतीय डाकघर को प्रतिवर्ष काफी धनराशि 'पता ठीक लिखने' के लिये विज्ञापनों पर खर्च करनी पड़ती है। फिर उस समय जनता के अशिक्षित होने के कारण डाकघर को काफी क्षति उठानी पड़ती थी।

डाक शुल्क पत्र पाने वाले से लेने की व्यवस्था के विरोध में सर्वप्रथम इंग्लैण्ड के किद्दर मिस्टर में जन्में रोलैण्ड हिल के नाम एक अध्यापक ने आवाज उठाई। इन्होंने 'डाकघर सुधार' नामक पुस्तक लिखी (1837) इसमें इस सेवा को बेहतर बनाने के अनेक सुझाव दिया। तत्कालीन डाक व्यवस्था की कमजोरियाँ गिनाकर उन पर कड़े प्रहार किये। ब्रिटेन निवासियों ने हिल और उसकी पुस्तक का खुले दिल से स्वागत किया। हिल के विचारों को इतना व्यापक समर्थन मिला कि ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया ने उन्हें बातचीत करने के लिए बुलाया। हिल ने पूरे तर्कों के साथ महारानी के सामने अपनी योजना रखी। कागज के एक टुकड़े पर उनका चित्र बनाया। उसे गोंद से एक पत्र पर चिपका कर अग्रिम डाक शुल्क वसूलने का तरीका समझाया। उन्होंने कहा-इससे जहाँ पत्र पाने वाले पर भार नहीं पड़ेगा, वहीं डाकियों द्वारा शुल्क की हेराफेरी की संभावनाएँ भी समाप्त हो जायेंगी।

महारानी विक्टोरिया को हिल की योजना पसन्द आई। 17 अगस्त, 1837 को उन्होंने हिल की योजना 'हाउस आफ कामन्स' में रखी। योजना स्वीकार कर ली गई। मजे की बात यह थी कि हिल का दूर-पास का भी सम्बन्ध नहीं था; फिर भी उनके सुलझे दिमाग को देखकर डाक-टिकट छपवाने की पूरी जिम्मेदारी भी उनको सौंप दी गई। अक्टूबर सन् 1854 को ही पूरे भारत के लिये डाक टिकट का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। टिकटों की डिजाइन डाकघर के

ही कर्मचारी ने बनाया था और ये कलकत्ता में कैप्टन थुइलियर डिप्टी सर्वेयर जनरल द्वारा छापे गये थे। प्रारम्भ में इनका 'डाक-लेबल' था। बाद में इसका नाम डाक-टिकट रखा गया। डाक लेबल को उस समय भी आज की तरह पत्र या पार्सल पर चिपकाना पड़ता था। जिन पत्रों पर डाक लेबल नहीं चिपके होते थे, वे उस समय भी 'बैरंग' (बियरिंग) कहलाते थे और उन पर पत्र पाने वाले से डाक-शुल्क का दुगुना पैसा वसूल किया जाता था।

शुरू-शुरू में डाक लेबल बहुत अधिक लोकप्रियता प्राप्त न कर सके। यद्यपि डाकघर की ओर से इनके बारे में खूब विज्ञापन होता था, तथापि जनसाधारण को इन पर विश्वास न होता था कि उन्हें खरीद कर चिपका देने से पत्र पाने वाले को कुछ पैसा नहीं देना पड़ेगा। यही कारण था कि शुरू के वर्षों में (1854-55) में यदि दो पत्र पर डाक लेबल लगे होते थे तो एक पत्र बैरंग अवश्य होता था। किन्तु धीरे-धीरे स्थिति सुधरती चली गयी। बैरंग पत्र कम होते चले गये। यद्यपि आज तक ऐसे पत्र पूरी तरह समाप्त नहीं हुए हैं।[1]

डाक टिकटों का निरूपण तथा कैंसिलेशन- शुरू-शुरू में जब डाक टिकट का जन्म नहीं हुआ था, डाक सामग्री पर शुल्क की रसीद, डाकघर का नाम, तारीख आदि विविध सांकेतिक भाषाओं में हाथ ही से लिखी जाती थी, किन्तु डाक-टिकट के प्रचलन के बाद से उसे इस ढँग से विरूपित करने की प्रणाली का जन्म हुआ। शुरू-शुरू में ये ठप्पे, जिन पर साधारणतया पत्र प्राप्त करने की तारीख व पत्र प्राप्त करने वाले डाकघर का नाम होता था, हाथ से ही लगाए जाते थे उसके लिये निशान बना देने वाली रोशनाई का प्रयोग होता था। शुरू के विरूपणों में कलात्मकता का अभाव होता था। जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया, इसमें अपेक्षित सुधारों के साथ-साथ कलात्मकता आती गई।

हलचल मचा देने वाला डाक-टिकट- डाक-टिकट के इतिहास में अनेक डाक-टिकट ऐसे भी छपे हैं, जिन्होंने समूचे विश्व में हलचल मचा दी थी। कई अप्राप्य डाक-टिकटों का मूल्य लाखों रूपए होने के बारे में तो यदाकदा सुनाई ही देता है, उन्नीसवीं सदी के अन्त में एक डाक-टिकट ऐसा भी जारी किया गया था, जिसने विश्व के इतिहास पर अपना अनूठा प्रभाव डाला। वह टिकट प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व सन् 1904 के लगभग निकेरागुआ ने छापा था और उस पर वहाँ के एक प्रसिद्ध ज्वालामुखी के फटने का दृश्य अंकित था।

गर्वनर काल में भारतीय डाकघर- भारत की डाकघर व्यवस्था पर ब्रिटेन में हुए डाकघर सम्बन्धी प्रयोगों और खोजों का सीधा प्रभाव पड़ा। उस समय भारत पर अंग्रेजों का शासन था और भारत में मजबूत जड़ें जमाने के लिये अंग्रेज अधिकारियों को जो अपने देश ब्रिटेन की डाक प्रणाली के सम्पर्क में थे, भारत में भी एक मजबूत डाक प्रणाली की शुरू से ही आवश्यकता रही थी।

1. भारतीय डाकघर- रोचक इतिहास व विकास- रत्न प्रकाश शील।

यही कारण था लार्ड डलहौजी (1848-1856) के गवर्नर जनरल काल तक भारत में डाकघर का यथेष्ट विस्तार हुआ। तीन प्रमुख सेना मार्गों पर तीव्रगामी डाक सेवाएं शुरू की गई। पहला मार्ग था मद्रास से नैल्लौर, ओंगले, मल्कापुर, सिकन्दराबाद, गुलबर्गा, शोलापुर, पूना, खण्डाला और पनवेल होकर बम्बई तक का। 836 मील लम्बे इस मार्ग की दूरी 72 चरणों में पूरी होती थी और उस पर 6 डाकघर और 9 विश्रामगृह बने थे। डाक-धावक को यह दूरी तय करने में दस से लेकर बारह दिन लगते थे।

बम्बई-मद्रास के बीच मार्ग था- बिलारी, बीजापुर, पंढरपुर और थाना होकर। यह मार्ग 764 मील लम्बा था। 71 चरणों में पूरे होने वाले इस मार्ग पर भी डाकघर और विश्रामगृह थे। तीसरा मार्ग बंगलौर, हरिहर, धाखाड़ और पूना होकर था। 820 मील लम्बे इस मार्ग को 77 चरणों में पूरा किया जाता था। इनके अतिरिक्त अनेक और भी डाक-मार्ग थे। मैदानी क्षेत्रों में एक धावक एक बार में तीस सेर वजन की डाक और पहाड़ी क्षेत्रों में 25 सेर वज़न की डाक ले जाता था।

समुद्री डाक-सेवा का श्रीगणेश- सन् 1854 में भूमि डाक-सेवा के साथ-साथ समुद्री डाक-सेवा का भी श्रीगणेश हुआ। यह सेवा भारत, ब्रिटेन और चीन के बीच हर पन्द्रह दिन में बार शुरू की गई। इसके लिये तत्कालीन प्रमुख परिवहन कम्पनी पेनिन सुलर एवं ओरियन्टल स्टीम नेविगेशन कम्पनी से समझौता किया गया।

समुद्री डाक-सेवा का श्रीगणेश तो वस्तुतः 1854 से 77 वर्ष पूर्व ही हो चुका था, जब भारत से डाक लेकर कम्पनी का एक जहाज तुर्की के रास्ते ब्रिटेन गया था, किन्तु 1779 में यह जल मार्ग बन्द कर दिया गया।

1797 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के जहाज के 'पेंथर' को पुनः इस काम पर लगाया गया। डाक से लदे उस छोटे से जहाज ने बम्बई से स्वेज तक की दूरी 58 दिन में पूरी की थी। डाक लाने की प्रतीक्षा में 'पेंथेर' तीन माह तक स्वेज में खड़ा रहा। वापसी पर विपरीत हवाओं के कारण उसे बम्बई लौटने में 13 महीने लगे।

अगले वर्ष बम्बई और बसरा के बीच डाक-वाहक नौकाएं चलाई गईं। प्रशासनिक डाक के अलावा ये नौकाएं व्यक्तिगत डाक भी ले जाती थीं। 4 इंच लम्बे और 2 इंच चौड़े, 1/4 तोले वजन के एक पत्र का डाक शुल्क उस समय दस रूपये था और एक तोले वजन के पत्र का शुल्क 20 रुपये था। सन् 1798-99 में इस प्रकार यह अत्यन्त भारी शुल्क था। यह जनता के लिये अत्यन्त विकट था।

तब तक ब्रिटेन से काफी अंग्रेज आकर बस गये थे। वे भी इस मंहगी डाक-सेवा का भार वहन करने की स्थिति में नहीं थे किन्तु घर-परिवार से पत्र व्यवहार करने के लिए वे तड़पते थे। ऐसे ही लोगों की सुविधा और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के ब्रिटेन निदेशकों से निरन्तर सम्पर्क बनाये रखने के लिये सबसे

पहले बम्बई-यूरोप समुद्री-डाक-सेवा शुरू की गई। फिर इस सेवा को विस्तार देते हुए साप्ताहिक (1867) कर दिया गया था।

रेल डाक सेवा- भारत में रेल सेवा का आरम्भ (1853) में हुआ तो डाक-सेवा में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। पहली रेलवे बम्बई और थाना के बीच 16 अप्रैल, 1853 में शुरू हुई। यद्यपि वह केवल तीस मील लम्बी थी, किन्तु उसके पीछे ब्रिटिश शासन का उद्देश्य अपने स्वार्थी की पूर्ति अधिक था, जनता की सेवाएं कम। उन दिनों भारत का गर्वनर जनरल था लार्ड डलहौजी। वह सोचता था कि भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा और ब्रिटिश पूँजी को प्रोत्साहित करने के लिये डाक और रेल दो प्रमुख साधन हैं। इस दृष्टि से यातायात के इन दोनों साधनों का विकास किया गया। रेलों के निर्माण के लिये अंग्रेज कम्पनियों को मुँहमांगे दामों पर ठेके दिये गये। उन्हें सभी प्रकार की सुविधायें दी गईं। रेलों को चलाने व उसकी व्यवस्था करने का दायित्व भी अंग्रेजी कम्पनियों को ही सौंपा गया। आधा तोला वजन के सभी पत्रों के लिये डलहौजी ने समूचे भारत में दो पैसे का शुल्क घोषित किया। यह शुल्क पत्र भेजने वाले को देना होता था। इससे डाक-सेवा में चलती लूटमार और घूसखोरी कुछ सीमा तक रुक गई।

रेल-डाक सेवा आरम्भ करने की योजना बनाई गई। तत्कालीन रेलवे कम्पनियों की अनुबन्ध शर्तों में इस आशय की एक धारा और जोड़ दी गई कि रेलें सवारियों के साथ-साथ डाक भी ले जाया करेंगी। इससे दो लाभ हुए-एक यह कि डाक अपेक्षाकृत कम समय में एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचने लगी। धावक-सेवा से एक पत्र तीन-साढ़े तीन मील प्रति घण्टे से और घोड़ा-गाड़ी द्वारा 8-9 मील प्रति घण्टे की गति से ले जाया जाता था, वहाँ रेल-डाक से वह 20 मील प्रति घण्टे की गति से ले जाया जाने लगा। उन दिनों 20 मील प्रति घण्टे की रेलगति अधिकतम थी। दूसरा लाभ यह हुआ कि जहाँ एक धावक अधिक से अधिक 30 सेर वजन की डाक ले जा पाता था, वहाँ रेल द्वारा इससे भी कहीं अधिक वजन की डाक आने-जाने लगी।

इन वर्षों के अन्दर सन् 1863 तक इस दिशा में पर्याप्त उन्नति हुई। विभिन्न डाक-मार्ग लम्बे होने के साथ-साथ सुविधाजनक भी होते गये। पक्की सड़कें भी बनीं और डाक मार्गों पर मँडराने वाले लुटेरों का भी दमन किया गया।

सन् 1976 तक भारतीय डाकघर में अनेक उतार-चढ़ाव आये। इस बीच सबसे महत्वपूर्ण घटना यह हुई कि भारतीय डाकघर देश की सम्पूर्ण व्यवस्था के साथ कम्पनी शासन से मुक्ति पाकर सीधा ब्रिटिश सरकार के अधीन (1858) हो गया। उसके लिये ब्रिटिश डाकघर जैसी व्यवस्था और विकास की योजनाएँ बनने लगीं।

ब्रिटिश डाकघर रिपोर्ट (1870) के अनुसार वहाँ उस वर्ष 88 करोड़ पत्र डाक द्वारा वितरित किये गये। पत्र, पार्सल आदि की कुल संख्या 6 करोड़ के लगभग थी। पर्याप्त साधनों के अभाव के बावजूद तत्कालीन ब्रिटिश अधिकारियों ने भारतीय डाकघर के ढाँचे को ब्रिटेन जैसा बनाने के लिये भरसक प्रयत्न किये। उसमें अपने हितों को प्रमुखता दी। मुख्य पदों पर ब्रिटिश अधिकारी नियुक्त किये गये। विविध ठेके अंग्रेजी कम्पनियों को ही दिये गये। समितियों में भी अंग्रेज सदस्य रखे गये।

सन् 1870 में कलकत्ता के पुराने किले के अन्दर जी. पी. ओ. की स्थापना की गई। उन दिनों इंग्लैण्ड से आने वाली डाक की इतनी आतुरता से प्रतीक्षा की जाती थी कि उसके बारे में सूचनाएं कलकत्ता जी. पी. ओ. पर अलग-अलग तरह के झण्डे फहरा कर दी जाती थी। एक तरह का झण्डा इस बात की सूचना देता था कि इंग्लैण्ड से डाक बम्बई आ गई है और दूसरी तरह का झण्डा इस बात की कि डाक वितरण के लिये कलकत्ता जी. पी. ओ. में आ गई है। आजकल उन दोनों झण्डों की अनुकृतियाँ कलकत्ता संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

''सन् 1872 के आते-जाते भारत के 5,000 से अधिक जनसंख्या वाले ब्रिटिश सरकार द्वारा शासित लगभग हर नगर में एक-एक डाकघर की स्थापना की गई। ब्रिटिश भारत के अन्य नगरों और प्रमुख कस्बों में कम से कम एक-एक लेटर-बाक्स लगा दिया गया। उसकी व्यवस्था का काम उसके समीप पड़ने वाले डाकघर को सौंपा गया। उन दिनों 5,000 की आबादी भी बहुत समझी जाती थी।''[1]

देश के अन्दर की डाक-सेवा के साथ-साथ विदेशी डाक-सेवा की ओर भी ध्यान दिया गया तब पैनिनसुलर एवं ओरियन्टल स्टीम नेविगेशन कम्पनी बम्बई और ब्रिटेन के बीच पन्द्रह दिवसीय समुद्री डाक-सेवा चलती थी। उसे एक नये अनुबन्ध के अन्तर्गत साप्ताहिक कर दिया गया।

विश्व-डाक संघ- विदेशों को जाने वाली और वहाँ से आने वाली डाक की बड़ी समस्या यह थी कि उसके वितरण पर आने वाले खर्चों को वहन कौन करे। हर देश के अपने अलग-अलग कायदे कानून थे। डाक सामग्री पर लगने वाले डाक-शुल्क भी अलग-अलग थे।

उस समय मुसीबत यह थी कि काफी देशों में डाकघर का जन्म हो चुका था। देश की सीमाएं तोड़ चुकी थीं। अतः अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर किसी ऐसी व्यवस्था का होना आवश्यक हो चुका था जो विदेशों को भेजी जाने वाली डाक के मसले हल कर सके। उस समय डाक पर प्रेषक-डाकघर अलग शुल्क लेता था और उसका वितरण करने वाला डाकघर शुल्क लेता था।

---

1. केन्द्रवाणी, डाक-तार प्रशिक्षण केन्द्र, सहारनपुर।

इसी प्रकार की अनेक समस्याओं को हल करने के लिये बर्न (स्विट्जरलैण्ड) में कुछ देशों की मीटिंग हुई। (1825) में महाडाक संघ नाम की एक संस्था बनाई गई। उस संस्था ने सदस्य देशों द्वारा विदेश भेजी जाने वाली डाक-सामग्री पर इस व्यवस्था पर वहन किये जाने वाले व्यय को ध्यान में रखकर विदेशी डाक शुल्क की दरें निश्चित कीं। एक संधि पर हस्ताक्षर किये गये कि महाडाक संघ का प्रत्येक सदस्य अपने यहाँ प्राप्त किसी भी सदस्य देश की डाक का नि:शुल्क वितरण करेगा और बदले में ऐसी ही सुविधा उसे अन्य सदस्य देश देंगे। यह नियम 1 जुलाई 1875 से लागू कर दिया गया।

ब्रिटेन ने आरम्भ में इस व्यवस्था का विरोध किया किन्तु बाद में वह भी महाडाक संघ का सदस्य बन गया। इसके लगभग तीन वर्ष बाद महाडाक संघ का नाम अन्तर्राष्ट्रीय डाक संघ कर दिया गया। इसके सदस्य देशों की संख्या तीव्र गति से बढ़ती रही।

चूँकि भारत से डाक विदेशों को भेजी जानी शुरू हो गई थी इसलिये आवश्यक था कि भारत भी महाडाक संघ का सदस्य बने। ब्रिटिश सरकार ने उसी वर्ष भारतीय डाकघर की ओर से भी सदस्यता का प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया जिसे कुछ समय बाद (1876) स्वीकार कर लिया गया। भारत से भेजी जाने वाली विदेशी डाक की समस्या भी हल हो गई, यद्यपि ऐसी डाक का शुल्क कुछ बढ़ा दिया गया था। विदेशी डाक सेवा के लिए छ: आना मूल्य का प्रथम भारतीय डाक टिकट भी उसी वर्ष जारी कर दिया गया।

इसके एक वर्ष बाद 1877 में भारतीय डाकघर ने एक कदम और बढ़ाया। भारत में वी.पी.पी. प्रणाली की शुरुआत हुई। जनता पर इसका विशेष प्रभाव पड़ा। व्यापारी व जरूरतमन्द लोगों को दूर-दराज की वस्तुएँ घर बैठे मिलने लगीं। इसका प्रभाव विशेषकर ऐसे क्षेत्रों में रहने वाले लोगों पर पड़ा जो नगरों में अप्राप्य वस्तुओं को खरीदने के लिये उन्हें दूर-पास की यात्रा करनी पड़ती थी। इसमें समय व धन दोनों व्यय होता था। वी.पी.पी. सेवा के आरम्भ होने से लोग दूसरे नगरों में मिलने वाली वस्तुओं को केवल एक पत्र भेजकर मँगा सकते थे। वह वस्तु वी.पी. पार्सल से आ जाती थी। मँगाने वाला उतना पैसा चुकाकर पार्सल ले लेता। डाकघर उस पैसे में से अपना कमीशन काटकर शेष रकम वी.पी. पार्सल भेजने वाले को चुका देता था। इससे उपभोक्ता का समय और धन दोनों बचने लगे। व्यापारियों का व्यापार इससे बढ़ने लगा। इस प्रकार जनता डाकघर के समीप आती गई। आरम्भ में वी.पी. से केवल पार्सल भेजे जा सकते थे। सन् 1882 में इस प्रणाली के द्वारा पत्र भी भेजे जाने लगे। उस समय वी.पी. द्वारा रजिस्टर्ड या बिना रजिस्टर्ड हुए पार्सल भी भेजे जा सकते थे।

"वी.पी.पी. प्रणाली के अतिरिक्त मूल्यवान वस्तुओं के पार्सलों की बीमा योजना भी सन् 1877 में आरम्भ की गई। बीमा शुदा पार्सल के गायब होने

पर डाकघर को 5,000 रुपये तक की क्षतिपूर्ति का अधिकार भी दिया गया। बीमा शुदा पार्सलों को खोलने व उसमें बीमे का माल देखकर पूरी तरह आश्वस्त होने का अधिकार भी डाकघर को दिया गया, इससे इन पार्सलों में चलने वाली धोखा धड़ी कुछ सीमा तक बन्द हो गई।''[1]

धनादेश (मनीआर्डर) प्रणाली का प्रचलन– ब्रिटेन में मनीआर्डर प्रणाली सन् 1840 में ही प्रारम्भ हो चुकी थी। धीरे-धीरे वह बहुत लोकप्रिय होती गई। वहाँ की सफलता देखकर भारत में भी भारतीय डाकघरों के माध्यम से मनीआर्डर द्वारा रुपया-पैसा भेजने का प्रचलन सन् 1880 में प्रारम्भ हुआ। इसके पूर्व सन् 1879 तक यहाँ राजकीय कोषागरों के माध्यम से ही रुपये पैसे भेजे जा सकते थे। किन्तु उन दिनों (1878-79) में देश में राजकीय कोषागरों की कुल संख्या 321 थी जो जिले के मुख्यालयों तक ही सीमित थी, इसके माध्यम से लोगों को पैसा भेजने में काफी असुविधा होती थी। फिर पैसा वहाँ भेजा जा सकता था जहाँ समीप के किसी क्षेत्र में ट्रेजरी हो ताकि पैसा भेजने वाली ट्रेजरी के निर्देश पर वह उसका भुगतान कर सके। वैसे भी ट्रेजरी से भुगतान पाना सरल न था, नियमानुसार रुपये पाने वाले को सिद्ध करना पड़ता था कि वह वही व्यक्ति है जिसके नाम रुपया भेजा गया है किन्तु इस व्यवस्था के अतिरिक्त उन दिनों और कोई व्यवस्था भी न थी। व्यक्तिगत रूप से जाकर किसी को पैसा देने में अर्थ और समय दोनों व्यय करना पड़ता था। सन् 1880 में ही 5,500 भारतीय डाकघरों को रुपया पैसा भेजने तथा उन्हें पाने वालों को अदा करने का कार्य सौंपा गया। इससे विशेषकर किसान और मजदूर जनता को कई लाभ मिले। लोगों को सबसे बड़ा लाभ यह मिला कि उन्हें महाजनों और जमींदारों के हथकण्डों से मुक्ति मिल गई। उस समय प्राय: ऐसा होता था कि व्यक्तिगत रूप से कर्ज, ब्याज या लगान आदि के मद में पैसा दिये जाने पर महाजन और जमींदार अपने खातों में उसका पूरा भुगतान दर्ज नहीं करते थे। डाकघर के द्वारा धनादेश भेजने से भेजने वाले को पूरे पैसे भेजे जाने की राजकीय-रसीद मिलती थी। इसलिये उसे पाने वाले को खाते में उसे जमा दिखाना पड़ता था। इससे अनियमितता कम हुई और गरीब जनता को राहत मिली।

दूसरी बड़ी सुविधा उन किसानों को मिली जिन्हें ऐसी व्यवस्था के अभाव में जमींदारों की सेवा में स्वयं उपस्थित होकर लगान का भुगतान आदि करना पड़ता था। लगान तो वे देते ही थे, दरबारी परम्परा के अनुसार उन्हें जमींदार को नजराना भी देना पड़ता था तथा जमींदार के दरबार में उपस्थित होने के लिये अच्छे कपड़ों का प्रबन्ध भी करना पड़ता था। अब उन्हें भी बिना वहाँ पहुँचे ही लगान देने की सुविधा प्राप्त हो गई। इससे उन्हें भी राहत मिली। धनादेश द्वारा

---

1. डाक संलाप - उत्तर प्रदेश डाक परिमण्डल परिवार की पत्रिका।

पैसा भेजने से उन्हें सरकारी रसीद मिलती थी, जिससे उन्हें मालिक की रसीद के लिये तरसना नहीं पड़ता था। इसके अतिरिक्त उन किरायेदारों को भी राहत मिली जिन्हें जमीन या मकान का किराया चुकाना होता था और बदले में कोई रसीद नहीं मिलती थी। डाकघर जनता की पूरी सेवा कर सके, इसके लिये उसमें छुट्टियों की संख्या भी सीमित रखी गई।

1 अक्टूबर 1884 तक धनादेश की रकम का भुगतान डाकघर में ही होता था, बाद में उसके वितरण कार्य डाकियों को सौंप दिया गया। इसी वर्ष तार से धनादेश देने की व्यवस्था भी की गई। आरम्भ में यह व्यवस्था देश के भीतर ही चली लेकिन एक वर्ष के बाद इसे विदेशों में भी लागू कर दिया गया।

भारत के निर्धन और आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्ग के लिये ''कम मूल्य की डाक-सामग्री'' के अन्तर्गत सन् 1879 में देशज और वैदेशिक पोस्टकार्ड जारी किये गये।

रियासती डाक सेवाएँ- भारत में डाकघर का विस्तार तो हो रहा था लेकिन उन्हीं भागों में, जहाँ पर ब्रिटिश सरकार का शासन था। उस समय देश में 652 रियासतें ऐसी थीं जो इन मामलों में स्वतंत्र थीं। उनमें से अनेक की अपनी डाक-सेवा थी, उसके नियम और तरीके थे। कुछ छोटी रियासतों के डाक-टिकटों की वैधता की अवधि होती थी। उस अवधि के बीत जाने पर वे डाक टिकट स्वयं अवैध हो जाते थे। डाक-वितरण व्यवस्था भी लगभग प्रत्येक रियासत की अपनी होती थी। मेवाड़ (उदयपुर) और मालवा (ग्वालियर-इन्दौर) में ब्राह्मणी डाक व्यवस्था थी तो मारवाड़ (जोधपुर) में मिर्धा डाक व्यवस्था। ब्राह्मणी डाक के वितरण का अधिकार ब्राह्मणों को था और मिर्धा डाक के वितरण का अधिकार मिर्धाओं को। दोनों ही डाक व्यवस्थाओं में पत्र आदि का शुल्क या तो अग्रिम ले लिया जाता था या पत्र पाने वाले से वसूल किया जाता था।

लार्ड लिटन के वायसराय काल (1876-80) में इस बात पर ध्यान दिया गया कि देशी रियासतों का सहयोग लेकर समस्त भारत की डाक सेवाएँ और विभिन्न पत्र-पार्सलों की दरें एक जैसी कर दी जाएँ। लार्ड लिटन से पूर्व भारत के विभिन्न प्रान्तों में नमक कर की दरें भी भिन्न थीं। इसका कारण था कि नमक देशी रियासतों में बनाया जाता था। हर रियासत में उसका मूल्य और उस पर कर अलग-अलग था। लिटन ने इन दोनों ही मुद्दों पर देशी रियासतों से अलग-अलग बात की। किन्तु लिटन अपने कुछ कामों के लिये काफी बदनाम हो चुका था इसलिये देशी रियासतों ने यथेष्ट धन लेकर नमक बनाने के अपने अधिकार तो ब्रिटिश शासन को दे दिये, डाक-नियम एक समान बनाने में योग देने के लिये वे तैयार नहीं हुई। फलस्वरूप डाक-दरों में असमानता लार्ड रिपन (1880-1898) के आने और लार्ड लिटन के जाने तक चलती रही।

लार्ड रिपन भारत का वायसराय बन कर आया तो भारतीय डाकघर

तथा रियासती डाकघरों के सामांजस्य की चर्चा पुनः सन् 1884 में उभरी। अन्ततः इस दिशा में सफलता मिल गई। पटियाला रियासत के डाकघर ने विविध डाक सेवा के भारतीय डाक-नियमों को स्वीकार कर लिया। रियासती डाक-सामग्री का मूल्य अन्य भारतीय डाक सामग्री के मूल्य जितना ही होता था, सिर्फ उस पर रियासत का नाम छपा होता था। यह सामग्री रियासत को लागत मूल्य पर ही दी जाती थी। व्यवस्था यह थी कि रियासत की सीमाओं में डाक-सेवाओं का व्यय रियासती डाकघर और ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्रों में भारतीय डाकघर वहन करेगा लेकिन विदेशों को भेजी जाने वाली डाक-सामग्री पर रियासती नाम छपे डाक-टिकट स्वीकार नहीं किये जायेंगे। उन पर भारतीय डाकघर के ही डाक-टिकट लगाने होंगे।

इसके एक वर्ष बाद ही ग्वालियर, जींद और नामा रियासतों, 1886 में चम्बा तथा 1887 में फरीदकोट रियासतों ने इस समझौते को स्वीकार करके भारतीय डाक सेवा को ''एक समान'' रूप देने में अपना योगदान दिया। इन रियासतों के डाक-टिकटों का प्रचलन 1 जनवरी 1951 से पूर्णतया बन्द कर दिया गया।

1908 तक हैदराबाद, ग्वालियर, जयपुर, त्रावनकोर, बखानी, भोपाल, बीजावर, बूँदी, चरखारी, दतिया, ईदर इन्दौर, जसदन, किशनगढ़, मोखी, ओरछा और कोचीन आदि रियासतों को छोड़कर शेष सभी रियासतों की डाक-व्यवस्था का भारतीय डाक व्यवस्था के साथ ताल-मेल हो चुका था।

हैदराबाद रियासत की भूमिका इस मसले पर आरम्भ से ही निज़ाम की हठवादिता की शिकार रही। देश में जब तक ब्रिटिश शासन रहा, वही एक ऐसी रियासत थी जिसका अपना डाकघर था। यद्यपि उससे देशी व विदेशी डाक-विनिमय का एक समझौता भारत सरकार सन् 1883 में कर चुकी थी और उस समझौते के अन्तर्गत निजाम डाकघर द्वारा प्रेषित डाक भारतीय डाकघर द्वारा वितरण के लिये स्वीकार की जाती रही थी। फिर भी हैदराबाद शासन अपनी सीमाओं में भारतीय डाकघर का हस्तक्षेप पसन्द नहीं करता था। देश के स्वतंत्र होने पर भी एक वर्ष से अधिक समय तक जब तक स्वतंत्र भारत की सरकार ने पुलिस कार्यवाही (13 सितम्बर 1948) करके निजामशाही से रियासत को मुक्त नहीं कराया। उसका अपना डाकघर चलता रहा। नवम्बर 1948 को हैदराबाद रियासत विधिवत भारत संघ में शामिल कर ली गई और कुछ ही दिन बाद निजाम डाकघर भारतीय डाकघर में मिला दिये गये।

सन् 1881 तक ब्रिटेन में पोस्टल आर्डर का आविष्कार हो चुका था और डाक सेवाओं में मोटर-गाड़ियों का प्रयोग किया जाने लगा था। भारतीय डाकघर ने भी इस अवधि में अभूतपूर्व उन्नति की।

भारतीय डाकघर बचत बैंक- वह युग पूरी तरह सामन्त शाही का था। 1857 के स्वतंत्रता आन्दोलन को दबाया जा चुका था और सामन्तवादी

प्रवृत्तियाँ पुनः जोर-शोर से उभर चुकी थीं। चारों तरफ शोषण की नीति का बोलबाला था। गरीबों व मध्यम आय वालों की न कोई सुनने वाला था और न ही उनकी कोई आवाज थी।

उन दिनों यद्यपि कुछ बड़े शहरों में महाजनी बैंक और यूरोपियन बैंकिंग एजेन्सीज भी थीं किन्तु अधिकांश जनता के बचत-तरीके परम्परागत थे। रुपये पैसे की शक्ल में बचत बहुत ही कम लोग करते थे। अधिकांश बचत सोने व चाँदी के रूप में होती थी। लूटमार व चोरी-डाके भी उन दिनों सामान्य थे। अतः 'बचत' को सिक्कों की शक्ल में जमीन के अन्दर गाड़ कर रखने का भी प्रचलन था।

ब्रिटिश सरकार का उस समय देश में अनेक विकास योजनायें चलाने के लिए धन की आवश्यकता थी। अतः भारतीय डाकघर के तत्कालीन महानिदेशक सर फ्रेड्रिग होग्ग ने जनता के पैसों के उपयोग की एक नई योजना (डाकघर बचत बैंक) तैयार की। यद्यपि इसका प्रारूप बहुत पुराना था। कई वर्ष पूर्व भी ऐसी एक बचत योजना चलाई गई थी किन्तु होग्ग महाशय की योजना 'जनसामान्य' के अधिक अनुकूल रही। इस योजना के दो उद्देश्य थे-- पहला गरीब और मध्यम आय वाले बचतकर्त्ताओं को उन महाजनों और जमींदारों के चंगुल से बचाना जो अपने-अपने बैंक चलाते थे। लोग जितना पैसा बचाते थे उसे इन व्यक्तिगत बैंकों में महाजनों के पास जमा कर देते थे। प्रायः सभी कार्य जबानी खर्च पर चलते थे। ऐसा होता था कि वह जमा रकम पूरी की पूरी या उसका कुछ भाग महाजनों और जमींदारों द्वारा हड़प लिया जाता था।

दूसरा-- लोगों की बचत को गतिशील बनाये रखना ताकि वह बेकार न पड़ी रह कर किसी काम आती रहे।

होग्ग महाशय ने इन दोनों उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए छोटे बचतकर्त्ताओं के लिए डाकघर बचत बैंक की योजना (1882) शुरू की। तब तक डाक-सेवाओं पर जनता का पूरा विश्वास जम चुका था और सरकारी नियन्त्रण में होने के कारण वह डाकघर में जमा की गई रकम भी सुरक्षित माने जाने लगी थी। अतः धीरे-धीरे यह अनूठी बचत योजना या बैंक लोकप्रिय होने लगी। इससे जहाँ रकम को सुरक्षा मिली, वहीं सरकार को आय का एक नया साधन भी मिला। फल यह हुआ कि उस एक ही वर्ष में 39,121 खाते खुले और लगभग 28 लाख रुपया उन खातों में जमा हुआ।

जनसेवा का नया माध्यम- सन् 1892 तक ब्रिटिश भारत में भारतीय डाकघर की 10,000 से अधिक शाखाएँ थीं। लगभग इसी दशक में देश के मलेरिया के चंगुल में फँस जाने के कारण चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई। ऐसी विकट स्थिति में भारतीय डाकघर ने बहुसुलभ सरकार एजेन्सी के रूप में कार्य किया। इसके विभिन्न शाखा डाकघरों के माध्यम से मलेरिया नाशक एकमात्र

प्रभावी औषधि 'कुनैन' का सार्वजनिक वितरण किया गया। कुनैन का एक पैकेट एक पैसे की दर से बेचा गया। इस बार पहली बार भारतीय डाकघर के सार्वजनिक रूप को स्वीकारा गया।

इससे पूर्व भारतीय डाकघरों को भारत आने वाले पर्यटकों के घूमने-फिरने की भी व्यवस्था सौंपी गई। यह गर्व की बात है कि भारतीय डाकघर उस अग्नि परीक्षा में भी खरा उतरा था।

डाक प्रमाण-पत्र- कम आय वाले लोगों के लिये भारतीय डाकघर ने सन् 1897-98 में एक नया कार्य किया और जो लोग पत्र पार्सल रजिस्ट्री डाक से भेज पाने में समर्थ नहीं थे, उनके लिये डाक प्रमाण पत्र (सर्टिफिकेट आफ पोस्टिंग) की शुरूआत की गई। एक प्रमाण पत्र के अन्तर्गत 6 पत्र या पार्सल केवल आधा आना मूल्य में भेजे जा सकते थे।

जिस समय भारतीय डाकघर इन विविध योजनाओं में लगा था, यूरोप में विद्युत-संकेतों से समाचार भेजने के प्रयत्न हो रहे थे। सन् 1832 में सैम्युअल मोर्स ने विद्युत शक्ति से समाचार भेजने की संकेत लिपि का आविष्कार किया। उसे 'टेलेग्रेफिक-कोड' के नाम से जाना जाता है। 1837 में ब्रिटेन के ओस्टन और केम्डन शहरों के बीच प्रयोग के तौर पर तार के द्वारा सन्देश भेजे गये। इसके दो वर्ष बाद ही लन्दन के पेडिंगटन स्टेशन से बकिंघमशायर के स्लो तक संसार की प्रथम तार सेवा प्रारम्भ कर दी गई। आरम्भ में यह अत्यन्त मँहगी सेवा थी, अत: इसे लोकप्रियता प्राप्त करने में काफी समय लगा।

सन् 1883 में भारतीय डाकघर को भी तार सेवा से संयुक्त करने की योजना बनाई गई। इस योजना के अन्तर्गत 1 दिसम्बर सन् 1883 में भारत के सभी डाकघरों में तार-संदेश लिये जाने लगे। वर्ष के अन्त में संयुक्त रूप से कार्य करने वाले 55 तारघर अर्थात् तार संदेश लेने वाले भी और भेजने वाले भी खोले गये। इन तारघरों में कार्य करने के लिये 270 कर्मचारियों को आवश्यक प्रशिक्षण दिया गया और फिर धीरे-धीरे भारत में डाकघर-तारघर की सीमाएँ फैलती चली गईं। तार घरों की संख्या में वृद्धि के साथ-साथ उनमें प्रशिक्षित कर्मचारियों की संख्या भी बढ़ती गई। शुरू-शुरू में डाकघर व तारघर का एक जैसा कार्य करने पर भी अलग-अलग थे।

एक अप्रैल 1914 में ये दोनों विभाग एक कर दिये गये। डाक महानिदेशक के पद को डाक तार महानिदेशक के पद के रूप में परिवर्तित कर दिया गया।

प्रथम विश्व युद्ध- ''डाकघर व तारघर का एकीकरण हुए अभी पाँच माह भी व्यतीत न हो पाए थे कि संसार में प्रथम विश्व-युद्ध की चिंगारी (4 अगस्त 1914) भड़क उठी। एक ओर जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगरी, तुर्की और बुल्गारिया थे तो दूसरी ओर ब्रिटेन, फ्रांस, सर्विया, बेल्जियम, इटली, जापान और अमेरिका आदि। यद्यपि भारत उस युद्ध में शामिल नहीं था तथापि ब्रिटिश

साम्राज्य का अंग होने के कारण वह भी इस आग से न बच सका। भारतीय सैनिकों ने अन्य सैनिकों के साथ फ्रान्स, मिश्र, अफ्रीका फिलीस्तीन, मेसोपोटामिया और मकटूनिया के रणक्षेत्रों में बिना किसी शर्त के अपने जौहर दिखाए। यद्यपि उस समय देश में आजादी की माँग जोर पकड़ रही थी और कुछ राष्ट्रीय नेता विश्व युद्ध में भारतीय योगदान के विरुद्ध थे।

ऐसे भयंकर समय में भारतीय डाकघर के कन्धों पर कई उत्तरदायित्व एक साथ आए। एक ओर उसे युद्ध के अनगिनत मोर्चों पर लड़ते भारतीय सैनिकों की डाक सेवा करनी थी तो दूसरी ओर देश की भीतरी डाक सेवा भी उसी गति और तत्परता के साथ बनाये रखनी थी।''[1]

इसके अतिरिक्त भारतीय डाकघर को एक और मोर्चे पर लड़ना पड़ा। युद्ध के कारण डाकघर बचत बैंक के जमाकर्त्ताओं में भय फैल गया था। उन्होंने डाकघर से अपनी जमा रकमों को तेजी से निकालना शुरू कर दिया था। इससे 1914 के आरम्भ में जहाँ भारतीय डाकघर के बचत बैंक में जनता का 23 करोड़ रुपया जमा था, उसी वर्ष अगस्त-सितम्बर में घटकर वह 15 करोड़ रह गया था। इस प्रकार यह सरकारी अर्थ-व्यवस्था पर प्रहार था।

युद्ध जन्य वातावरण में भारतीय डाकघर की बिक्री पर भी कुछ अंशों में प्रतिकूल प्रभाव पड़ा फिर भी उसकी गतिविधियों में कमजोरी नहीं आई। सच पूछा जाये तो भारतीय डाकघर का जन्म संघर्ष काल में ही हुआ था। संघर्षों ने ही उसकी आवश्यकता को जन्म दिया था और उन संघर्षों में सफलता पाने की दिशा में भारतीय डाकघर ने सदा महत्वपूर्ण योगदान भी दिया।

प्रथम विश्व-युद्ध के दौरान सेना की डाक-सेवा को व्यवस्थित रूप देने के लिये बम्बई में सैनिक-डाक-सेवा मुख्यालय खोला गया। प्रत्येक सैनिक मोर्चे पर भी एक-एक डाकघर की व्यवस्था की गई। उन दिनों लन्दन से किसी सैनिक के नाम भेजा हुआ पत्र अगले दिन भारत में वितरित कर दिया जाता था। ऐसी ही द्रुतगामी व्यवस्था भारतीय डाकघर द्वारा भी किये जाने का प्रयास किया गया। ओर्लियान्स, मारसेल्ज, पूर्वी अफ्रीका, बसरा, एलेक्जेंडरिया जैसे दूरस्थ प्रदेशों तक में भारतीय डाकघरों को अपनी कार्यकुशलता दिखाने का अवसर इस युद्ध के दौरान मिला।

उन दिनों भारतीय डाकघर ने यहाँ के मोर्चे पर तैनात प्रत्येक भारतीय सैनिक की भारत आने वाली डाक पर से डाक-शुल्क हटा लिया था। यूरोप स्थित भारतीय और अंग्रेज युद्ध-बन्दियों को भेजने वाले पत्र-पार्सल या धनादेश पर से भी शुल्क समाप्त कर दिया गया था। इसी प्रकार भारतीय डाकघर द्वारा युद्ध-बन्दियों की भारत भेजी जाने वाली अथवा युद्ध-बन्दियों के लिए भारत आने वाली डाक सामग्री भी शुल्क-मुक्त की दी गई थी।

---

1. डाक पत्रिका- डाक विभाग का त्रैमासिक जरनल।

उस समय अधिकतर जलमार्ग युद्ध की चपेट में आ गये थे। कहीं भी किसी समय भी शत्रु के विमान नौकाओं और पानी के जहाजों पर बमबारी कर सकते थे। उस समय जल और स्थल दोनों ही मार्ग असुरक्षित थे। भारतीय डाकघर के लिये विदेशी डाक लाने वाले कई जहाज जैसे मालोजा, पर्शिया इस बमबारी में नष्ट होकर डाक सहित अथाह समुद्र में डूब गये थे। ''ससेक्स'' नाम का स्टीमर भी इस गोला-बारी का शिकार हुआ किन्तु उस पर लदी डाक बचा ली गई। भारतीय डाकघर ने युद्ध के मोर्चों पर जवानों की सेवा अपने ही बलबूते पर की। स्वयं परिवहन के साधन जुटाए, स्वयं योग्य कर्मचारियों का चुनाव किया। कुछ मामलों में तो उसे सैनिक अधिकारियों का भी सहयोग नहीं मिला। युद्ध के मोर्चों पर सेवारत अनेक कुशल कर्मचारी भारतीय डाकघर ने खोए। इस प्रकार अनेक डाक-वाहक रास्तों में होने वाली ग़ोला-बारी में मारे गये। फिर भी भारतीय डाकघर का साहस न टूटा। उल्टे युद्ध की विभीषिकाओं से जूझते और उनका सैनिक-कुशलता से सामना करने के लिये लगभग 2,000 जवानों को भारतीय डाकघर की ओर से प्रशिक्षित किया गया।

युद्ध के पूर्व संघर्ष- प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व भारतीय डाकघर को अनेक छोटे-मोटे युद्धों के दौरान साहस और कुशलता दिखाने के अवसर मिल चुके थे। 1856 के पर्शियन युद्ध के बीच भारतीय डाकघर के कर्मचारियों को सैनिकों के साथ काम करना पड़ा था। 1867 में अबीसीनिया की ओर अग्रसर सेना के साथ भारतीय डाकघर का प्रथम सेना डाकघर भी था। उस सेना डाक को घोड़ों द्वारा ले जाया जाता था और प्रत्येक डाक स्टेशन पर दो घुड़सवार तैयार रखे जाते थे ताकि पिछले स्टेशन से आए डाक के थैलों को अगले स्टेशन तक पहुँचाया जा सके। उस डाक की देखभाल के लिये सेना के अधिकारी ही नियुक्त किये जाते थे।

1871 में सीमावर्ती आक्रमणों और सन् 1877 में कोहत सीमा के निकट अफरीदी आदिवासियों के साथ सशस्त्र संघर्ष में प्रथमबार सेना-डाक-इकाइयाँ स्थापित की गईं थीं। उनका प्रबन्ध बंगाल और पंजाब के महाडाकपालों के सुपुर्द था।

दूसरे और तीसरे अफगान युद्ध (1878-80) के समय सेना परिवहन से युक्त व्यवस्थित सेना डाक-सेवा का गठन किया गया। इस युद्ध में ब्रिटिश सेना, लेफ्टिनेण्ट जनरल रोबर्ट्स के अधीन थी। झेलम पेशावर के 175 मील लम्बे दुर्गम मार्ग पर सेना-डाक-परिवहन रेलगाड़ी की व्यवस्था का सारा भार तत्कालीन महाडाकपाल लेफ्टिनेण्ट कर्नल डब्ल्यू मुरेलेन पर था। उन दिनों भी घोड़े-डाक वितरण प्रणाली के प्रमुख अंग थे।

देश के अतिरिक्त भारतीय डाकघर ने युद्ध के दिनों में माल्टा, साइप्रस, मिश्र (1882), सूडान (1855), चीन (1901), सोमालीलैण्ड (1903) और अफ्रीका (1917) में भारतीय सैनिकों और उनके परिवार जन की सेवा की।

यद्यपि प्रथम विश्व युद्ध से कई वर्ष पहले (1911) ब्रिटेन में हवाई डाक-सेवा का आरम्भ हो चुका था, तथापि भारतीय डाकघर अभी इस उपलब्धि से कोसों दूर था। वैसे भी युद्ध के समय हवाई डाक-सेवा काफी जोखिम भरा खेल था।[1] स्थल जल मार्गों के बल पर ही भारतीय डाकघर ने युद्धरत जवानों तक उनके प्रिय सम्बन्धियों के पत्र पहुँचाकर उनमें यथेष्ट उत्साह और बल भरा। इस अवधि में पोस्टकार्ड, समाचार पत्र और साधारण डाक से भेजे गये पार्सलों को छोड़कर शेष डाक-सामग्री के प्रेषण में यथेष्ट कमी आ गई थी।

डाकघर नकदी पत्र– प्रथम विश्वयुद्ध में धन और शक्ति दोनों नष्ट हुए। ब्रिटेन की आर्थिक स्थिति असन्तुलित होने लगी। फलस्वरूप भारतीय डाकघर पर एक बोझ आ पड़ा। सरकारी खजाने के लिये पर्याप्त धन एकत्र करने के लिये उसने 1 अप्रैल, 1917 को युद्ध ऋण-पत्र (वार-लोन-बॉड्स) और पंचवर्षीय नकदी पत्र (फाइव-ईयर्स-कैश-सर्टिफिकेट्स) जारी किये।

पहले ही वर्ष में पंचवर्षीय नकदी-पत्रों से भारतीय डाकघर में लगभग दस करोड़ रूपये जमा हुए। इस प्रकार डाकघर जन-सेवा के साथ-साथ सरकारी आय के ठोस साधन के रूप में सामने आया। डाक सेवाओं में तेजी लाने के लिये मद्रास और कलकत्ता के बीच कुछ डाक मार्गों पर घोड़ों की जगह मोटरों की व्यवस्था भी उन दिनों की गई।

11 नवम्बर सन् 1918 को संसार का पहला महायुद्ध तो समाप्त हो गया, किन्तु इसने देशों में अनेक समस्याओं को जन्म दिया।

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम और डाकघर– भारत में भयंकर उथल-पुथल के कारण प्रत्येक भारतीय ब्रिटिश साम्राज्य का जुआ कन्धों से उतार फेंकने के लिये आतुर था। सम्पूर्ण देश में असहयोग आन्दोलनों, हड़तालों व प्रदर्शनों का दौर था। ब्रिटिश सरकार निहत्थे देश-भक्तों को लाठी-गोली से कुचलने पर आमादा हो उठी थी। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के कहने पर देश ने प्रथम महायुद्ध में ब्रिटिश शासन का साथ इस आशा से दिया था कि वह युद्ध की समाप्ति पर देश को स्वतन्त्रता प्रदान करने के प्रश्न पर नरम दिल से विचार करेगा। किन्तु प्रथम विश्व युद्ध समाप्त होते ही ब्रिटिश सरकार ने गुलामी के शिकंजे को कसना चाहा। अमानुषिक अत्याचारों का दौर पूरे देश में चलने लगा। रौलट ऐक्ट और मार्शल ला जैसे दमनात्मक और अमानवीय कानून बने तो सारा देश तिलमिला उठा।

यद्यपि भारतीय डाकघर के तत्कालीन सर्वे सर्वा ब्रिटिश अधिकारी ही थे, तथापि उस देश पर देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन का प्रभाव (1919) पड़ना प्रारम्भ हो गया था।

---

1. पत्रिका डाक संलाप।

20 मार्च 1919 को जब गाँधी जी के आह्वान पर 6 अप्रैल का दिन देश व्यापी हड़ताल के लिये घोषित हुआ तो उस दिन सारा भारत बन्द था।

उस समय भारतीय डाकघर के कर्मचारियों के वेतन उनकी सेवा की गरिमा को देखते हुए कम थे। इसके साथ-साथ उनमें इस बात से भी असन्तोष था कि डाकघर के ब्रिटिश अधिकारी पूरा शुल्क देकर भेजी गई डाक पर भी अपना अधिकार समझते थे। भारतीयों की डाक प्राय: सेंसर होती थी। जलियाँवाला कांड के बाद जब पंजाब के गवर्नर ने वहाँ मार्शल ला लागू किया तो (सर पी. एस. अय्यर के शब्दों में)- 'डाक को खोल-खोल कर बाँटा गया।' डाकघर के भारतीय कर्मचारियों को प्रत्येक प्रकार की डाक बाँटने का अधिकार भी न था।

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के नेताओं की डाक अक्सर बिना बाँटे ही नष्ट कर दी जाती थी। देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन ने इन बन्धनों की आग में घी का काम किया। फलस्वरूप जून 1920 में भारतीय डाकघर में हड़ताल का श्रीगणेश हुआ। 20 सितम्बर 1920 को बम्बई के डाकघर कर्मचारियों ने अपनी यूनियन बनाई, जो देश में डाकघर कर्मचारियों की पहली यूनियन थी। फिर वहाँ भी हड़ताल प्रारम्भ हो गई। यह हड़ताल पूरे पाँच माह चली।

डाक कर्मचारियों के आक्रोश का लक्ष्य सम्पूर्ण ब्रिटिश अधिकारी वर्ग था जो उनके प्रति भारतीय होने के कारण दबाव की नीति से काम ले रहा था। उस समय जलियाँवाला कांड की आग धू-धू करके जल रही थी और प्रतिदिन सैकड़ों की संख्या में स्वतन्त्रता सेनानी हँसते-हँसते फाँसी पर झूल जाते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि डाकघर के कर्मचारियों ने चोरी-छिपे स्वतंत्रता संग्राम के आन्दोलनकारियों की 'गुप्त-डाक' का भी वितरण आरम्भ कर दिया। ऐसी न्यूनाधिक डाक डाकघर के ब्रिटिश अधिकारियों की तेज निगाहों से येन केन प्रकार से बचाई जाने लगी।

प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् जहाँ ब्रिटिश सरकार ने भारतीय अर्थ तन्त्र से अपना पेट भरना तेजी से शुरू कर दिया, वहाँ उसने डाक सामग्री की दरों में भी तीव्र विरोध के बावजूद वृद्धि कर डाली।

रेडियो शुल्क भार- 15 अगस्त 1924 को भारतीय डाकघर के कन्धों पर एक और कार्य डाला गया। इसके अन्तर्गत इसे रेडियो आदि के लाइसेन्स जारी करना और उनका शुल्क वसूलना था। आरम्भ में तो यह योजना कुछ चुने हुए डाकघरों में ही चलाई गई, बाद में इसे विस्तार देकर सभी डाकघरों में लागू कर दिया गया।

इसी प्रकार 1 अप्रैल 1934 को भारतीय डाकघर ने वित्त मंत्रालय के लिये नये छपे रिवन्यू टिकटों की बिक्री आरम्भ की। इससे पूर्व सामान्य डाक-टिकटों पर ही 'रिवन्यू बी एंड ओ' छापकर उन्हें रिवन्यू टिकटों की तरह बेंचा और उपयोग में लाया जाता था।

हवाई डाक-सेवा- जनता की सुविधाओं में निरन्तर वृद्धि होती गई। इसी क्रम में 18 फरवरी सन् 1911 में भारत में पहली बार वायु डाक सेवा सम्पन्न की गई। यह एक साहसिक अभियान था। मांस्यिूर. एच. पिकेट नाम के एक फ्रांसीसी वायुयान चालक ने 6, 500 पत्रों को लेकर इलाहाबाद से नैनी जंक्शन तक की सफल उड़ान की। वायु डाक-सेवा पोस्टकार्ड के प्रचलन 1931 के मामले में भी भारतीय डाकघर संसार का प्रथम डाकघर था।

1920 में भारतीय डाकघर की वायु डाक-सेवा बम्बई और करांची के बीच आरम्भ की गई। 7 अप्रैल 1929 को भारत और ब्रिटेन के बीच वायु-डाक सेवा का श्रीगणेश हुआ। इसके आठ माह बाद दिल्ली और करांची का वायु डाक मार्ग खुला'।[1] 1938 के बाद देशी व विदेशी अनेक वायु मार्गों पर भारतीय डाकघर की पताका फहराने लगी। सभी राष्ट्रमण्डलीय देशों के लिये उन दिन वायु-डाक सेवा की दरें निर्धारित थीं। आरम्भ में यह सेवा पाक्षिक व साप्ताहिक थी। धीरे-धीरे इसकी समयावधि आवश्यकताओं के अनुरूप कम होती चली गई।

उस समय तक पत्र और पार्सल आदि ही डाकघर द्वारा भेजे और वितरित किये जाते थे। डाकघर की सेवाओं का प्रयोग अधिकांशतः देश के व्यापारी या शासक वर्ग ही करते थे। सन् 1932 में इस वर्ग की सुविधा के लिये भारतीय डाकघर ने दो महत्वपूर्ण कार्य किये- एक था व्यापारिक उत्तर पत्र (बिजनेस रिप्लाई कार्ड) का श्रीगणेश और दूसरा लिफाफे का प्रचलन था। इन दोनों का ही जोरदार स्वागत हुआ। इसके तीन वर्ष बाद सन् 1935 में भारतीय पोस्टल आर्डर का जन्म हुआ। चूँकि छोटी-छोटी रकमों को धनादेश की अपेक्षा पोस्टल आर्डर द्वारा भेजना आसान भी था और कम खर्चीला भी, इसीलिए उस समय इसने खासी लोकप्रियता प्राप्त की।

भारतीय पोस्टल आर्डर के जन्म से पूर्व (1 अक्टूबर सन् 1884) से ही देश में ब्रिटिश पोस्ट आर्डर चलता था। अब उन दोनों की सीमाएँ निर्धारित कर दी गईं। भारतीय पोस्टल आर्डर देश के अन्दर मुद्रा-प्रेषण का साधन बना। उसे केवल भारतीय ही भुना सकते थे, जबकि ब्रिटिश पोस्टल आर्डर ब्रिटेन शासित या अनुबन्धित किसी भी देशी विदेशी डाकघर में भुनाया जा सकता था। यह व्यवस्था आज भी है।

प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् भारतीय डाकघर अपनी गतिविधियों को व्यवस्थित करने में लगा ही था कि 3 सितम्बर 1939 को उस पर दूसरे विश्व युद्ध की गाज गिरी। उन दिनों समूचे भारत में स्वतंत्रता की माँग प्रबलतर हो गई थी।

---

1. भारतीय डाकघर- रोचक इतिहास व विकास- रत्नप्रकाश शील पेज-39

नेता जी सुभाषचन्द्र बोस जैसे गरमदलीय क्रान्तिकारियों की गर्जना से जहाँ देश भर में अपूर्व जोश पैदा हो गया था, वहाँ गाँधी जी, पं0 जवाहरलाल नेहरू, मौलाना आजाद, डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद तथा सरदार पटेल आदि नरमदलीय नेताओं ने ब्रिटिश शासन की नींद छीन ली थी। ऐसे समय में ब्रिटिश सरकार को जहाँ भारतीय सहयोग की आवश्यकता अनुभव हुई, वहीं उसे यह भय भी लगा कि कहीं भारतीय डाकघर के कर्मचारी पुनः सामूहिक रूप से स्वतन्त्रता सेनानियों के साथ न मिल जॉय क्योंकि इसका भयंकर परिणाम होने की सम्भावना थी।

यही सोचकर ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री चर्चिल ने 'क्रिप्स मिशन' की योजना बनाई। यद्यपि यह योजना भारत को स्वायत्त शासन प्रदान करने के लिये बनाई गई थी। किन्तु उसकी आड़ में कई गम्भीर सौदेबाजियाँ भी थीं। देश के नेताओं ने उसे अस्वीकार कर दिया। फिर भी गाँधी जी इस पक्ष में थे कि विरोधी पर गहरा संकट पड़ा हो तो उसकी सहायता की जाय। इसलिये कुछ समय के लिये सामूहिक आन्दोलन स्थगित कर दिये। इस प्रकार ब्रिटिश शासन को युद्धजन्य स्थितियों में भारतीय डाकघर से भरपूर लाभ उठाने का अवसर मिल गया।

सेना डाकघर- युद्ध के मोर्चों पर तैनात सैनिकों के लिये भारतीय डाकघर के सेवाओं की आवश्यकता का पुनः अनुभव किया जाने लगा था। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान भी ब्रिटिश सरकार द्वारा यह योजना सोची गयी थी कि सेना डाकघर नाम से एक पृथक् स्थायी विभाग बना दिया जाय किन्तु भारी व्यय के कारण इस योजना पर पूरी तरह अमल न हो सका था। सेना के लिये कुछ एक डाकघरों की ही व्यवस्था कर दी गई थी। कुछ कर्मचारी अधिकारी भारतीय डाकघर से तथा कुछ सेना से लेकर काम चला लिया गया था। अधिकारी और कर्मचारी न तो सेना सम्बन्धी अनुभव रखते और न ही युद्ध के समय उन्हें डाक वितरित करने का प्रशिक्षण ही प्राप्त था। अतः इस बार इस दिशा में ठोस कदम उठाए गये। सेना डाकघर का विधिवत संचालन करने के लिये अलग निदेशालय (1941-42 में) बनाया गया। लेफ्टिनेण्ट कर्नल जी. एन. नायडू उसके प्रथम निदेशक नियुक्त किये गये। फिर भी उसका अधिकतर कार्य भारतीय डाकघर को ही करना पड़ता था।

सेना डाक अधिकारियों के सहयोग से भारतीय डाकघर ने द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान पाँच मोर्चों पर सैनिकों की डाक सेवा की।[1]

दिसम्बर 1942 में रक्षा-डाक-सेवा-कमेटी का गठन किया गया। उसका कार्य डाक सेवा की गति और डाक कर्मचारियों की निपुणता का स्तर सुझाना, जनता और रक्षा डाक-तार सेवाओं की गतिविधियों में अन्तर और उसे दूर करने

---

1. डाक-पत्रिका- डाक विभाग का त्रैमासिक जरनल पेज- 23

के उपाय, रक्षा डाक सेवाओं के लिये कर्मचारियों की नियुक्ति, प्रशिक्षण और कार्यकुशलता आदि का आकलन करके रिपोर्ट तैयार करना था।

फरवरी 1943 में उक्त कमेटी ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। उसके आधार पर सेना डाक सेवा इकाईयों की व्यवस्था का सारा भार सेना-डाक निदेशालय को सौंपा गया।

दूसरा विश्व युद्ध 1945 में समाप्त हुआ। तब तक भारत में चल रहे स्वतंत्रता युद्ध में अनेकों आहुतियाँ पड़ चुकी थीं। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने कई वर्ष पहले देश को 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' का जो नारा दिया था, उसकी गूँज आकाश को छूने लगी थी और देश के सपूतों का बलिदान रंग लाने लगा था।

दूसरे विश्व युद्ध ने ब्रिटिश साम्राज्य की आर्थिक स्थिति को बुरी तरह झकझोर कर रखा दिया था। भारतीय डाकघर के भारतीय कर्मचारी भी मानसिक और आर्थिक रूप से असन्तुष्ट थे। पिछले वर्षों में जो कुछ हुआ था, उसने उनकी विचारधारा को पूरी तरह बदल दिया था।

देश में अन्तरिम सरकार बनाने की बातें चल ही रही थीं कि 11 जुलाई 1946 को देश भर के डाकघरों में काम बन्द कर दिया गया। डाक को रास्तों में ही रोक दिया गया। डाकघरों में आई डाक का वितरण बन्द कर दिया गया। इस बार हड़ताल का उद्देश्य पूरी तरह वेतन का सुधार करना था। हड़ताल अधिक फैलने से जनता को अत्यधिक असुविधा होने लगी। उसने हड़ताल को समर्थन देना बन्द कर दिया। देश के बड़े नेताओं ने बीच में पड़कर इस हड़ताल को समाप्त कराया। भारतीय डाक-तार-कर्मचारियों की कुछ माँगे मान ली गईं।

भारतीय डाकघर का यही स्वरूप स्वतन्त्रता प्राप्ति के दिन अर्थात् 15 अगस्त 1947 तक बना रहा।

स्वतन्त्र भारत में डाक सेवा– 15 अगस्त 1947 को आजादी मिलने के बाद दंगे और भयानक मारकाट के बीच जहाँ देश का विभाजन हुआ वहीं भारतीय डाकघर भी बुरी तरह प्रभावित हुआ। दंगाग्रस्त क्षेत्रों में सभी प्रकार की डाक सेवाएँ पूरी तरह नष्ट कर दी गईं डाकघर फूँक दिये गये। अकेले पंजाब में लगभग 530 डाकघरों को या तो लूट लिया गया या नष्ट कर दिया गया। उत्तर और मध्य भारत के अनेक डाकघर भी इन दंगों से प्रभावित हुए। उत्तर प्रदेश के सलेमपुर डाकघर में आग लगा दी गई, बम्बई सर्किल के डाकघरों को काफी क्षति पहुँची। जूनागढ़ व हैदराबाद में भी तनाव के कारण डाक सेवाएँ अव्यवस्थित हो गईं। देश के अनेक भागों में कर्फ्यू और धारा 144 लगने के कारण डाक वितरण और समग्र डाक संचार का कार्य भी ठप्प सा हो गया।

उन दिनों रेल, परिवहन डाक संचार का महत्वपूर्ण माध्यम था, किन्तु उन दंगों में अधिकांश रेलगाड़ियाँ, डिब्बों, पटरियों और अन्य साधनों के क्षतिग्रस्त हो

जाने के कारण स्थगित कर देनी पड़ीं। इनमें सबसे बुरी हालत पश्चिम बंगाल, पूर्वी पंजाब, उत्तर प्रदेश एवं अलवर, भरतपुर एवं जयपुर के सीमावर्ती क्षेत्रों में थी। ऐसी स्थिति में डाक व्यवस्था को सुचारू रूप देने का कार्य कठिनतम बन जाने पर भी भारतीय डाकघर ने अपना साहस नहीं खोया। रातों रात निजी मोटर सेवा का विस्तार किया गया। ऐसी स्थिति में जब अनेक परिवार दंगाग्रस्त क्षेत्रों में रहने वाले या वहाँ किसी काम से गये स्वजनों की कुशलता पाने को व्याकुल लोगों के लिये डाकघर का यह कदम अत्यन्त सराहनीय रहा है। निजी मोटर सेवा और अपने बहादुर और साहसी डाकियों और कर्मचारियों के बल पर भारतीय डाकघर ने लूटमार और रक्तपात के उन दिनों में भी दंगाग्रस्त क्षेत्रों में डाक वितरण की हर सम्भव व्यवस्था की।

लगभग उन्हीं दिनों (अगस्त-सितम्बर 1947 में) पंजाब भयानक बाढ़ की चपेट में आ गया। वहाँ की उफनती नदियों ने संचार साधनों को धूल में मिलाकर रख दिया, रास्ते कट गये और रेलमार्ग बह गये। शेष भारत से वहाँ का निरन्तर सम्पर्क बनाये रखने का गुरूत्तर भार भी डाकघर के कन्धों पर आ गया। डाक संचार को बनाये रखने के लिए आनन-फानन में चार्टर्ड वायुयानों की सहायता ली गई। दिल्ली को फिरोजपुर, सहारनपुर, अम्बाला और जालन्धर पूर्व पंजाब से जोड़ा गया। स्थिति नियन्त्रण में होने पर 27 नवम्बर 1947 को यह सेवा समाप्त कर दी गई।

अक्टूबर 1947 में पाकिस्तान ने कश्मीर पर आक्रमण कर दिया। 27 अक्टूबर को काश्मीर के तत्कालीन महाराजा ने रियासत की बागडोर भारत को सौंप दी तो भारतीय डाकघर ने अपना दायित्व निभाया। दिल्ली से जम्मू और काश्मीर के लिये त्वरित वायु डाक सेवा शुरू की गई। जम्मू कश्मीर में तैनात भारतीय सैनिकों को डाक शुल्क में छूट दी गई। एक जवान प्रति सप्ताह एक तोला वजन का एक पोस्टकार्ड या लिफाफा निःशुल्क भेज सकता था तथा बिना कमीशन दिये भारतीय-पोस्टल आर्डर खरीद सकता था।

ऐसे में एक समस्या यह आई कि विभाजन से पूर्व विदेशी वायु डाक सेवा का केन्द्र करांची में थी और करांची के पाकिस्तान में चले जाने के कारण उसकी तत्काल वैकल्पिक व्यवस्था भारत में ही करने की आवश्यकता पड़ी। एक नवम्बर को पालम हवाई अड्डे पर विदेशी डाक वायु डाक सेवा का भारतीय केन्द्र स्थापित किया गया।

इस दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन के फलस्वरूप डाकघर कर्मचारियों के अदला-बदली की समस्या सामने आई। भारतीय डाकघर ने अपने सभी कर्मचारियों को भारत और पाकिस्तान किसी भी देश को सेवाएँ अर्पित करने की छूट दी। इस कार्य के लिए उन्हें छः माह का समय दिया गया किन्तु 36, 159 कर्मचारियों में से केवल 26, 284 कर्मचारियों ने ही पाकिस्तानी डाकघरों में जाने की इच्छा प्रकट की।

उन्हें वहाँ भेज दिया गया।

विभाजन के कारण सम्पूर्ण असम और उत्तर बंगाल के कुछ क्षेत्र में डाक सेवा की दृष्टि से शेष देश से लगभग कट गये थे। इन दोनों को देश से जोड़ने वाली केवल एक छोटी सी पट्टी थी, जिस पर न रेल की व्यवस्था थी न सुविधाजनक मोटर व्यवस्था।

भारतीय डाकघर ने वैकल्पिक व्यवस्था होने तक इन भागों में जाने वाली डाक सामग्री बिना अतिरिक्त शुल्क लिये वायु-डाक-सेवा द्वारा पहुँचाई। बाद में विभिन्न साधनों द्वारा डाक पहुँचाने की व्यवस्था इस प्रकार की गई। इस प्रकार विभाजन के कारण भारतीय डाकघर का स्वरूप अपेक्षाकृत कुछ छोटा हो गया किन्तु उत्साह में कोई कमी नहीं आई।

स्वतन्त्रता के तुरन्त बाद हुई अव्यवस्था और अस्तव्यस्तता को इस छोटी सी अवधि में ही भारतीय डाकघर की लगन और कार्यकुशलता ने काफी सीमा तक सुचारू रूप दिया। दिल्ली, अमृतसर व जालन्धर में मेल-मोटर सेवा का श्रीगणेश किया गया। इसी वर्ष 15 अगस्त को स्वतन्त्रता की प्रथम वर्षगाँठ पर अब तक का सबसे मँहगा स्मारक डाक-टिकट (दस रुपये मूल्य का महात्मा गाँधी स्मारक टिकट) जारी किया गया।

15 सितम्बर से एक द्रुतगामी सेवा 'इनलैण्ड एयर लेटर सर्विस' शुरू हुई, जिसके लिये 2 आने का अतिरिक्त शुल्क लिया जाता था।

सन् 1949 भारतीय डाकघर के लिये अभूतपूर्व उपलब्धियों का वर्ष रहा। सम्पूर्ण ढाँचे को पुनर्गठित करने और कार्य प्रणाली को ठोस रूप देने की दृष्टि से तत्कालीन संचार मंत्री श्री रफी अहमद किदवई ने 'आल-अप स्कीम' को जन्म दिया।

भारतीय डाकघर पर संचार का भार बेतहाशा बढ़ जाने के कारण मोटर मेल सेवा भी उसे समय पर निबटा देने में असमर्थ सिद्ध होने लगी थी। रेलवे मेल में सर्विस के लिये अतिरिक्त डिब्बों का प्रावधान करने में रेलवे ने भी असमर्थता व्यक्त कर दी थी।

एक ओर डाक व्यवस्था को अधिक सरल और सुगठित रूप देने का प्रश्न था तो दूसरी ओर डाक सामग्री के समय पर वितरण का। आल-अप स्कीम के अन्तर्गत घरेलू डाक वहन के लिये भी वायु डाक सेवा का प्रचलन किया गया। अभी तक वायु डाक सेवा के अन्तर्गत भेजी जाने वाली डाक पर अतिरिक्त शुल्क लिया जाता था। आल-अप स्कीम के अन्तर्गत इसे समाप्त कर दिया गया। यद्यपि इसकी आलोचना हुई किन्तु इसके बाद सुखद परिणाम सामने आये। घरेलू वायु-डाक सेवा के प्रचलन के कारण मोटर मेल सेवा और रेलवे मेल सेवा पर दबाव कम हो गया। भारतीय डाकघर का विस्तार करने के अवसर सुगम बन गये।

इस वर्ष के शुरू में ही (30 जनवरी को) रात्रिकालीन वायु डाक सेवा की शुरूआत की गई। अन्तर्देशीय वायु पार्सल सेवा का श्रीगणेश भी कर दिया गया था, यद्यपि यह डाक सेवा देश के दो मार्गों पर शुरू की गई थी, फिर भी देश के विभिन्न भागों की दूरियाँ समाप्त करने का यह प्रभावशाली श्रीगणेश था।

दूरियों में कमी एवं कुशलता में वृद्धि– वायु डाक सेवा का आरम्भ जिन स्थितियों में हुआ था वे वायुयान सेवा की प्रारम्भिक स्थितियाँ थीं। उन दिनों हवाई अड्डे केवल दिन में ही कार्य कर सकते थे। रात में उड़ान भरने एवं सुरक्षित उतरने के कोई साधन नहीं थे। वायुयानों की गति भी उन दिनों आज की अपेक्षा कम थी।

धीरे-धीरे वायु-डाक सेवा को विस्तृत कर सुगम बना दिया गया। उसके माध्यम से रियायती अतिरिक्त शुल्क में धनादेश और बीमाकृत पार्सल भी भेजे जाने लगे। वायु सेवाओं के राष्ट्रीयकरण के पश्चात् इण्डियन एयर लाइन्स कारपोरेशन ने इस दायित्व का निर्वाह पूरे मनोयोग से किया।

डाक-वितरण व्यवस्था में और अधिक तेजी लाने के लिये उसकी छँटाई व्यवस्था में भी आवश्यक सुधार किये गये। भारतीय डाकघर के छँटाई कर्मचारियों को विधिवत प्रशिक्षित किया गया। भावी डाक योजना के अन्तर्गत इसी वर्ष श्री एस. सी. सेन गुप्ता और श्री महेश्वर दयाल को ब्रिटेन भेजा गया। डाक कर्मचारियों को विधिवत प्रशिक्षण देने के लिये रात्रिकालीन स्कूल की स्थापना की गई। देहाती क्षेत्रों में डाकघर अधिक प्रभावी ढँग से कार्य कर सके, इसके लिये 'डाक-सेवक-योजना लागू की गई

डाक सेवा योजना अपने ढँग की अनूठी योजना थी। ग्रामीण क्षेत्र के किसी लोकप्रिय व्यक्ति को भारतीय डाकघर का प्रतिनिधि बना दिया जाता था। वही अपने क्षेत्र में डाक सम्बन्धी समस्त कार्य करता था। एक प्रकार से वह डाकपाल, डाक लिपिक व डाकिया होता था।

उसी वर्ष (1949 में) भारतीय डाक-टिकटों से जार्ज (इंग्लैण्ड के बादशाह) की आकृति को हटा दिया गया। नये डाक टिकट और सामग्री जारी की गई, जिस पर अशोक का चिन्ह अंकित था।

भारतीय डाकघर के कर्मचारियों के कल्याण के कार्यों में तेजी लाई गई। कर्मचारियों की सहकारी समितियों व कैण्टीनों की संख्या में वृद्धि की गई। आवासीय सहकारी समितियाँ भी स्थापित की गईं। उन दिनों डाकघर कैण्टीन में एक व्यक्ति को छः आने में भरपेट भोजन मिलता था।

रात्रिकालीन सेवाओं की श्रृंखला में रात्रिकालीन चल डाकघर भी नागपुर में (1 अप्रैल को) खोला गया। इस प्रकार भारतीय डाकघर 'अहर्निश' सेवा की ओर उन्मुख हुआ।

जनता में डाकघर के प्रति जागरूकता और डाक कर्मचारियों में जनसेवा

के प्रति समर्पित भावनाएँ जगाने के उद्देश्य से प्रतिवर्ष डाकतार सप्ताह मनाने की परम्परा सन् 1950 से प्रारम्भ की गई। इसका उद्देश्य जनता में डाकघर के प्रति जागरूकता तथा कर्मचारियों में जनसेवा के प्रति समर्पित भावना जागृत करना है।

अप्रैल 1950 तक उन समस्त रियासती डाकघरों को जो ब्रिटिश शासन काल में किये गये अनुबन्ध के अन्तर्गत आते थे, भारतीय डाकघर में मिला दिया गया। ये रियासती डाकघर अनेक दृष्टियों से काफी पिछड़े थे। इसमें अनेक अनियमितताएँ थीं तथा रिश्वत का बोलबाला था। भारतीय डाकघर ने इन समस्त चुनौतियों का डटकर मुकाबला किया। रियासती डाकघरों के स्तर और कार्य के ढँग में अपेक्षित सुधार किये गये।

सन् 1951 से भारतीय डाकघर ने एक नया अभियान चलाया। प्रत्येक 2000 या 2000 से अधिक आबादी वाले गाँवों में एक नया शाखा डाकघर की स्थापना की गई। उस समय देश में 5795 गाँव ऐसे थे जो इस कसौटी पर तो खरे उतरते थे, किन्तु उनमें डाकघर की व्यवस्था नहीं थी। उन गाँवों में भी डाकघर खोलने की व्यवस्था की गई।

सन् 1952 के अन्त तक 2000 या 2000 से अधिक आबादी वाले 5795 गाँवों में से लगभग 5100 गाँवों में डाकघर खोल दिये गये। 1953 में दो मील की परिधि पर बसे हुए उन छोटे-छोटे गाँवों में भी एक-एक डाकघर खोलने का निर्णय लिया गया जिनकी सम्मिलित आबादी 2000 या 2000 से अधिक थी। उसी वर्ष इस योजना पर कार्य शुरू कर दिया गया।

इस योजना को प्रथम पंचवर्षीय योजना में और अधिक उदार बनाकर 10135 डाकघर पिछड़े क्षेत्रों में खोल दिये गये। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् सन् 1954 के अन्त तक भारत में डाकघरों की संख्या 22116 से बढ़कर 45907 हो गई। सन् 1954 में डाक विभाग ने अपनी स्थापना का 100 वाँ वर्षगाँठ मनाया। इन 100 वर्षों में कर्मचारियों की संख्या 24500 हो गई। इस बीच सबसे महत्वपूर्ण कार्यों में एक कार्य यह भी किया गया कि सन् 1951 में विभाग के कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने के लिये सहारनपुर में डाक-तार प्रशिक्षण केन्द्र खोजा गया जो कि अपने ढँग का एशिया का पहला केन्द्र था। इसके पश्चात् अब धीरे-धीरे अन्य प्रान्तों में भी चार प्रशिक्षण केन्द्र और खुल गये हैं।

पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से देहातों के दूरस्थ स्थानों को डाक-व्यवस्था से जोड़ने के लिये स्वतन्त्र भारत में निरन्तर प्रयत्न होते रहे। इसके परिणाम स्वरूप स्वतन्त्रता की प्राप्ति के समय जहाँ डाकघरों की संख्या लगभग 22,000 थी, वहीं प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्त तक उसकी संख्या 55,000 द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त में 77,000 तथा तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्त में 97,000 हो गई। एक जुलाई सन् 1968 को देश का 1,01,000 वाँ

डाकघर बिहार के बहरामपुर-चौरस्ता में खोला गया। इसके उपलक्ष्य में 20 पैसे का एक नया टिकट जारी किया गया। चौथी पंचवर्षीय योजना की समाप्ति पर डाकघरों की कुल संख्या लगभग 1,16,700 थी जिसमें से 1,29,589 डाकघर देहाती क्षेत्रों में तथा 15,286 शहरी क्षेत्रों में स्थित थे। 31.5.85 को औसत के अनुसार 5132 व्यक्तियों पर एक डाकघर तथा 21-86 वर्ग कि. मी. पर एक डाकघर खुल गया था।

सन् 1854-55 में कुल 106074 डाक वस्तुओं का निस्तारण किया गया था। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में (1900-01) में यह संख्या बढ़कर लगभग 53 करोड़ हो गई। वर्ष 1984-85 में डाकघरों ने 1,198 करोड़ डाक वस्तुओं का वितरण किया।[1]

पिनकोड- दिन दूनी रात चौगनी बढ़ती भारत की जनसंख्या के कारण डाक सेवाओं को और अधिक सक्षम व सुचारू बनाने के लिये समय-समय पर भारतीय डाक विभाग द्वारा अनेक साधनों का प्रतिपादन किया जाता है। इन्हीं में से एक है पिनकोड अर्थात् पोस्टल इन्डेक्स नम्बर कोड। डाक अव्यवस्था सम्बन्धी निरन्तर बढ़ती शिकायतों को दूर करने तथा पत्रों को प्राप्तकर्ता तक शीघ्र सुरक्षित पहुँचने हेतु 15 अगस्त 1972 को पिनकोड प्रणाली को प्रारम्भ किया गया। पिनकोड युक्त डाक को त्वरित डाक के अन्तर्गत प्राथमिकता दी जाती है और पिनकोड वाले पत्रों का निस्तारण अन्य पत्रों से पहले किया जाता है।

हालांकि डाक विभाग द्वारा पिनकोड के प्रयोग के लिये समय-समय पर जनता से अनुरोध किया जाता रहा है किन्तु अभी भी आम जनता पिनकोड के विस्तृत विवरण और पत्रों पर पिनकोड लिखने से होने वाले लाभ से अनभिज्ञ है। यह कहना गलत न होगा कि पिनकोड युक्त पत्र अपने गन्तव्य पर शीघ्र पहुँच जाते हैं।

पिनकोड भारत के समस्त मुख्य डाकघरों एवं वितरण करने वाले उपडाकघरों को एलाट किये गये हैं। पिनकोड में छः अंक होते हैं। प्रत्येक डाकघर का पिनकोड अलग-अलग होता है। ''पिन'' प्रणाली के अन्तर्गत सम्पूर्ण भारतवर्ष को 8 विशाल जोन में विभक्त किया गया है। पिनकोड के छः अंकों में प्रथम अंक आठ विशाल जोन में से किसी एक जोन को प्रदर्शित करता है। प्रत्येक जोन के लिये एक से आठ तक के अलग अंक निर्धारित हैं जैसे :-

(क) जोन संख्या 1 में दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, चंडीगढ़, हिमांचल प्रदेश, जम्मू तथा कश्मीर सम्मिलित हैं।

(ख) जोन संख्या 2 में उत्तर प्रदेश आता है।

(ग) जोन संख्या 3 में राजस्थान तथा गुजरात।

(घ) जोन संख्या 4 में महाराष्ट्र, गोवा तथा मध्य प्रदेश।

---

1. डाक-पत्रिका- डाक विभाग का त्रैमासिक जरनल।

(ङ) जोन संख्या 5 में आन्ध्र प्रदेश व कर्नाटक।
(च) जोन संख्या 6 में तमिलनाडु तथा केरल।
(छ) जोन संख्या 7 में पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, अरूणांचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैण्ड तथा त्रिपुरा।
(ज) जोन संख्या 8 में बिहार सम्मिलित है।

इस प्रकार पिनकोड के प्रथम अंक को देखकर यह मालूम किया जा सकता है कि यह किस जोन का है।

पिनकोड का दूसरा अंक किसी जोन में स्थित रीजन यां उपखण्ड को प्रदर्शित करता है। एक जोन चूँकि काफी विशाल क्षेत्र होता है, कभी-कभी एक ही जोन में कई राज्य सम्मिलित होते हैं ऐसी स्थिति में एक जोन को कई उपखण्डों में बाँटा गया है और उपखण्ड के लिये अलग-अलग अंक निर्धारित हैं। पिनकोड का दूसरा अंक किसी जोन विशेष में स्थित उपखण्ड को प्रदर्शित करता है। किसी जोन में उपखण्ड बनाते समय डाक की लाइन का भी ध्यान रखा जाता है यानि परिवाहन के एक ही मार्ग से सीधे जुड़े स्थान एक रीजन में रखे जाते हैं जैसे बिजनौर, मुरादाबाद, रामपुर, बरेली, शाहजहाँपुर, हरदोई एक ही परिवहन लाइन से जुड़े होने के कारण पिनकोड रीजन नं0 4 में आते हैं यानि इन जनपदों के पिनकोड 22 के अंक से शुरू होंगे। इस प्रकार पत्र पर लिखे पिनकोड के पहले बड़े अंक देखकर यह पता लग जाता है कि पत्र किस राज्य के किस क्षेत्र में वितरित होगा।

पिनकोड का तीसरा अंक रीजन में स्थित डॉक छँटाई जनपद (पोस्टल सार्टिंग डिस्ट्रिक्ट) के लिये प्रदर्शित करता है। रीजन में प्रत्येक पोस्टल सार्टिंग डिस्ट्रिक्ट के लिये अलग अंक निर्धारित होता है, जैसे उत्तर प्रदेश के रीजन नं0 4 में पोस्टल सार्टिंग डिस्ट्रिक्ट हरदोई के लिये।, शाहजहाँपुर के लिये 2, बरेली व बदायूँ-3, मुरादाबाद व रामपुर 4, बिजनौर व पौड़ी के लिये 6, सहारनपुर के लिये 7 तथा पौड़ी व टिहरी के लिये 8 निर्धारित होगा। यदि 244 है तो मुरादाबाद या रामपुर के किसी डाकघर का होगा। इस प्रकार पिनकोड के पहले तीन अंकों से अंदाजा लगाया जा सकता है कि पत्र भारत के किस क्षेत्र में किस जनपद में जाना है।

पिनकोड का चौथा अंक डाक-रूट की लाइन को प्रदर्शित करता है जिस पर कि अमुक डाकघर स्थित है। जिला मुख्यालय के मुख्य डाकघर जो मेन लाइन पर होते हैं के पिनकोड में प्राय: चौथा अंक शून्य होता है।

पिनकोड के अन्तिम दो अंक किसी डाक मण्डल में स्थित वितरण डाकघर को प्रदर्शित करते हैं। यदि किसी पिनकोड के अन्तिम दो अंक 01 हैं तो वह छँटाई जनपद के सभी डाकघरों के अन्तिम 2 अंक अलग-अलग होंगे।

डाक विभाग के छँटाई कर्मचारियों को पिनकोड का काफी अभ्यास

होता है। पत्र देश के किसी भी कोने में पोस्ट किया जाय यदि उस पर सही पिनकोड लिखा है तो कर्मचारी बिना पता पढ़े ही पिनकोड का पहला अंक देखकर जान लेंगे कि पत्र किस जोन से वितरित होगा। जोन में आने पर पिनकोड के दूसरे अंक को देखकर पत्र सम्बन्धित उपखण्ड में आ जाता है। तीसरे अंक से पोस्टल सार्टिंग डिस्ट्रिक्ट का पता चल जाता है और पत्र सम्बन्धित जिले में पहुँच जाता है। कई पंक्तियों में लिखे विभिन्न भाषा व विभिन्न हस्तलेख में लिखे पते को पढ़ने की अपेक्षा केवल पिनकोड से ही पत्र गन्तव्य स्थान का पता लग जाना अधिक सुविधाजनक तथा शीघ्रतर होता है। इसी कारण पिनकोड युक्त डाक की सार्टिंग में सुविधा होती है और पत्र अधिक जल्दी प्राप्तकर्ता तक पहुँचते हैं। यहाँ तक कि यदि पत्र पर सही पिनकोड लिखा है और भूलवश जिला व राज्य का नाम लिखने से रह गया है तब भी पत्र गन्तव्य तक पहुँच जाता है। केवल पिनकोड से ही एक ही नाम वाले दो स्थानों में अन्तर पता चल जाता है।

जनता की सुविधा के लिये पिनकोड नोटिस बोर्ड पर प्रमुख नगरों के पिनकोड दिये होते हैं। आजकल इस प्रणाली का प्रचलन बहुत अधिक बढ़ गया है।

क्विक-मेल सेवा- 1 अगस्त 1975 से देश के प्रमुख नगरों में एक नई सेवा (क्विक-मेल-सर्विस) प्रारम्भ की गई। इसके लिये विशेष प्रकार के लेटर बाक्स लगाए गये किन्तु इस सेवा का लाभ केवल पिनकोड अंकित पत्रों को ही मिलता था। 'क्विक मेल सर्विस' के पत्र साधारणतया अगले ही दिन वितरित कर दिये जाते थे। यह सेवा देश की प्रान्तीय राजधानियों में भी जारी हैं।

वर्ष 1976 डाकघर के लिये शुभ वर्ष रहा। 'डाकघर-आपके दरवाजे पर' नाम से एक नई प्रणाली जनता को समर्पित की गई। इस प्रणाली के अन्तर्गत देहाती और कमजोर वर्ग के गाँवों तथा कालोनियों में बाईसिकिल/रिक्शा पर 60 चलते-फिरते शाखा डाकघर खोले गये। डेढ़ लाख से अधिक गाँवों में दैनिक डाक वितरण प्रणाली की शुरूआत की गई तथा पिछले वर्षों की अपेक्षा इस वर्ष मोटर-मेल-सेवा की क्षमता और परिधि भी अधिक बढ़ाई गई।

रेलवे मेल सेवा- रेलवे-मेल-सेवा केन्द्र उसी स्थान पर स्थापित हैं, जहाँ रेलवे स्टेशन हैं। अत: ऐसे डाकघरों को जो दूर दराज के पिछड़े इलाकों अथवा गाँवों में होते हैं, जहाँ रेल सेवा उपलब्ध नहीं होती, अपने क्षेत्र की डाक सम्बन्धित मुख्य डाकघरों को भेजनी होती है। जो सामान्यत: किसी समीपस्थ नगर में होता है। वहाँ छँटाई के बाद उसे रेलवे मेल सेवा केन्द्र को भेज दिया जाता है। रेलवे मेल सेवा इस राज्यवार डाक को नगर स्तर पर छाँटती है। इसमें पिनकोड की सहायता ली जाती है ताकि कार्य सरलता से सम्पन्न हो जांय।

अपूर्ण पते वाले पत्रों को 'डेड लेटर आफिस' जिसे आज कल 'रिटर्न

लेटर आफिस' कहते हैं, भेज दिये जाते हैं। रिटर्न लेटर आफिस में इस प्रकार की डाक सामग्री को खोलकर उसे पाने वाले व्यक्ति का पूरा नाम पता मालूम करने का प्रयास किया जाता है। ऐसा सम्भव न होने पर भेजने वाले का पूरा नाम पता मिल जाने पर उसे ही वापस कर दिया जाता है अन्यथा निर्धारित अवधि तक सुरक्षित रखने के बाद पत्रादि की सूरत में उसे नष्ट कर दिया जाता है और सामान आदि की स्थिति में उसे नीलाम कर दिया जाता है।

प्रशासनिक दृष्टि से डाक तार विभाग को प्रान्तीय स्तर पर दो भागों में बाँट दिया गया। 1.9.1974 से डाक महाध्यक्ष (पी. एम. जी.) केवल 'डाक-सर्किल' के ही अध्यक्ष रह गये। सर्किल में दूर संचार के लिये अध्यक्ष का एक नया पद जनरल मैनेजर के नाम से बनाया गया। आगे चलकर 31.12.84 से डाक तार विभाग दो विभागों- डाक विभाग तथा दूर संचार विभाग में बँट गया। 1.4. 1985 से डाकघरों द्वारा रेडियो लाइसेन्स शुल्क की वसूली समाप्त कर दी गई। एक्सप्रेस डिलवरी सेवा भी सन् 1974 में समाप्त कर दी गई तथा 1.11.1974 से रिकार्डेड डिलवरी सेवा प्रारम्भ की गई।

जब से भारत में सन् 1954 में प्रथम डाक-टिकट जारी किया गया तब से आज तक फिलेटकिल सेवा में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। भारत में डाक-सामग्री-संग्रह में रूचि रखने वालों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि को देखते हुए सन् 1897 में एक 'फिलेटलिक सोसाइटी आफ इण्डिया' की स्थापना की गई। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश में अनेकों प्रकार के डाक-टिकट जारी किये जा चुके हैं। सन् 1954 में दिल्ली में एक बहुत बड़ी डाक टिकट प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। सन् 1968 में देश का पहला राष्ट्रीय 'फिलेटलिक-संग्रहालय नई दिल्ली में स्थापित किया। सन् 1975 में भारतीय फिलेटलिक काँग्रेस (फिलेटलिक काँग्रेस आफ इण्डिया) की स्थापना हुई। भारत की प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय डाक-टिकट प्रदर्शनी का आयोजन 1980 में किया गया। यह प्रदर्शनी दिल्ली के प्रगति मैदान में आयोजित की गई तथा उसका नाम 'भारत 80' दिया गया। इसमें चार लाख से अधिक डाक टिकटों को प्रदर्शनी में रखा गया। सन् 1985 में भारत में 44 ब्यूरो तथा 136 फिलेटली काउन्टर जनता की सेवा में तत्पर रहे।

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त में देश के सभी मैदानी इलाकों के सभी गाँवों में प्रतिदिन डाक वितरण की व्यवस्था लागू हो गई। इसके लिये बहुत अधिक संख्या में अतिरिक्त विभागीय अभिकर्ताओं की नियुक्ति की गई। सन् 1978-79 में एक नई योजना चलाई गई जिसके अन्तर्गत गाँवों में सचल डाक अधिकारों की व्यवस्था की गई। नियमित डाकघरों की सेवा के अतिरिक्त 31.3.85 तक ये ग्रामीण सचल डाकघर 70211 गाँवों की सेवा में तत्पर रहे। 31.3.85 तक पूरे देश में पत्र पेटिकाओं (लेटर बाक्स) की कुल संख्या 5,01,223 तक पहुँच गई।

डाक विभाग में सन् 1954 में कर्मचारियों की कुल संख्या 24500 थी, धीरे-धीरे यह संख्या बढ़कर 31 मार्च 1985 को 6, 08, 904 तक पहुँच गई। इसमें 3,08,053 कर्मचारी विभागीय तथा 3,00,851 अतिरिक्त विभागीय कर्मचारी हैं।

सन् 1985 की अन्य योजना के अन्तर्गत डाक विभाग का कुछ कार्य करने के लिये लाइसेन्स दिये जाने की व्यवस्था थी। इसके आधीन लाइसेन्स वाले एजेण्ट डाक टिकटों की बिक्री, रजिस्ट्री पत्रों की बुकिंग तथा आगे भेजने के लिये साधारण डाक-वस्तुओं को स्वीकार कर सकते हैं। इस योजना के अन्तर्गत दिनांक 31.12.85 तक देश में ऐसे एजेण्टों की सख्या 431 हो गई थीं।

एक अगस्त सन् 1986 से डाक विभाग ने स्पीड पोस्ट सेवा प्रारम्भ की है। यह सेवा अभी हाल तक दिल्ली, बम्बई, मद्रास, कलकत्ता, अहमदाबाद, हैदराबाद और बंगलौर केवल सात नगरों तक ही सीमित थी, परन्तु अब इसका विस्तार देश के अन्य मुख्य नगरों में भी हो चुका है। मुख्य डाकघर गोरखपुर में भी अब यह सुविधा उपलब्ध है। अब यह सुविधा मनीआर्डर के लिये भी लागू कर दी गई है।



: 3 :

सामाजिक पृष्ठभूमि

व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण में सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। कार्लमानहाइम के अनुसार किसी व्यक्ति के विचार आदि को उसके सामाजिक परिवेश के सन्दर्भ में ही समझा जा सकता है। व्यक्ति जिस सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में रहता है, उसका उसकी जीवन-पद्धति पर गहरा प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति अपनी शा रीरिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक विशेषताओं का समुच्चय है। उसके प्रत्येक निर्णय में इन तत्वों का प्रभाव पड़ता है।

प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत डाकियों की सामाजिक पृष्ठभूमि का अध्ययन किया गया है। सामाजिक पृष्ठभूमि से तात्पर्य उनमें सामाजिक गतिशीलता से है। गाँवों में उनका किस प्रकार आधुनिकीकरण हुआ है इसका अध्ययन इसमें किया गया है। इसके अतिरिक्त यह भी देखने का प्रयास किया गया है कि क्या आधुनिकीकरण उन्हीं डाकियों में हुआ है जिनके पिता शिक्षित हैं अथवा रहे हैं या जिनकी आय अधिक है, वे अपने कर्तव्यों के प्रति कितने सचेत हुए हैं, वे किस जाति के हैं। उनकी शिक्षा, आयु आदि का व्यापक अध्ययन इसमें किया गया है।

इस प्रकार सामाजिक पृष्ठभूमि के अन्तर्गत हम अपने विभिन्न चरों में परिवर्तन को देखना चाहते हैं। इसके माध्यम से हमने यह देखने का प्रयास किया है कि डाकियों की स्थिति में परिवर्तन किस पर निर्भर करता है, शिक्षा पर या जाति पर।

सामाजिक पृष्ठभूमि के अन्तर्गत सर्वप्रथम उत्तरदाताओं का प्रदेशानुसार निवास ज्ञात करने पर पाया गया कि उत्तरदाता उत्तर प्रदेश के ही रहने वाले हैं।

आयु संरचना- समाज में आयु-सम्बन्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसका प्रभाव सामाजिक विरासत तथा व्यक्ति के पद, कार्य एवं उसके विचारों व मनोवृत्तियों पर पड़ता है। प्रायः आयु के अनुसार ही व्यक्ति का बौद्धिक स्तर निश्चित होता है। जो उत्तरदाता जितनी ही अधिक आयु के होंगे, वे संस्थागत परिवर्तन बहुत कम पसन्द करेंगे। आयु के साथ विचारों, मूल्यों, अभिरुचियों एवं मान्यताओं में परिवर्तन होना स्वाभाविक है।

अध्ययन के अन्तर्गत जो डाकिये सम्मिलित हैं वे विभिन्न आयु समूह के हैं। चूँकि डाक विभाग में कर्मचारियों की नियुक्ति के लिये कम से कम आयु का निर्धारण किया गया है जो 18 वर्ष है, इसलिये इससे कम की आयु वालों की

नियुक्ति पर प्रतिबन्ध है। ऐसा व्यक्ति के स्वास्थ्य को ध्यान में रखकर किया गया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व इस विभाग में कुछ विशेष परिस्थितियों में 15/18 वर्ष की आयु के लोगों को भी नियुक्त कर लिया जाता था, परन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् इस पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है।

प्रस्तुत तालिका से डाकियों की आयु का स्पष्टीकरण हो जाता है।

तालिका संख्या-1

उत्तरदाताओं की आयु संरचना

क्र.सं.	आयु समूह (वर्षों में)	उत्तरदाताओं की संख्या	उत्तरदाताओं का प्रतिशत
1.	18-28 वर्ष	16	8.89
2.	29-38 वर्ष	26	14.44
3.	39-48 वर्ष	86	47.78
4.	49-58 वर्ष	52	28.89
योग		180	100.00

तालिका संख्या 1 से स्पष्ट है कि 18-28 वर्ष की आयु के 8.89 प्रतिशत उत्तरदाता हैं, 14.44 प्रतिशत उत्तरदाता 29-38 वर्ष की आयु समूह के हैं, 47.78 प्रतिशत उत्तरदाता 39-48 वर्ष आयु समूह के हैं तथा 28.89 प्रतिशत उत्तरदाता 49-58 वर्ष आयु समूह के हैं।

तालिका से स्पष्ट है कि 18-28 वर्ष आयु समूह के उत्तरदाताओं की संख्या सबसे कम है, ऐसा इसलिए है कि इस पद के लिये नियुक्ति सीधे न होकर अतिरिक्त विभागीय अभिकर्ताओं तथा विभागीय चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों द्वारा प्रतियोगितात्मक परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् होती है।

चूँकि अतिरिक्त विभागीय अभिकर्ता तथा विभागीय चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों द्वारा कम से कम 5 वर्ष की सेवा अवधि पूरी करने के बाद ही इस परीक्षा में बैठा जा सकता है, इसलिये 28 वर्ष तक की आयु में बहुत कम लोग डाकिये के पद को प्राप्त कर पाते हैं। यही कारण है कि इस आयु समूह के उत्तरदाताओं की संख्या सबसे कम है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के अन्तर्गत सभी उत्तरदाता पुरुष हैं।

भाषा- मानव समाज को व्यवस्थित व प्रगतिशील बनाने में भाषा का स्थान सबसे अधिक है। भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचारों को दूसरे व्यक्तियों व समूहों तक संचरित करता है। भाषा न केवल पारस्परिक अन्त:क्रियाओं को सम्भव बनाती है बल्कि सम्पूर्ण साहित्य व संस्कृति का सृजन भाषा के विकास से ही जुड़ा हुआ है।

हर्सकोविट्स का कथन है कि भाषा मुँह से उच्चरित संकेतों की व्यवस्था है जिसके माध्यम से सीखने की प्रक्रिया को सरल बनाया जाता है। इस प्रकार जीवन की किसी विशेष विधि को निरन्तरता व परिवर्तनशीलता दोनों ही प्राप्त होती है।[1] इस प्रकार भाषा व्यक्तियों को एकता के सूत्र में बाँधने का माध्यम है। एक भाषा बोलने वाले व्यक्ति एक अन्त:समूह का निर्माण करते हैं। एक व्यक्ति किसी दूसरी भाषा बोलने वाले व्यक्ति की तुलना में उस व्यक्ति से हमेशा समीपता महसूस करता है जो उसी की भाषा बोलता हो। भाषा के द्वारा व्यक्ति अपने व्यवहारों के प्रति दूसरों की प्रतिक्रियाओं को व्यंग्य, प्रसंशा आदि के रूप में सुनकर समझता है और उसी के अनुसार अपने व्यवहार में संशोधन अथवा परिवर्तन करता है।

इस प्रकार भाषा के कारण ही मानव एक प्रगतिशील प्राणी के रूप में अपने अस्तित्व को बनाए हुए है। संसार में चाहे कोई भी समाज या समूह हो, चाहे वह सभ्य हो या आदिम, प्रत्येक की अपनी एक भाषा अवश्य होती है। इसके अभाव में समाज का विकास होने तथा इसके द्वारा एक क्रियाशील व्यवस्था के रूप में कार्य करने की सम्भावना नहीं की जा सकती।

डाक विभाग के अन्तर्गत डाकियों के लिये हिन्दी भाषा का ज्ञान अतिआवश्यक है। इसके अतिरिक्त उनसे यह भी आशा की जाती है कि वे स्थानीय अन्य भाषा का भी ज्ञान रखें।

अध्ययन के अन्तर्गत उत्तरदाताओं से यह पूछने पर कि वे कौन सी भाषा बोलते हैं, 96.11 प्रतिशत ने हिन्दी भाषा को बताया जबकि 3.89 प्रतिशत ने उर्दू भाषा (हिन्दी के अतिरिक्त) को बताया जैसा कि तालिका से स्पष्ट है।

तालिका संख्या–2

उत्तरदाताओं का भाषागत वर्गीकरण

क्र.सं.	भाषा	उत्तरदाताओं की सं0	प्रतिशत
1.	हिन्दी	174	96.11
2.	उर्दू	06	03.89
3.	पंजाबी		
4.	मलयालम		
5.	बंगाली		
6.	अन्य		
योग		180	100.00

इस प्रकार तालिका देखने से पता चलता है कि कुल 180 उत्तरदाताओं में से अधिकांश हिन्दी भाषा का ज्ञान रखते हैं।

धर्म– भारतीय समाज धर्मपरायण समाज कहलाता रहा है। अपनी इस

1. M. J. Herskovits- Man and his work- Page 440.

विशेषता के कारण विश्व में उसकी प्रतिष्ठा बनी हुई है। धर्म की यह परम्परा भारतीय समाज की अति प्राचीन परम्परा है और पूर्व वैदिक काल से इसकी निरन्तरता अविच्छिन्न रूप में बनी हुई है। धर्म ही भारतीय जीवन का सर्वोच्च आदर्श माना गया है। यह विश्वास किया जाता है कि मनुष्य के सभी क्रियाकलापों का अन्तिम लक्ष्य धर्म-संचय करना है। भारतीय समाज व्यवस्था का विकास पाश्चात्य समाज के विकास की भाँति अर्थ या भौतिक वस्तुओं को आधार मानकर नहीं हुआ है। यहाँ जीवन का प्रत्येक छोटा बड़ा कार्य धर्म के आधार पर व्यवस्थित है।

'धारयतीति धर्मः' यह धर्म की प्रथम परिभाषा दी गई है अर्थात् जो समाज का व्यक्ति का धारण करे वह धर्म है। इसके बिना भारतीय समाज अस्तित्वहीन है। धर्म पर ही इसकी संस्कृति अवलम्बित है।

प्रगति व परिवर्तन प्रत्येक समाज की निरन्तरता के लिये आवश्यक है। भारतीय समाज के अन्तर्गत धर्म में आवश्यक परिवर्तनों के महत्व को स्वीकार करके उसके लिये स्थान रखा गया है।

हिन्दू धर्मग्रन्थों में तामस एवं राजस गुणों के स्थान पर सात्विक गुणों को धारण करने को ही धर्म माना गया है। धर्म के विषय में एडवर्ड टायलर का कथन है कि धर्म आध्यात्मिक शक्ति में विश्वास है।[1] इस प्रकार धर्म किसी न किसी प्रकार की अतिमानवीय या समाजोपरि शक्ति में विश्वास है जिसका आधार भय, श्रद्धा, भक्ति और पवित्रता की धारणा है तथा जिसकी अभिव्यक्ति पूजा, प्रार्थना या आराधना है।

अध्ययन के अन्तर्गत उत्तरदाता भी किसी न किसी धर्म से सम्बन्धित हैं। इनमें से अधिकांश के ऊपर धर्म का प्रभाव किसी न किसी रूप में है। जिससे ये भी धार्मिक स्थलों पर जाते हैं, पूजा आदि में भाग लेते हैं। आज शिक्षा के प्रतिशत में वृद्धि के साथ-साथ कुछ उत्तरदाताओं में धार्मिक कार्यों के प्रति रूचि कम दिखाई दे रही है।

डाकियों का धर्मगत विश्लेषण करने पर पता चलता है कि अधिकतर डाकिये हिन्दू धर्म से सम्बन्धित हैं जैसा कि निम्नांकित तालिका से स्पष्ट है--

तालिका संख्या-3

उत्तरदाताओं का धर्मगत वर्गीकरण

क्रसं.	धर्म	डाकियों की संख्या	प्रतिशत
1.	हिन्दू	174	96.11
2.	मुसलमान	06	3.89
3.	ईसाई		
4.	सिक्ख		
5.	अन्य		
योग		180	100.00

1. Primitive Culture- E. B. Tylor.

उपर्युक्त तालिका में हिन्दू डाकियों का प्रतिशत 96.11 तथा मुसलमान डाकियों का 3.89 है। कोई भी डाकिया ऐसा नहीं मिला जो ईसाई, सिक्ख अथवा अन्य किसी धर्म से सम्बन्धित हो।

उत्तरदाताओं से धार्मिक विश्वास सम्बन्धी प्रश्न पूछे गये कि क्या वे धर्म में विश्वास रखते हैं या नहीं, उनके द्वारा दिये गये उत्तर तालिका में स्पष्ट है।

तालिका संख्या-4

उत्तरदाताओं में धार्मिक विश्वास सम्बन्धी विवरण

क्र.सं.	धर्म में विश्वास करते हैं	डाकियों की संख्या	प्रतिशत
1.	पक्ष	169	93.9
2.	विपक्ष	11	6.1
योग		180	100.00

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि कुल 180 डाकियों में से 93.9 प्रतिशत डाकिये धर्म में विश्वास करते हैं, जबकि 6.1 प्रतिशत डाकिये धर्म में विश्वास नहीं करते हैं। इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि आज शिक्षित होने के बाद भी अधिकांश उत्तरदाताओं में धर्म में विश्वास की धारणा विद्यमान हैं।

उत्तरदाताओं का पूजा, पाठ के प्रति क्या दृष्टिकोण हैं, क्या वे प्रतिदिन पूजा-पाठ करते हैं या कभी-कभी अथवा किन्हीं विशेष धार्मिक अवसरों पर, इस विषय में धर्म में विश्वास करने वाले कुल 169 डाकियों के विचार ज्ञात किये गये जो निम्नांकित तालिका से स्पष्ट होते हैं--

तालिका संख्या-5

उत्तरदाताओं का पूजा-पाठ के प्रति दृष्टिकोण

क्र.सं.	विवरण	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	प्रतिदिन	27	15.98
2.	कभी-कभी	109	64.50
3.	किन्हीं विशेष धार्मिक अवसरों पर	33	19.59
योग		169	100.00

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि धर्म में विश्वास करने वाले कुल 169 उत्तरदाताओं में से 15.98 प्रतिशत उत्तरदाता ही प्रतिदिन पूजा-पाठ करते हैं, 64.50 प्रतिशत उत्तरदाता कभी-कभी पूजा-पाठ करते हैं तथा 19.52 प्रतिशत उत्तदाता किन्हीं विशेष धार्मिक अवसरों पर ही पूजा-पाठ करते हैं।

इस प्रकार अध्ययन से स्पष्ट है कि अधिकांश उत्तरदाता अपने व्यस्त

जीवन के कारण धर्म के प्रति आस्था रहते हुए भी प्रतिदिन पूजा-पाठ नहीं कर पाते, इसलिए वे कभी-कभी अवकाश के दिनों में अथवा किन्हीं विशेष धार्मिक अवसर पर ही पूजा-पाठ कर पाते हैं।

जिन उत्तरदाताओं ने धर्म के प्रति अविश्वास प्रकट किया है उनसे उसका कारण पूछा गया। इस सम्बन्ध में उनके द्वारा व्यक्त किये गये विचार निम्नांकित तालिका से स्पष्ट होते हैं--

तालिका संख्या-6

उत्तरदाताओं में धर्म के प्रति अविश्वास के कारण

क्र.सं.	धर्म के प्रति अविश्वास के कारण	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	धर्म एक ढकोसला है	7	63.64
2.	धर्म से अन्धविश्वास पैदा होता है	4	36.36
3.	धर्म से कटुता पैदा होती हैं		
4.	अन्य		
योग		11	100.00

जिन 11 उत्तरदाताओं का धर्म में विश्वास नहीं है उनसे कारण पूछने पर 63.64 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि धर्म में विश्वास इसलिये नहीं करते क्योंकि धर्म एक ढकोसला है, जबकि 36.36 प्रतिशत उत्तरदाताओं का यह कहना है कि धर्म से अन्धविश्वास पैदा होता है। इसलिये वे धर्म में विश्वास नहीं करते हैं।

उत्तरदाताओं के निवास की पृष्ठभूमि

प्राय: ग्रामीण क्षेत्र की विशेषतायें नगरीय क्षेत्र की विशेषताओं से भिन्न होती हैं। अत: ग्रामीण क्षेत्र के व्यक्तियों व नगरीय क्षेत्र के व्यक्तियों के विचारों में भी भिन्नता पाई जाती है। ग्राम वासियों के विचारों में परम्परागतता पाई जाती है, जबकि नागरवासी प्राय: आधुनिक विचारों के होते हैं। उत्तरदाताओं के ग्रामीण एवं नगरीय पृष्ठभूमि का विवरण निम्नलिखित है--

तालिका संख्या-7

उत्तरदाताओं के निवास का विवरण

क्र.सं.	निवास की पृष्ठभूमि	डाकियों की संख्या	प्रतिशत
1.	ग्रामीण	167	92.78
2.	नगरीय	13	7.22
योग		180	100.00

तालिका विश्लेषण से स्पष्ट है कि 92.78 प्रतिशत उत्तरदाता ग्रामीण क्षेत्र के हैं तथा 7.22 प्रतिशत उत्तरदाता नगरीय क्षेत्र के हैं।

शिक्षा समाजीकरण की एक प्रक्रिया ही नहीं है, बल्कि सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों को आगामी पीढ़ी तक पहुँचने का सबसे महत्वपूर्ण आधार भी है। भारत की 76.27 प्रतिशत जनसंख्या अभी भी गाँवों में ही निवास करती है। अत: ग्रामीण विकास के बिना देश के विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अब ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च शिक्षा का प्रभाव पड़ रहा है जिससे वहाँ के लोगों के रहन-सहन आदि में भी व्यापक परिवर्तन हो रहे हैं।

इस प्रकार अध्ययन के अन्तर्गत जो उत्तरदाता हैं उनमें से अधिकतर गाँवों के ही रहने वाले हैं, जो शहरों में रह रहे हैं उनमें से 13 डाकियों का अपना निजी मकान है, शेष डाकिये किराये के मकान में रहते हैं। किराये पर रहने वाले डाकियों में से भी कुछ ने ही अपना परिवार शहर में रखा है शेष ने आवास की कमी के कारण तथा बड़ों की अनिच्छा के कारण अपना परिवार गाँवों में ही रखा है। जिन डाकियों का परिवार शहर में है उनमें से कुछ अपने बच्चों की शिक्षा के उद्देश्य से तथा कुछ ने संयुक्त परिवार में स्त्री-कलाह से तँग आकर अपना परिवार शहर में रखा है, लेकिन मूल शहर में रहने वाले डाकियों का सम्बन्ध अभी भी गाँव से बना हुआ है।

इससे स्पष्ट होता है कि अधिकांश डाकिये ग्रामीण परिवेश के ही हैं।

उत्तरदाताओं की शैक्षणिक योग्यता- शिक्षा समाजीकरण की एक प्रक्रिया है। यह सामाजिक परिवर्तन का एक प्रभावशाली साधन है। इसके माध्यम से न केवल सामाजिक बल्कि आर्थिक विकास भी होता है। यह व्यक्ति के विचारों एवं व्यवहारों को शुद्ध एवं परिष्कृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षा व्यक्ति को एक निश्चित दिशा, आधार और सोचने-विचारने की समझ प्रदान करती है। उत्तम सोच एवं कार्य के लिये उत्तम शिक्षा आवश्यक होती है। शिक्षा के विषय में ब्राउन का कहना है 'शिक्षा चैतन्य रूप में नियन्त्रण की एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन लाए जाते हैं।[1]

इस प्रकार शिक्षा प्राचीन परम्पराओं, रूढ़ियों, अन्धविश्वासों आदि को समाप्त करती है। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति के जीवन स्तर में सुधार होता है, शिक्षा व्यक्ति की आय में वृद्धि करती है। यदि हम भारतीय समाज का उदाहरण लेकर देखें तो पता चलता है कि हमारे समाज में आज जो परिवर्तन दिखाई दे रहे हैं उसका एक प्रमुख कारण शिक्षा है। डॉ. एम. एन. श्रीनिवास कहते हैं कि 'भारतीय समाज में लौकिकीकरण (धर्मनिरपेक्षीकरण) की विचारधारा को लाने का बहुत कुछ श्रेय पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों को है।[2]

---

1. Brown-Sociology- Page.119
2. एम. एन. श्रीनिवास- आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन- पृष्ठ-126-127

आज शिक्षित व्यक्ति विवाह एवं परिवार से सम्बन्धित पुरानी मान्यताओं को स्वीकार नहीं करता। शिक्षित नारी घर से बाहर निकली है और वह भी आर्थिक उत्पादन में सहयोग दे रही है, संयुक्त परिवारों के स्थान पर एकाकी परिवारों का उदय हो रहा है, अन्तर्जातीय विवाहों का प्रचलन बढ़ रहा है व तलाकों की संख्या में वृद्धि हो रही है।

इस प्रकार जो व्यक्ति शिक्षित होगा, वह रूढ़िगत परम्पराओं में परिवर्तन लाने की उम्मीद रखेगा। परिवार के सदस्यों की शिक्षा का प्रभाव बच्चों पर पड़ता है। पढ़े-लिखे माता-पिता अपने बच्चों को न केवल पढ़ाने की इच्छा रखते हैं, अपितु जीवन के विभिन्न सन्दर्भों में भी उन्हें आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हैं। अतः परिवार के सदस्यों की शिक्षा का प्रभाव बच्चों के मूल्यों पर होना अपेक्षित है। प्रायः शिक्षित व्यक्ति आधुनिक विचारों के तथा अशिक्षित व्यक्ति परम्परागत विचारों के पाए जाते हैं।

डाक विभाग के अन्तर्गत अब डाकियों की नियुक्ति सीधे न होकर प्रतियोगितात्मक परीक्षा व पदोन्नति द्वारा ही हो रही है। जिस स्थान से इस पद के लिये इनकी पदोन्नति होती है उसके लिये न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता जूनियर हाईस्कूल ही रखी गई है, लेकिन अब हाईस्कूल, इण्टरमीडिएट, स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर तक की शिक्षा प्राप्त व्यक्ति भी इन पदों पर आ रहे हैं जैसा कि निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है--

तालिका संख्या-8
उत्तरदाताओं की शैक्षणिक योग्यता

क्र.सं.	शैक्षणिक योग्यता	डाकियों की संख्या	प्रतिशत
1.	जूनियर हाईस्कूल	70	38.89
2.	हाईस्कूल	59	32.78
3.	इण्टरमीडिएट	28	15.56
4.	स्नातक	13	7.22
5.	स्नातकोत्तर	10	5.55
6.	अन्य		
योग		180	100.00

इस प्रकार तालिका देखने से पता चलता है कि कुल 180 उत्तरदाताओं में से 38.89 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जो जूनियर हाई स्कूल तक की शिक्षा प्राप्त किये हैं, 32.78 प्रतिशत उत्तरदाता हाईस्कूल तक की शिक्षा प्राप्त है, 15.56

प्रतिशत उत्तरदाता इण्टरमीडिएट, 7.22 प्रतिशत उत्तरदाता स्नातक तथा 5.55 प्रतिशत उत्तरदाता स्नातकोत्तर तक की शिक्षा प्राप्त किये हुए हैं।

अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि इस पद पर भी उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति आ रहे हैं। इससे इतना तो अवश्य होगा कि ऐसी शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के सोचने व कार्य करने का ढँग अपेक्षाकृत बेहतर होगा।

उत्तरदाताओं की जाति का विवरण- जाति अपने आप में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्था है। भारत में जाति-प्रथा की इतनी गहरी पैठ है कि यहाँ रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति इससे अछूता नहीं है। मुसलमान व ईसाई तक भी इसके शिकंजे में फँस चुके हैं भले ही उसका रूप वैसा न हो जैसा यहाँ के हिन्दुओं की जाति में है। प्रारम्भ में जाति प्रथा अत्यन्त ही जटिल थी, लेकिन समय के परिवर्तन के साथ-साथ इसके स्वरूप में भी परिवर्तन आता गया। आज भारत में लगभग तीन हजार जातियाँ व उपजातियाँ हैं। भारत में जाति-प्रथा का प्रचलन आदिकाल से ही रहा है। यहाँ जाति प्रथा ने व्यक्ति के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक जीवन को प्रभावित किया है। ऐसा कहा जाता है कि यहाँ की हवा में भी जाति घुली हुई है। जाति का स्तर व्यक्ति के व्यवहार, दृष्टिकोण तथा उसके प्रतिदिन के जीवन के सम्बन्ध को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निश्चितता प्रदान करता रहा है। उच्च जातियों, मध्यम जातियों तथा निम्न जातियों के विचारों में कुछ भिन्नता हो सकती है। ऐसा सम्भव है कि निम्न जातियाँ जो कार्य कर सकती हैं वह उच्च जातियाँ न कर सकें। कभी-कभी इसके विपरीत भी हो सकता है।

श्रीमती इरावती कर्वे का मत है कि यदि हम भारतीय संस्कृति के तत्वों को समझना चाहते हैं तो जाति प्रथा का अध्ययन आवश्यक है।[1]

आधुनिक परिवर्तनों के साथ जाति व्यवस्था में भी परिवर्तन हुए हैं तथापि जाति एक पुरातन व्यवस्था है जो जीवन से समाप्त नहीं हो सकी है। व्यक्तियों के विचारों के निर्धारण में जाति की महत्वपूर्ण भूमिका है, इसलिये जाति के आधार पर अध्ययन आवश्यक है।

प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत कुल 180 डाकिये सम्मिलित हैं। इन डाकियों में से हिन्दू डाकियों की संख्या 174 तथा मुसलमान डाकियों की संख्या-6 है। चूँकि मुसलमानों में जातिव्यवस्था हिन्दुओं से अलग है इसलिये दोनों के निष्कर्षों में भिन्नता हो सकती है, अतः निम्नांकित अध्ययन (जाति) में मुसलमान डाकियों को सम्मिलित नहीं किया गया है।

उत्तरदाताओं का जाति के आधार पर अध्ययन करने का उद्देश्य यह था ताकि यह देखा जा सके कि किन-किन जातियों के लोगों ने परम्परागत पेशों को छोड़कर नौकरी के पेशे के रूप में इस व्यवसाय को अपनाया है।

1. Smt. Irawati Karve 'Kinship Organisation in India'

उत्तरदाताओं की जाति सम्बन्धित सूचना निम्नांकित तालिका में स्पष्ट है-

तालिका संख्या-9

उत्तरदाताओं का जातिगत वर्गीकरण

क्र.सं.	जाति	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	उच्च	63	36.21
2.	मध्यम	56	32.18
3.	निम्न	55	31.61
योग		174	100.00

तालिका से स्पष्ट है कि 174 हिन्दू डाकियों को तीन श्रेणियों में रखा गया है--

1. उच्च जातियाँ 2. मध्यम जातियाँ 3. निम्न जातियाँ। उच्च जातियों के अन्तर्गत ब्राह्मण, क्षत्रिय डाकिये सम्मिलित किये गये हैं। इनकी संख्या 63 (36. 21 प्रतिशत) है, मध्यम जाति के अन्तर्गत वे जातियाँ सम्मिलित हैं, जो पिछड़ी तो हैं परन्तु अस्पृश्य नहीं हैं। ये जातियाँ हैं कायस्थ, बढ़ई, लोहार, यादव, कोंहार, नाई, गोंसाई, बारी और कुर्मी।

निम्न जातियों के अन्तर्गत अनुसूचित जातियों को सम्मिलित किया गया है। ये ऐसी जातियाँ हैं जो अभी भी अस्पृश्य मानी जाती हैं जैसे--धोबी, हरिजन, मौर्य, खटिक, धरिकार, निषाद व गोंड।

तालिका विश्लेषण से पता चलता है कि सभी जाति व समुदाय के व्यक्ति समय की माँग के अनुसार अपने परम्परागत पेशों को बदल रहे हैं। अपने जातिगत पेशे को धीरे-धीरे छोड़ते हुए ये अपने को श्रमिक वर्ग में संगठित कर रही है।

प्राचीन काल में सामाजिक व्यवस्था को सुचारु रूप से संचालित करने के उद्देश्य से सम्पूर्ण समाज के व्यक्तियों को चार वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) में विभाजित किया गया था। पहले यह विभाजन कर्म के आधार पर किया गया किन्तु आगे चलकर विभाजन का आधार जन्म माना जाने लगा। जाति सोपान में सबसे नीचे शूद्र जातियाँ आती रही हैं। भारतीय संविधान में इनकी स्थिति में काफी परिवर्तन किया गया परन्तु इनकी निम्न स्थिति आर्थिक, शैक्षणिक आदि में बनी रही। इस स्थिति में सुधार लाने के लिये कई कदम उठाए जा रहे हैं। जैसे- इनके लिये निःशुल्क शिक्षा, छात्रवृत्ति, पुस्तक की सहायता आदि दी जा रही है। संरक्षकों की आय के आधार पर मैट्रिकोत्तर छात्रवृत्तियाँ भी दी जाती हैं। छात्रों व छात्राओं की सुविधा के लिये स्थान सुरक्षित किये गये हैं।

इस प्रकार विभिन्न प्रोत्साहनों एवं सुविधाओं के साथ ये जातियाँ शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति के साथ-साथ अपने परम्परागत पेशे को छोड़ रही है और नौकरी पेशे को अपना रही है।

प्रतिशत उत्तरदाता इण्टरमीडिएट, 7.22 प्रतिशत उत्तरदाता स्नातक तथा 5.55 प्रतिशत उत्तरदाता स्नातकोत्तर तक की शिक्षा प्राप्त किये हुए हैं।

अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि इस पद पर भी उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति आ रहे हैं। इससे इतना तो अवश्य होगा कि ऐसी शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के सोचने व कार्य करने का ढँग अपेक्षाकृत बेहतर होगा।

उत्तरदाताओं की जाति का विवरण- जाति अपने आप में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्था है। भारत में जाति-प्रथा की इतनी गहरी पैठ है कि यहाँ रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति इससे अछूता नहीं है। मुसलमान व ईसाई तक भी इसके शिकंजे में फँस चुके हैं भले ही उसका रूप वैसा न हो जैसा यहाँ के हिन्दुओं की जाति में है। प्रारम्भ में जाति प्रथा अत्यन्त ही जटिल थी, लेकिन समय के परिवर्तन के साथ-साथ इसके स्वरूप में भी परिवर्तन आता गया। आज भारत में लगभग तीन हजार जातियाँ व उपजातियाँ हैं। भारत में जाति-प्रथा का प्रचलन आदिकाल से ही रहा है। यहाँ जाति प्रथा ने व्यक्ति के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक जीवन को प्रभावित किया है। ऐसा कहा जाता है कि यहाँ की हवा में भी जाति घुली हुई है। जाति का स्तर व्यक्ति के व्यवहार, दृष्टिकोण तथा उसके प्रतिदिन के जीवन के सम्बन्ध को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निश्चितता प्रदान करता रहा है। उच्च जातियों, मध्यम जातियों तथा निम्न जातियों के विचारों में कुछ भिन्नता हो सकती है। ऐसा सम्भव है कि निम्न जातियाँ जो कार्य कर सकती हैं वह उच्च जातियाँ न कर सकें। कभी-कभी इसके विपरीत भी हो सकता है।

श्रीमती इरावती कर्वे का मत है कि यदि हम भारतीय संस्कृति के तत्वों को समझना चाहते हैं तो जाति प्रथा का अध्ययन आवश्यक है।[1]

आधुनिक परिवर्तनों के साथ जाति व्यवस्था में भी परिवर्तन हुए हैं तथापि जाति एक पुरातन व्यवस्था है जो जीवन से समाप्त नहीं हो सकी है। व्यक्तियों के विचारों के निर्धारण में जाति की महत्वपूर्ण भूमिका है, इसलिये जाति के आधार पर अध्ययन आवश्यक है।

प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत कुल 180 डाकिये सम्मिलित हैं। इन डाकियों में से हिन्दू डाकियों की संख्या 174 तथा मुसलमान डाकियों की संख्या-6 है। चूँकि मुसलमानों में जातिव्यवस्था हिन्दुओं से अलग है इसलिये दोनों के निष्कर्षों में भिन्नता हो सकती है, अतः निम्नांकित अध्ययन (जाति) में मुसलमान डाकियों को सम्मिलित नहीं किया गया है।

उत्तरदाताओं का जाति के आधार पर अध्ययन करने का उद्देश्य यह था ताकि यह देखा जा सके कि किन-किन जातियों के लोगों ने परम्परागत पेशों को छोड़कर नौकरी के पेशे के रूप में इस व्यवसाय को अपनाया है।

1. Smt. Irawati Karve 'Kinship Organisation in India'

उत्तरदाताओं की जाति सम्बन्धित सूचना निम्नांकित तालिका में स्पष्ट है-

तालिका संख्या-9

उत्तरदाताओं का जातिगत वर्गीकरण

क्र.सं.	जाति	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	उच्च	63	36.21
2.	मध्यम	56	32.18
3.	निम्न	55	31.61
योग		174	100.00

तालिका से स्पष्ट है कि 174 हिन्दू डाकियों को तीन श्रेणियों में रखा गया है--

1. उच्च जातियाँ 2. मध्यम जातियाँ 3. निम्न जातियाँ। उच्च जातियों के अन्तर्गत ब्राह्मण, क्षत्रिय डाकिये सम्मिलित किये गये हैं। इनकी संख्या 63 (36.21 प्रतिशत) है, मध्यम जाति के अन्तर्गत वे जातियाँ सम्मिलित हैं, जो पिछड़ी तो हैं परन्तु अस्पृश्य नहीं हैं। ये जातियाँ हैं कायस्थ, बढ़ई, लोहार, यादव, कोंहार, नाई, गोंसाई, बारी और कुर्मी।

निम्न जातियों के अन्तर्गत अनुसूचित जातियों को सम्मिलित किया गया है। ये ऐसी जातियाँ हैं जो अभी भी अस्पृश्य मानी जाती हैं जैसे--धोबी, हरिजन, मौर्य, खटिक, धरिकार, निषाद व गोंड।

तालिका विश्लेषण से पता चलता है कि सभी जाति व समुदाय के व्यक्ति समय की माँग के अनुसार अपने परम्परागत पेशों को बदल रहे हैं। अपने जातिगत पेशे को धीरे-धीरे छोड़ते हुए ये अपने को श्रमिक वर्ग में संगठित कर रही है।

प्राचीन काल में सामाजिक व्यवस्था को सुचारु रूप से संचालित करने के उद्देश्य से सम्पूर्ण समाज के व्यक्तियों को चार वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) में विभाजित किया गया था। पहले यह विभाजन कर्म के आधार पर किया गया किन्तु आगे चलकर विभाजन का आधार जन्म माना जाने लगा। जाति सोपान में सबसे नीचे शूद्र जातियाँ आती रही हैं। भारतीय संविधान में इनकी स्थिति में काफी परिवर्तन किया गया परन्तु इनकी निम्न स्थिति आर्थिक, शैक्षणिक आदि में बनी रही। इस स्थिति में सुधार लाने के लिये कई कदम उठाए जा रहे हैं। जैसे- इनके लिये निःशुल्क शिक्षा, छात्रवृत्ति, पुस्तक की सहायता आदि दी जा रही है। संरक्षकों की आय के आधार पर मैट्रिकोत्तर छात्रवृत्तियाँ भी दी जाती हैं। छात्रों व छात्राओं की सुविधा के लिये स्थान सुरक्षित किये गये हैं।

इस प्रकार विभिन्न प्रोत्साहनों एवं सुविधाओं के साथ ये जातियाँ शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति के साथ-साथ अपने परम्परागत पेशे को छोड़ रही है और नौकरी पेशे को अपना रही है।

जातीयता में विश्वास सम्बन्धी दृष्टिकोण- अध्ययन के अन्तर्गत निम्न विचार और दृष्टिकोण वाले उत्तरदाता पाए गए। जातीयता के सम्बन्ध में उनके विचार ज्ञात करने पर पता चला कि उनमें से कुछ जातीयता में विश्वास करते हैं जब कि कुछ नहीं भी करते हैं। इसका विवरण तालिका में स्पष्ट है--

तालिका संख्या-10

जातीयता में विश्वास सम्बन्धी दृष्टिकोण

क्र.सं.	जातीयता में विश्वास	डाकियों की संख्या	प्रतिशत
1.	करते हैं	166	95.4
2.	नहीं करते हैं	08	4.6
योग		174	100.00

विवरण से स्पष्ट है कि कुल 174 हिन्दू डाकियों में 95.4 प्रतिशत डाकिये जातीयता में विश्वास करते हैं। जब कि 4.6 डाकियों ने इसके विपक्ष में उत्तर दिया।

इससे पता चलता है कि समय में परिवर्तन तथा शिक्षा में वृद्धि के बावजूद अधिकांश उत्तरदाता अभी भी जातीयता में विश्वास करते हैं।

उत्तरदाताओं से जब यह पूछा गया कि वे जातीयता में विश्वास का आधार किसे मानते हैं, जन्म को, पेशे को या रंग को? जातीयता में विश्वास करने वाले कुल 166 डाकियों में से सभी ने जातीयता में विश्वास का आधार जन्म को बताया।

इससे पता चलता है कि डाकियों में जाति की नैतिक शक्ति अभी भी प्रबल है और वे जातिगत भेद-भाव का आधार जन्म को ही मानते हैं।

उत्तरदाताओं में जातीयता में विश्वास न करने के आधार सम्बन्धी दृष्टिकोण- कुल 174 हिन्दू उत्तरदाताओं में से 6 उत्तरदाता जातीयता में विश्वास नहीं करते। इस सम्बन्ध में उनके द्वारा दिये गये विवरण इस प्रकार हैं।

तालिका संख्या-11

डाकियों का जातीयता में विश्वास न करने के आधार

क्र.सं.	विश्वास न करने के आधार	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	यह एक अन्धविश्वास है	2	25
2.	प्रगति में बाधक है	6	75
3.	सामाजिक जीवन में इसका कोई महत्व नहीं है।		
4.	अन्य		
योग		8	100

विवरण से स्पष्ट है कि जिन 8 डाकियों ने जातीयता में विश्वास करने से इन्कार किया है उनमें 25 प्रतिशत डाकिये ऐसे हैं जो इसे महज एक अन्धविश्वास मानते हैं, जबकि 75 प्रतिशत डाकियों ने इसे प्रगति में बाधक बताया है।

सामाजिक प्रस्थिति के निर्धारक कारक- समाज में आय-व्यय और सामाजिक स्थिति में अन्तः सम्बन्ध देखा जाता है। यह भी देखा गया है कि आय-व्यय का स्तर मनुष्य की स्थिति को समाज में स्थिर रखता है और साथ ही उच्च सामाजिक स्थिति आय-व्यय को भी निर्धारित करती है व रहन-सहन के स्तर को ऊपर उठाती है। समाज में सामूहिक-स्थति के निर्धारण में विभिन्न कारकों का योगदान होता है।

अध्ययन के अन्तर्गत उत्तरदाताओं से उनकी सामाजिक प्रस्थिति को निर्धारित करने वाले कारकों के विषय में प्रश्न किये गये। निम्नांकित तालिका उत्तरदाताओं की सामाजिक स्थिति के निर्धारक कारक को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करती है।

तालिका संख्या-12

सामाजिक प्रस्थिति के निर्धारक कारक

क्र.सं.	कारक	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	जाति	26	14.44
2.	धन	86	47.78
3.	शिक्षा		
4.	पेशा	68	37.78
5.	अन्य		
योग		180	100.00

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि 14.44 प्रतिशत उत्तरदाता जाति को सामाजिक स्थिति का निर्धारक कारक मानते हैं, 47.78 प्रतिशत धन को सामाजिक स्थिति का निर्धारक कारक मानते हैं तथा 37.78 प्रतिशत उत्तरदाता सामाजिक स्थिति का निर्धारक कारक पेशे को मानते हैं।

इस प्रकार तालिका विश्लेषण से निष्कर्ष निकलता है कि अधिकांश डाकिए धन और पेशे को तथा सबसे कम जाति को सामाजिक-स्थिति का निर्धारण-कारक मानते हैं। शिक्षा को किसी ने भी निर्धारण-कारक नहीं माना है। उनका यह कहना है कि आज का युग भौतिक युग है जिसके पास पैसे हैं और ऊँचे पदों पर हैं उन्हीं का समाज में अधिक महत्व और प्रतिष्ठा है।

अस्पृश्यता सम्बन्धी विचारों का विवरण- सामाजिक पृष्ठभूमि के अन्तर्गत डाकियों में अस्पृश्यता सम्बन्धी विचारों का भी अध्ययन किया गया है।

भारत एक ऐसा देश है जहाँ अस्पृश्य लोगों की संख्या करोड़ों में है। इन्हें कई शताब्दियों तक मानव–अधिकारों से वंचित रखा गया है। इन पर अनेक निर्योग्यताएँ लादी गईं और विभिन्न प्रकार से इनका शोषण किया जाता रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात इन लोगों की तरफ विशेष रूप से ध्यान दिया गया, इनके पिछड़पन को दूर करने के लिये विशेष सुविधाएँ प्रदान की गईं, इनके शैक्षणिक, आर्थिक एवं सामाजिक हितों को प्रोत्साहित करने का प्रयास किया गया।

कौन सी जातियाँ अस्पृश्य कही जाएंगी और इनका आधार क्या है, यह सदैव विवाद का विषय रहा है। अनेक उल्लेखों से ऐसा ज्ञात होता है कि वे सभी जातियाँ अस्पृश्य हैं जो घृणित पेशे के द्वारा धनोपार्जन करती हैं, लेकिन यह आधार भ्रमपूर्ण है।

जे.एच.हट्टन का विचार है कि कुछ निर्योग्यताओं के आधार पर अस्पृश्य जातियों का निर्धारण करने का प्रयास किया गया, अस्पृश्य जातियाँ वे हैं जो

(क) उच्च जाति की सेवा पाने के अयोग्य हों,
(ख) सवर्ण हिन्दुओं की सेवा करने वाले नाइयों, कहारों तथा दर्जियों की सेवा पाने के अयोग्य हों,
(ग) हिन्दू मन्दिरों में प्रवेश करने के अयोग्य हों,
(घ) सार्वजनिक सुविधाओं के उपयोग में लाने के अयोग्य हों,
(ङ) घृणित पेशों से पृथक् होने के अयोग्य हों।[1]

डॉ0 डी. एन. मजूमदार का मत है कि अस्पृश्य जातियाँ वे हैं जो अनेक सामाजिक और राजनैतिक निर्योग्यताओं से पीड़ित हैं, जिनमें से अधिकांश निर्योग्यताएँ उच्च जातियों द्वारा परम्परागत रूप से निर्धारित और सामाजिक रूप से लागू की गई।[2]

1931 में ब्रिटिश सरकार ने अश्पृश्यता के लिये निम्नलिखित मानदण्ड निश्चित किया।

1. अस्पृश्यों की पुरोहिती ब्राह्मण नहीं करते यदि ब्राह्मण किसी जाति का पुरोहित है तो उसे अस्पृश्य नहीं कहा जा सकता।
2. उस जाति की सेवा नाई, कुम्हार, धोबी, दर्जी आदि नहीं करते।
3. उस जाति के स्पर्श मात्र से ही कोई व्यक्ति अपवित्र हो जाता है।
4. उस जाति के व्यक्ति का छुआ पानी सवर्ण हिन्दू स्वीकार नहीं करते।
5. वे लोग सार्वजनिक स्थल, कुओं सड़कों आदि का प्रयोग नहीं कर सकते।
6. वे लोग मन्दिरों में प्रवेश नहीं कर सकते।
7. वह जाति अपने व्यवसाय के कारण निम्न समझी जाती है।

---

1. J. H. Hutton- Caste in India, Page 72-78.
2. D. N. Majumdar- Races and Cultures of India Page- 226.

8. उस जाति का शिक्षित तथा गुणों से सम्पन्न व्यक्ति समाज में प्रतिष्ठा नहीं पाता है।

यदि उपर्युक्त दशाएँ कोई जाति पूरी करती है तो उसे अस्पृश्य कहा जाता है।

इस प्रकार अस्पृश्यता प्राचीन काल से ही जाति व्यवस्था के अंग के रूप में विद्यमान रही है। वैदिक काल में व्यवहारत: सभी समान थे, न कोई बड़ा था न कोई छोटा, आपस में सभी भाई-भाई थे।

डॉ0 धुरिये के अनुसार उत्तर वैदिक काल में चारों वर्ण एक दूसरे से पृथक् हो गये और अस्पृश्यता से सम्बन्धित प्रतिबन्ध केवल चाण्डालों पर ही नहीं बल्कि पूरे शूद्र वर्ण पर लागू किये जा चुके थे।

अस्पृश्यता सम्बन्धी विचार स्मृतिकाल में सबसे अधिक हुए। स्मृतिकाल में यह स्पष्ट कहा गया है कि चाण्डालों को गाँव से बाहर रहना होगा। स्मृतियुग में चाण्डालों को वे सभी कार्य सौंपे गये जिसे समाज में सबसे अधम समझा जाता था। ऐसे व्यक्तियों के स्पर्श पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया गया। बस्ती में गन्दगी साफ करना, लावारिस शवों को उठाना इस वर्ग का धर्म समझा गया।

मुसलमानों के शासन काल में धर्म के नाम पर अछूत वर्ग का सबसे ज्यादा शोषण हुआ, अस्पृश्य को बस्ती से दूर किसी निर्जन स्थान पर रहने के आदेश दिये गये, सार्वजनिक वस्तु को स्पर्श करने, धार्मिक कार्यों में भाग लेने तथा पूजा पाठ करने आदि पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इस प्रकार 19वीं शताब्दी में अस्पृश्यता की समस्या इतनी गम्भीर हो गई कि अनेक अस्पृश्यों ने इस्लाम व ईसाई धर्म ग्रहण कर लिये। ब्रिटिश काल में अस्पृश्यों को बहुत समय तक दलित वर्ग कहा जाता रहा है। डॉ0 अम्बेडकर ने गोलमेज सम्मेलन में यह सुझाव रखा कि अस्पृश्यों को हिन्दू समाज से बाहर मानकर उन्हें मतदान का अधिकार दिया जाय, परन्तु उसी समय गाँधी जी ने अस्पृश्यों को हिन्दू समाज का ही अंग मान लिया।

स्वतंत्रता के पश्चात संविधान की धारा 341 के अनुसार राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया है कि प्रत्येक राज्य के राज्यपालों से परामर्श करके राज्य के अनुसूचित जातियों की घोषणा करें। गाँधीजी ने अस्पृश्य जातियों को अधिक सम्मान देने के लिये उन्हें हरिजन कहना प्रारम्भ कर दिया था जो आज भी प्रचलित है।

हमारे देश में अस्पृश्य जातियों की अनेक समस्याएं रही हैं। के. एम. पणिक्कर ने लिखा है कि यह मान लेना बिल्कुल गलत होगा कि अस्पृश्यता समाप्त करने की घोषणा मात्र से ही अस्पृश्यों की सामाजिक समस्याएँ दूर हो गई हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सरकारी प्रयासों के फलस्वरूप इसमें कमी आई है। धार्मिक ग्रन्थों में इनकी समस्याओं का उल्लेख किया गया है।

अस्पृश्यता के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं के विचार- अध्ययन के अन्तर्गत अस्पृश्यता में विश्वास के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं के विचार ज्ञात करने के लिये उनसे प्रश्न पूछे गये। सर्व प्रथम उनसे यह पूछा गया कि वे अस्पृश्यता में विश्वास करते हैं या नहीं, उनके द्वारा दिये गये उत्तर निम्नांकित तालिका में स्पष्ट हैं--

तालिका संख्या-13

क्र.सं.	आधार	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	अस्पृश्यता में विश्वास करते हैं	54	30
2.	अस्पृश्यता में विश्वास नहीं करते हैं	126	70
योग		180	100

तालिका से स्पष्ट है कि 30 प्रतिशत उत्तरदाता अस्पृश्यता में विश्वास करते हैं, जब कि 70 प्रतिशत अस्पृश्यता में विश्वास नहीं करते हैं। अत: इनमें अधिकांश लोग इसमें विश्वास नहीं करते हैं।

इससे पता चलता है कि डाकियों में अस्पृश्यता सम्बन्धी धारणा में काफी परिवर्तन आया है।

यदि अस्पृश्यता में विश्वास करते हैं तो क्यों?- कुल 180 डाकियों में से जिन 54 डाकियों ने यह बताया कि वे अस्पृश्यता में विश्वास करते हैं उनसे इसका कारण पूछा गया, जिसका विवरण तालिका में स्पष्ट है--

तालिका संख्या-14

क्र.सं.	आधार	उत्तरदाताओं की संख्या	उत्तरदाताओं की प्रतिशत
1.	यह एक सामाजिक मान्यता है	23	41
2.	यह समाज की व्यवस्था को चलाने में सहायक है।		
3.	यह परम्परा से चला आ रहा है	33	59
4.	अन्य		
योग		56	100

तालिका से स्पष्ट है कि 41 प्रतिशत उत्तरदाता अस्पृश्यता में इसलिये विश्वास करते हैं, क्योंकि यह एक सामाजिक मान्यता है; जब कि 59 प्रतिशत उत्तरदाताओं का यह कहना है कि वे अस्पृश्यता में विश्वास इसलिये करते हैं क्योंकि ऐसा परम्परा से चला आ रहा है।

इससे स्पष्ट होता है कि अभी भी कुछ डाकिये ऐसे हैं जो समाज के भय के कारण अथवा परम्परागत रीति रिवाजों के कारण छुआछूत में विश्वास रखते

हैं। लेकिन उन्होंने बताया कि कार्य स्थल पर उन्हें ऐसे व्यक्तियों के साथ किसी प्रकार कार्य करना पड़ रहा है।

अस्पृश्यों को समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता रहा है। इन्हें समाज में सम्मानजनक स्थान देना आवश्यक है। अध्ययन के अन्तर्गत अस्पृश्यता में विश्वास न करने वाले उत्तरदाताओं से अस्पृश्यों को समाज में स्थान देने के सम्बन्ध में प्रश्न किये गये कि यदि वे अस्पृश्यता में विश्वास नहीं करते तो वे उन्हें समाज में किस प्रकार का स्थान देना चाहेंगे, कुल 126 उत्तरताओं ने बताया कि अस्पृश्यों को समाज में निम्न स्थान देना उचित नहीं है। वे भी समाज के अंग हैं। उन्हें भी बराबर का स्थान दिया जाना चाहिये।

उत्तरदाताओं का भाग्य में विश्वास सम्बन्धी दृष्टिकोण– आज के बदलते युग में शिक्षा का महत्व बढ़ता जा रहा है। फलस्वरूप व्यक्ति के सोचने, विचारने की क्षमता भी बदलती रही है। लोगों में अन्धविश्वास कम होते जा रहे हैं, फिर भी अभी समाज में कुछ ऐसे लोग हैं जो इनमें विश्वास कर रहे हैं।

सामाजिक पृष्ठिभूमि के अन्तर्गत ही डाकियों का भाग्य में विश्वास सम्बन्धी दृष्टिकोण ज्ञात करने का प्रयास किया गया। इस सम्बन्ध में उनसे पूछा गया कि क्या वे भाग्य में विश्वास करते हैं, उनके द्वारा व्यक्त किये गये विचार उनकी शिक्षा को आधार मानते हुए निम्नांकित तालिका में प्रस्तुत किये गये हैं--

तालिका संख्या-15

क्र.सं.	डाकियों की संख्या (शिक्षा के आधार पर)		भाग्य में विश्वास पक्ष	प्रतिशत विश्वास विपक्ष	भाग्य में	प्रतिशत
1.	जूनियर हाई स्कूल	70	64	46.38	06	14.40
2.	हाई स्कूल	59	46	33.33	13	30.85
3.	इण्टर	28	18	23.04	10	23.80
4.	स्नातक/स्नातकोत्तर	23	10	07.25	13	30.95
5.	अन्य					
	योग	180	138	100.00	42	100.00

भाग्य के विषय में उत्तरदाताओं के विचार देखने से पता चलता है कि कुल 180 उत्तरदाताओं में से 70 डाकिये जो जूनियर हाई स्कूल कक्षा उत्तीर्ण हैं उनमें 46.38 प्रतिशत भाग्य में विश्वास करते हैं, जब कि 14.40 प्रतिशत उत्तरदाता भाग्य में विश्वास नहीं करते हैं। हाई स्कूल कक्षा उत्तीर्ण 59 उत्तरदाताओं में से 33.33 प्रतिशत भाग्य में विश्वास के पक्ष में, 30.85 प्रतिशत इसके विपक्ष में हैं। इसी प्रकार इण्टरमीडिएट कक्षा उत्तीर्ण कुल 28 उत्तरदाताओं में से

13.04 प्रतिशत भाग्य में विश्वास करते हैं, जबकि 30.95 प्रतिशत भाग्य में विश्वास नहीं करते तथा स्नातक/स्नातकोत्तर कक्षा उत्तीर्ण 23 उत्तरदाताओं में से 7.25 प्रतिशत उत्तरदाता भाग्य में विश्वास करते हैं, जबकि 30.95 प्रतिशत भाग्य में विश्वास नहीं करते हैं।

इस प्रकार तालिका से निष्कर्ष निकलता है कि उत्तरदाताओं में जैसे-जैसे शिक्षा का प्रतिशत बढ़ रहा है, उनमें भाग्य के प्रति विश्वास कम होता जा रहा है।

समाज में ऊपर उठने की चाह– मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में उसकी एक स्थिति है। व्यक्ति उस स्थिति को बनाए रखने के लिये अथवा अपनी स्थिति को ऊँची उठाने के लिये कभी-कभी निरर्थक व्यय करता है, जिसका कोई प्रयोजन नहीं है। ऐसी भावना प्रत्येक व्यक्ति के मानस-पटल पर है कि वह समाज में उच्च प्रस्थिति प्राप्त करे एंव अपनी प्रतिष्ठा में वृद्धि करे।

अध्ययन के अन्तर्गत उत्तरदाताओं से यह पूछा गया कि वे अपनी वर्तमान स्थिति से सन्तुष्ट हैं, यदि नहीं तो क्या वे समाज में ऊपर उठना चाहते हैं, सभी उत्तरदाताओं ने अपनी स्थिति के प्रति असन्तोष प्रकट किया और समाज में ऊपर उठने की चाह व्यक्त की।

: 4 :

डाकियों के परिवार का स्वरूप

प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत डाकियों के परिवार का स्वरूप, उनमें पारिवारिक गतिशीलता, उनकी वैवाहिक स्थिति, बच्चों के विवाह की आयु सम्बन्धी दृष्टिकोण, बच्चों का शैक्षणिक विवरण, शैक्षणिक गतिशीलता, उनके सहशिक्षा आदि के विषय में डाकियों के विचार ज्ञात किये गये हैं।

व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण में परिवार का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सामाजिक प्राणी होने के कारण मनुष्य की कुछ मौलिक आवश्यकतायें हैं जैसे– भोजन, मकान, कामवासना आदि। मानव-जीवन के अस्तित्व के लिये इन आवश्यकताओं की उचित ढँग से पूर्ति आवश्यक है। इसी को पूरा करने के लिये परिवार संस्था की उत्पत्ति हुई है।

परिवार एक प्राथमिक समूह है जो हर स्थान पर पाया जाता है। इसका स्वरूप हर काल में अलग-अलग रहा है। परिवार आज भी भारतीय सामाजिक जीवन का मुख्य स्तम्भ है। निस्सन्देह इनमें परिवर्तन हो रहे हैं, लेकिन परिवार का रूप इतना नहीं परिवर्तित हुआ है कि हम यह कह सकें कि एक छत के नीचे रहने वाले किसी भी प्रकार के स्त्री पुरुष जिसका एक साथ रहने के कारण सम्बन्ध बन जाता है, एक परिवार के हैं। भारतीय आज भी अपने परम्परात्मक रूप में संयुक्त हैं। यह संयुक्तता आंशिक हो सकती है जैसे परिवार के सभी लोग पीढ़ी दर पीढ़ी एक छत के नीचे नहीं रहते, उनका एक चूल्हा नहीं है, सम्पत्ति भी सम्मिलित नहीं है लेकिन उनका परिवार से आज भी सम्बन्ध उसी प्रकार है जैसे पहले कभी रहा होगा। परिवार के सभी सदस्यों का एक दूसरे से सम्बन्ध चाहे वे कितने भी दूर क्यों न हों, आज भी पहले जैसा ही बना हुआ है। जब कभी घरों में कोई अनुष्ठान या उत्सव होता है तो प्राय: परिवार के सभी सदस्य एकत्र होकर उस उत्सव या अनुष्ठान में भाग लेते हैं।

भारतीय परिवार के सम्बन्ध में अब तक जो अध्ययन हुए हैं उनकी उपलब्धियाँ महत्वपूर्ण हैं, लेकिन ये भी इस बात की ओर इंगित करती हैं कि भारतीय परिवार के ढाँचे में परिवर्तन गम्भीर नहीं हुए हैं।

अध्ययन के अन्तर्गत लगभग सभी डाकिये मूलत: गाँवों के ही निवासी हैं। उनका परिवार भी मुख्य रूप से गाँवों में ही है। जो डाकिये शहर में हैं वे भी गाँव के ही हैं, उनका सम्बन्ध शहर से बना हुआ है। इसलिये ग्रामीण परिवार का

जो ढाँचा है वह संयुक्त ही है। यद्यपि आज इनके स्वरूप में परिवर्तन आ रहा है और डाकिये भी इनसे अछूते नहीं हैं।

प्रस्तुत अध्ययन इन्हीं डाकियों की पारिवारिक-संरचना का विवरण प्रस्तुत करता है।

उत्तरदाताओं की पारिवारिक संरचना– शताब्दियों से भारतीय सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत संयुक्त परिवारों द्वारा ही मानव की अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति होती रही है। आज इस संयुक्त परिवार व्यवस्था में तीव्र गति से परिवर्तन आ रहा है, लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी कुछ जातियों में संयुक्त परिवारों का अस्तित्व बना हुआ है।

प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत उत्तरदाता संयुक्त और एकाकी दोनों प्रकार के परिवारों से सम्बद्ध हैं। निम्नांकित तालिका उत्तरदाताओं की पारिवारिक संरचना को प्रस्तुत करती है--

तालिका संख्या-16

उत्तरदाताओं की पारिवारिक संरचना

क्र.सं.	परिवार की आकृति	उत्तरदाताओं की संख्या	उत्तरदाताओं का प्रतिशत
1.	संयुक्त परिवार	72	40
2.	एकांकी परिवार	108	60
	योग	180	100

उपर्युक्त तालिका के अनुसार 40 प्रतिशत संयुक्त परिवारों से तथा 60 प्रतिशत डाकिये एकांकी परिवारों से सम्बद्ध हैं।

एकाकी परिवारों से सम्बन्ध रखने वाले डाकियों में अधिकतर प्रौढ़ और अधिक उम्र वाले डाकिये हैं जिन्होंने संयुक्त परिवारों में होने वाले कलह से तंग आकर संयुक्त परिवार में रहने का विचार त्याग दिया है तथा अपना अलग परिवार बसा लिया है। अब वे अपनी पत्नी व बच्चों का ही भरण-पोषण कर रहे हैं और सन्तुष्ट हैं।

संयुक्त परिवारों में रहने वाले अधिकांश डाकिये कम उम्र के हैं जिनमें कुछ तो अपने माता-पिता के साथ रह रहे हैं ताकि उनके सहयोग से अपनी आजीविका में से कुछ अंश बचा सकें दूसरे कुछ ऐसे डाकिये हैं जिनका परिवार बड़ा है आय के साधन सीमित हैं ऐसे डाकिये अपने पूरे परिवार का भरण-पोषण किसी प्रकार करने के लिये संयुक्त परिवारों में रह रहे हैं। इस प्रकार के संयुक्त परिवारों में छोटे-बड़े सदस्यों को अपनी आजीविका के लिये कुछ न कुछ कार्य करना पड़ रहा है।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि एकांकी परिवारों में वृद्धि हो रही है

और संयुक्त परिवार का भविष्य अन्धकारमय होता जा रहा है, लेकिन इतना अवश्य है कि अभी भी संयुक्त परिवारों का अस्तित्व बना हुआ है।

जाति के आधार पर उत्तरदाताओं के परिवार की प्रकृति– अध्ययन के अन्तर्गत जाति के आधार पर उत्तरदाताओं के परिवार की प्रकृति का अध्ययन किया गया। इसके अध्ययन करने का उद्देश्य यह ज्ञात करना है कि जाति के आधार पर किन-किन जातियों में संयुक्त परिवार की प्रकृति अभी विद्यमान है तथा कौन सी जातियाँ एकांकी परिवार को ग्रहण कर रही हैं।

निम्नलिखित तालिका में जाति के आधार पर मात्र हिन्दू उत्तरदाताओं में परिवार की प्रकृति का अध्ययन किया गया है। इसमें मुसलमान उत्तरदाता सम्मिलित नहीं है। मुसलमान उत्तरदाताओं में भी परिवार की प्रकृति का अध्ययन किया गया है किन्तु उसका विवरण निम्नांकित तालिका के पश्चात स्पष्ट किया गया है।

जाति के आधार पर उत्तदाताओं के परिवार की प्रकृति का विवरण

तालिका संख्या-17

क्र.सं.	जाति	उत्तरदाताओं की संख्या	परिवार की प्रकृति			
			संयुक्त	प्रतिशत	एकांकी	प्रतिशत
1.	उच्च	63	18	28.57	45	71.42
2.	मध्यम	55	25	45.45	30	54.55
3.	निम्न	56	25	44.64	31	55.36
योग		174	68		106	

तालिका से स्पष्ट है कि कुल 174 उत्तरदाताओं में 63 उत्तरदाता उच्च जाति के हैं। इनमें से 18 (28.57 प्रतिशत) उत्तरदाता संयुक्त परिवार से तथा 45 (71.42 प्रतिशत) एकांकी परिवार से सम्बन्धित हैं। मध्यम जाति के 55 उत्तरदाताओं में से 25 (45.45 प्रतिशत) उत्तरदाता संयुक्त परिवार तथा 30(54.55 प्रतिशत) उत्तरदाता एकांकी परिवारों से सम्बद्ध है तथा 56 निम्न जाति के उत्तरदाताओं में से 25(44.64 प्रतिशत) उत्तरदाता संयुक्त परिवार तथा 31(55.36 प्रतिशत) उत्तरदाता एकांकी परिवार से सम्बन्ध रखते हैं।

तालिका विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि यद्यपि संयुक्त परिवारों का अस्तित्व अभी बना हुआ है, लेकिन अब धीरे-धीरे उनमें परिवर्तन आ रहा है। सवर्णों के अतिरिक्त अन्य जातियाँ भी अब एकांकी परिवार को अधिक पसन्द कर रही हैं।

अध्ययन के अन्तर्गत 6 मुसलमान डाकिये हैं। इनमें 4 मुसलमान डाकियों के परिवार की प्रकृति अभी भी संयुक्त हैं, शेष 2 उत्तरदाताओं का परिवार एकांकी है।

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि हिन्दू उत्तरदाताओं में संयुक्त परिवार का

भविष्य जहाँ अन्धकारमय होता जा रहा है वहीं मुस्लिम के परिवारों में संयुक्तत अपेक्षाकृत बनी हुई है।

वैवाहिक स्थिति

विवाह समाज की महत्वपूर्ण संस्थाओं में से एक है जिसका अस्तित्व विश्व के अनेक भागों में पाया जाता है। यह वह साधन है जिसके आधार पर समाज की प्रारम्भिक इकाई परिवार का निर्माण होता है। विवाह एक सामान्य तथा स्वाभाविक घटना है। इस संस्था का उद्देश्य दो विभिन्न लिंगों के सम्बन्ध में स्थायित्व व निरन्तरता बनाये रखना है। मानव की विभिन्न प्राणिशास्त्रीय आवश्यकताओं में यौन सन्तुष्टि एक आधारभूत आवश्यकता है। मानव के अतिरिक्त अन्य प्राणी भी यौन इच्छाओं की पूर्ति करते हैं, लेकिन उनमें इसका केवल दैहिक आधार है। मानव में यौन इच्छाओं की पूर्ति का आधार अंशतः दैहिक, अंशतः सामाजिक एवं सांस्कृतिक है। यौन इच्छाओं की सन्तुष्टि ने ही विवाह, तथा नातेदारी संस्थाओं को जन्म दिया है। परिवार के बाहर भी यौन सम्बन्धों की सन्तुष्टि सम्भव है, किन्तु समाज ऐसे सम्बन्धों को अनुचित मानता है। कभी-कभी कुछ समाजों में परिवार के बाहर यौन-सम्बन्धों को संस्थात्मक रूप से स्वीकार किया जाता है, किन्तु वह भी एक निश्चित सीमा तक ही। यौन इच्छाओं की पूर्ति स्वस्थ जीवन एवं सामान्य रूप से जीवित रहने के लिये भी आवश्यक मानी गई। इसके अभाव में कई मनोविकृतियाँ पैदा हो जाती हैं। इसी कारण विवाह संस्था का जन्म हुआ है ताकि व्यक्ति यौन सन्तुष्टि के साथ अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, जैविकीय आदि आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। इसी संस्था के कारण सृष्टि की निरन्तरता बनी हुई है। व्यक्ति का व्यक्तित्व भी पूर्ण माना जाता है जब उसका विवाह हो चुका हो।

विवाह के सम्बन्ध में वेस्टरमार्क का कहना है कि विवाह एक या अधिक पुरुषों का एक या अधिक स्त्रियों के साथ होने वाला वह सम्बन्ध है, जिसे प्रथा या कानून स्वीकार करता है और जिसमें इस संगठन में आने वाले दो पक्षों एवं उनसे उत्पन्न बच्चों के अधिकार एवं कर्तव्यों का समावेश होता है।[1]

के0 एम0 कपाड़िया ने लिखा है कि हिन्दू विचारकों ने धर्म को विवाह का प्रथम तथा सर्वोच्च उद्देश्य तथा सन्तानोत्पादन को इसका दूसरा प्रमुख धर्म माना तो विवाह पर आधिपत्य हो गया।[2]

विवाह के समय यज्ञ की पवित्र अग्नि प्रज्जवलित की जाती है और गृह स्वामी का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह पंचमहायज्ञ में अपनी पत्नी के ही साथ नित्य आहुति प्रदान करे। इन उत्तरदायित्वों की समाप्ति गृहस्वामी की मृत्यु के पश्चात ही होती थी। पत्नी की मृत्यु हो जाने पर इनमें व्यवधान पड़ जाता था और इसीलिये गृहस्वामी के लिये तुरन्त दूसरी पत्नी का विधान था। इस प्रकार मुख्य रूप से विवाह कर्तव्यों की पूर्ति होने के कारण उसका मूल उद्देश्य धर्म था।

1. Westmark The History of Human Marriage. P. 213-214.
2. K. M. Kapadia Marriage and Family in India P. 121.

उत्तरदाताओं की वैवाहिक स्थिति का विवरण

व्यक्ति के विवाहित और अविवाहित होने का प्रभाव उसके विचार प्रेरणा एवं व्यवहार पर पड़ता है, क्योंकि विवाहित जीवन व्यक्ति को सुख एवं संतोष प्रदान करता है, इसके विपरीत अविवाहित जीवन व्यक्ति को असमान्य व्यवहार करने को प्रेरित कर सकता है। अत: विवाहित होना समाज व परिवार के कर्तव्यों का पालन करना है। विवाहित व्यक्ति के विचार कुछ प्रभावकारी हो सकते हैं, विवाहित व्यक्ति समाज की परिस्थितियों के प्रति अविवाहित लोगों की अपेक्षा कुछ प्रतिक्रिया कर सकता है।

चूँकि डाक-विभाग में डाकियों की नियुक्ति सीधी न होकर प्रतियोगितात्मक परीक्षा व पदोन्नति के द्वारा होती है, अत: उन्हें डाकिये का पद प्राप्त करने में कुछ वर्ष लग जाते हैं जिनसे उनकी उम्र अपेक्षाकृत कुछ अधिक हो जाती है। अत: लगभग सभी डाकिये विवाहित जीवन में प्रवेश कर चुके होते हैं।

अध्ययन के अन्तर्गत डाकियों की वैवाहिक स्थिति को ज्ञात किया गया है। अग्रांकित तालिका डाकियों के वैवाहिक स्थिति का चित्रण प्रस्तुत करती है--

तालिका संख्या-18
उत्तरदाताओं की वैवाहिक स्थिति

क्र.सं.	वैवाहिक स्थिति	उत्तरदाताओं की संख्या	उत्तरदाताओं का प्रतिशत
1.	अविवाहित		
2.	विवाहित	160	88.89
3.	विधुर	20	11.11
4.	तलाकशुदा		
	योग	180	100.00

उपर्युक्त तालिका देखने से पता चलता है कि कोई भी उत्तरदाता ऐसा नहीं है जो अविवाहित हो, विवाहित उत्तरदाता 88.89 प्रतिशत हैं तथा विधुर उत्तरदाता 11.11 प्रतिशत हैं। अध्ययन के अन्तर्गत पाया गया कि 48-58 वर्ष आयु समूह के उत्तरदाता ही विधुर हैं। कोई भी डाकिया तलाकशुदा नहीं पाया गया। हमारे भारतीय समाज में तलाकशुदा व्यक्तियों की प्रस्थिति अच्छी नहीं मानी जाती। वैसे हिन्दू समाज में यह कम ही देखने को मिलता है।

विवाह सम्बन्धी आयु के विचारों का विवरण

प्राचीन काल में लड़के तथा लड़कियों का विवाह आठ या दस वर्ष की आयु में ही कर दिया जाता था, लेकिन आधुनिक समय में शिक्षा के विकास के कारण लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है।

के0 एम0 कपाड़िया के अनुसार मनुसंहिता में कहा गया है कि तीस वर्ष का पुरुष बारह वर्ष की कन्या से विवाह करे तथा चौबीस वर्ष का पुरूष आठ

के बीच तथा 2.22 प्रतिशत उत्तरदाता अपने लड़कों का विवाह 27 वर्ष अथवा उससे ऊपर की आयु में करना चाहते हैं।

तालिका से निष्कर्ष निकलता है कि अब सवर्णों के अतिरिक्त निम्न-जातियों के डाकियों के सोचने की क्षमता में परिवर्तन आया है। अब व्यवसाय में आने के कारण उनका विवाह के आयु सम्बन्धी दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है और उनमें से अधिकांश अपने लड़कों का विवाह वयस्क होने के पश्चात जब वे अपने पैरों पर खड़े हो करना चाहते हैं, लेकिन जिन उत्तरदाताओं ने 18 वर्ष से कम आयु में अपने लड़कों के विवाह की बात कही है, वे अपनी पारिवारिक रूढ़ियों से मुक्त नहीं हो पाए हैं। इनमें कुछ अपने बड़े बुजुर्ग के कहने के कारण लड़कों का विवाह 18 वर्ष से कम आयु में करना चाहते हैं।

इससे पहले भी विवाह सम्बन्धी आयु पर अध्ययन किये जा चुके हैं। सन् 1973 में एच. जी. पटेल ने गुजरात के भावनगर शहर के छात्रों के विवाह की आयु और परिवार के आकार के विषय में उनके विचारों का अध्ययन किया और पाया गया कि वे छात्र जिनके विवाह हो चुके थे, उनका विचार था कि विवाह की आयु उनकी अपनी आयु से अधिक होनी चाहिये। छात्र तथा छात्राएँ दोनों वर्ग के लोगों का विचार था कि विवाह अधिक उम्र में होना चाहिये।

अब जैसे-जैसे विभिन्न कानून बन रहे हैं जैसे-जैसे शिक्षा में वृद्धि हो रही है उसका प्रभाव लड़के और लड़कियों के विवाह की आयु पर पड़ रहा है। इस प्रकार इस अध्ययन से स्पष्ट है कि समय, कानून शिक्षा आदि में वृद्धि के कारण उत्तरदाताओं के अपने बच्चों के विवाह की आयु सम्बन्धी विचार प्रभावित हुए हैं। अब ज्यादातर उत्तर दाता अपने बच्चों का विवाह एक ऐसी उम्र में करना पसन्द कर रहे हैं, जब या तो वे उच्च शिक्षा ग्रहण कर चुके हों अथवा वे अपने पैरों पर खड़े हो चुके हों।

उत्तरदाताओं से उनके लड़कियों के विवाह की आयु विषय में विचार ज्ञात किये गये हैं।

तालिका संख्या-20

उत्तरदाताओं का लड़कियों के विवाह की आयु सम्बन्धी दृष्टिकोण की तालिका

क्र.सं.	लड़कियों के विवाह की आयु	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	15 वर्ष से कम	23	12.78
2.	15-17	33	18.33
3.	18-20	85	47.22
4.	21-23	36	20.00
5.	24 से ऊपर	03	1.67
योग		180	100

तालिका संख्या-21

क्र.सं.	उच्च शिक्षा	उत्तरदाताओं की संख्या	उत्तरदाताओं का प्रतिशत
1.	पक्ष	50	27.8 प्रतिशत
2.	विपक्ष	130	72.2 प्रतिशत
योग		180	100.00

तालिका से पता चलता है 27.8 प्रतिशत उत्तरदाता अपने पुत्रियों को उच्च शिक्षा देने के पक्ष में हैं, जबकि 72.2 प्रतिशत उच्च शिक्षा के विपक्ष में हैं। ये अपनी लड़कियों को उच्च स्तर से कम की शिक्षा देना चाहते हैं।

इससे पता चलता है कि लड़कियों की उच्च शिक्षा के प्रति उनमें जागरूकता तो है पर उनमें से अधिकांशतः उच्च शिक्षा देने के पक्ष में नहीं हैं। इनका यह कहना है कि उन्हें लड़कियों से नौकरी नहीं कराना है, उन्हें घरेलू जीवन व्यतीत करना है और उसके लिये आवश्यक नहीं कि उन्हें उच्च शिक्षा दी ही जाय।

दूसरी तरफ उच्च शिक्षा के पक्ष में विचार व्यक्त करने वाले डाकियों का कहना है कि उच्च शिक्षित लड़कियाँ परिवार को सही ढँग से निर्वाह कर सकती हैं, क्योंकि बच्चे के ऊपर पिता के साथ-माता की शिक्षा का भी प्रभाव पड़ता है। माता ही बच्चों की प्रथम शिक्षिका भी कही गई है।

उत्तरदाताओं का लड़कियों की सहशिक्षा के स्तर सम्बन्धी विचार

लड़कियों की शिक्षा के अन्तर्गत उत्तरदाताओं से यह पूछा गया कि क्या वे अपनी लड़कियों को लड़कों से अलग/कालेजों में शिक्षा देना चाहते हैं अथवा सहशिक्षा देना चाहते हैं, यदि सहशिक्षा देना चाहते हैं तो किस स्तर तक प्रस्तुत है इस सम्बन्ध में उत्तरदाताओं के विचार--

तालिका संख्या-22

उत्तरदाताओं का लड़कियों की सहशिक्षा के स्तर संबंधी विचार की तालिका

क्र.सं.	सहशिक्षा का स्तर	डाकियों की संख्या	प्रतिशत
1.	बेसिक स्तर	123	68.36
2.	जूनियर हाईस्कूल	32	17.77
3.	हाई स्कूल	14	7.77
4.	इण्टरमीडिएट	8	4.44
5.	स्नातक/स्नातकोत्तर	3	1.66
योग		180	100.00

इस प्रकार कुल 180 डाकियों में से 68.36% डाकियों ने बेसिक स्तर

तक अपनी लड़कियों को सहशिक्षा देने के सम्बन्ध में मत प्रकट किया, 17.77% डाकियों ने जूनियर हाईस्कूल तक सहशिक्षा के पक्ष में मत प्रकट किया, 7.77% डाकियों ने हाईस्कूल स्तर तक, 4.44% डाकियों ने इण्टरमीडिएट तथा, 1.66% डाकिये उच्च स्तर तक अपनी लड़कियों के सहशिक्षा के पक्ष में हैं।

इन डाकियों का यह कहना है कि चूँकि इन लोगों का परिवेश ग्रामीण है भले ही उनमें से कुछ नौकरी के उद्देश्य से शहर में आकर रह रहे हैं। ये अपनी लड़कियों को अच्छी शिक्षा देने के पक्ष में तो हैं, लेकिन जहाँ तक सहशिक्षा का प्रश्न है इनमें से अधिकांशतः बेसिक स्तर तक सहशिक्षा देना चाहते हैं। जिन डाकियों ने स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर तक अपनी लड़कियों को सह शिक्षा देने के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट किया है उनमें कुछ शहर के निवासी डाकिये हैं तथा कुछ पढ़े लिखे नवयुवक डाकिये हैं। इन लोगों का कहना है कि इससे लड़कियों में किसी प्रकार की झिझक नहीं रहेगी और समय आने पर सामाजिक परिस्थितियों का सामना भी करने में सक्षम होंगी।

बच्चों के स्कूल/कालेज जाने के साधनों का विवरण :-

अध्ययन के अन्तर्गत डाकियों से पूछा गया कि उनके बच्चे स्कूल/कालेज तक पैदल जाते हैं या किसी साधन से, अगर साधन से जाते हैं तो किस साधन से। प्रस्तुत है इस सम्बन्ध में उत्तरदाताओं के विचार जो निम्नांकित तालिका से स्पष्ट होते हैं--

तालिका संख्या–23

उत्तरदाताओं के बच्चों के स्कूल/कालेज जाने के साधन सम्बन्धी तालिका

क्रम संख्या	साधन	डाकियों की संख्या	प्रतिशत
1.	पैदल	110	61.11
2.	सायकिल	59	32.78
3.	रिक्शा	11	06.11
4.	मोटर	–	–
5.	स्कूटर	–	–
6.	अन्य	–	–
योग		180	100.00

स्पष्ट है कि कुल 180 उत्तरदाताओं में से 61.11% उत्तरदाताओं के बच्चे अपने स्कूल/कालेज पैदल ही जाते हैं, 32.78% उत्तरदाताओं के बच्चे स्कूल/कालेज सायकिल से तथा 6.11% उत्तरदाताओं के बच्चे स्कूल/कालेज रिक्शे से जाते हैं। तालिका से यह भी पता चलता है कि किसी भी उत्तरदाता के बच्चे मोटर, स्कूटर आदि वाहनों से स्कूल/कालेज नहीं जाते। जिन उत्तरदाताओं के बच्चे रिक्शे से जाते हैं, उन्होंने बताया कि छोटे बच्चों तथा विशेष रूप से लड़कियों के लिये ही उन्होंने रिक्शे का प्रबन्ध किया है।

उत्तरदाताओं का कहना है कि बस, मोटर, स्कूटर आदि वाहन काफी खर्चीले हैं और इसके लिये उनकी आय काफी कम पड़ती है।

बच्चों की शिक्षा का उद्देश्य :-

उत्तरदाताओं से उनकी बच्चों की शिक्षा से सम्बन्धित प्रश्न किया गया कि अपने बच्चों को किस उद्देश्य से शिक्षा दे रहे हैं क्या उनके विवाह के उद्देश्य से उन्हें शिक्षा दे रहे हैं अथवा उनके चरित्र निर्माण के उद्देश्य से अथवा उन्हें शिक्षित कर किसी पेशे में लगाना चाहते हैं या फिर उन्हें भविष्य में किसी परिस्थिति के लिये तैयार रहने के लिये शिक्षित करना चाहते हैं, उत्तरदाताओं के विचार निम्नांकित तालिका में प्रस्तुत किये गये हैं--

तालिका संख्या-24

डाकियों का लड़के-लड़कियों की शिक्षा के उद्देश्य संबंधी विचार तालिका

क्र.सं.	शिक्षा का उद्देश्य	डाकियों की संख्या	प्रतिशत
1.	चरित्र निर्माण करना	24	13.33
2.	पेशे में लगाना	101	56.11
3.	भविष्य के लिये तैयार करना	55	30.56
4.	अन्य		
योग		180	100.00

तालिका से स्पष्ट है कि 13.3% उत्तरदाता अपने बच्चों को शिक्षा इसलिये दे रहे हैं ताकि वे उनका चरित्र निर्माण कर सकें, 56.11% उत्तरदाताओं का अपने बच्चों (पुत्रों) को शिक्षा देने का उद्देश्य उन्हें पेशे में लगाना है तथा 30.56% उत्तरदाता अपने बच्चों को भविष्य के लिये तैयार करने हेतु शिक्षा दे रहे हैं।

तालिका संख्या-25

उत्तरदाताओं के पत्नियों की शैक्षणिक स्थिति

क्र.सं.	पत्नियों की शैक्षणिक स्थिति	डाकियों की संख्या	प्रतिशत
1.	शिक्षित	66	36.67
2.	अशिक्षित	114	63.33
योग		180	100.00

इस प्रकार कुल 180 उत्तरदाताओं में से 36.67% उत्तरदाताओं की पत्नियाँ ही पढ़ी लिखी हैं, जबकि 63.33% उत्तरदाताओं की पत्नियाँ बिल्कुल अशिक्षित हैं। जिन उत्तरदाताओं की पत्नियाँ शिक्षित हैं उनमें से कोई भी उच्च शिक्षा नहीं ग्रहण किये हुए हैं।

इससे पता चलता है कि उनकी अशिक्षा अथवा अल्पशिक्षा से उनके रहन-सहन उनकी सोच-समझ व कार्य करने का ढँग प्रभावित होगा।

परिवार-नियोजन

देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ देश की बढ़ती हुई जनसंख्या ने भी भारत की गरीबी आर्थिक-व्यवस्था पर अपना प्रभाव दिखलाने का प्रयत्न किया। जहाँ भारत में उन्नति के विषय में अनेकों योजनाएँ संघ स्तर पर बनाई गईं, वहीं बढ़ती हुई जनसंख्या पर भी विचार किया गया। यद्यपि इसे पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत नहीं रखा गया, लेकिन एक योजना के रूप में इस पर अलग से विचार किया गया जो परिवार-नियोजन के रूप में पारिभाषित हुआ।

वस्तुत: किसी देश की आत्म निर्भरता के लिये आवश्यक है कि उसके भीतर उपलब्ध साधन इतनी प्रचुर मात्रा में हो कि वे उपभोग के स्तर से ऊपर उठी रहें। उपभोग के स्तर से उठने के लिये आवश्यक है कि उपभोक्ता इतने अधिक न हों कि सम्पत्ति केवल भीतर ही समाकर रह जाय और विकास की होड़ में वह राष्ट्र स्तर में पीछे रह जाय। इसलिये यह आवश्यक समझा गया कि भारतीय नागरिकों का एक निर्धारित परिवार हो और वह स्वस्थ, सुखी एवं सम्पन्न हो। इसलिये इस मौलिक सम्पन्नता को ध्यान में रखते हुए भारतवर्ष में परिवार-नियोजन लागू किया गया। इसमें अनेक चिकित्सकों एवं देश के बड़े-बड़े विचारकों की सहमति लेकर देश के कोने-कोने से 'गरीबी हटाओ' अभियान के अन्तर्गत इस योजना का प्रचार-प्रसार हो रहा है। इससे न केवल राष्ट्र का ही हित है वरन् दाम्पत्य जीवन भी स्वस्थ व सुखी होगा तथा बच्चों की देख-रेख, सेवा, चिकित्सा तथा शिक्षा को विशेष बल मिलेगा। इसके अन्तर्गत एक दम्पत्ति के लिये दो या तीन बच्चों की योजना रखी गई है। कुछ लोगों का ऐसा विचार है कि परिवार में बच्चे अधिक रहने से कृषि-कार्य में अधिक व्यक्तियों की मदद मिल जाती है अथवा इससे परिवार की आमदनी बढ़ जाती है, लेकिन आज ऐसी बात नहीं है। परिवार में अधिक बच्चे होने से ज्यादा प्राणियों के लिये खाने-कपड़े तथा आवश्यकता की अन्य वस्तुओं का प्रबन्ध करना पड़ता है।

यह ठीक है कि बच्चे के जन्म से बढ़कर कोई खुशी नहीं है, लेकिन जब माँ-बाप सीमित साधनों की वजह से अपने बच्चों के लिये पूरी सुख-सुविधा का प्रबन्ध नहीं कर पाते तो उससे बड़ा दुख भी कोई नहीं है।

1947 में भरतवर्ष की जनसंख्या 34 करोड़ थी जो अब बढ़कर 80 करोड़ से ऊपर पहुँच गई है। प्रति घण्टा 1500 और प्रतिदिन 3600 से भी अधिक की संख्या हमारी आबादी में जुड़ जाती है।

जनसंख्या की तीव्र वृद्धि हमारे देश के लिये अहितकर है, क्योंकि पहले ही इसमें काफी वृद्धि हो चुकी है और हमारे साधन भी उसके लिये अपर्याप्त हैं। अगर देश की समस्त भूमि पर कुल आबादी को फैलाया जाय तो प्रति व्यक्ति

मात्र आधा एकड़ भूमि ही जाएगी। विशेषज्ञों क अनुमान है क अच्छे रहन-सहन के लिए प्रति व्यक्ति ढाई एकड़ भूमि होनी चाहिए जबकि भारत में हमारे पास इसका पाँचवा हिस्सा ही है। अगर यहाँ इसी तरह निरन्तर जन्म दर में वृद्धि होती रही तो प्रति व्यक्ति भूमि की उपलब्धि और भी कम हो जाएगी। इसलिये परिवार-नियोज़न के अन्तर्गत एक दम्पत्ति के दो या अधिक से अधिक तीन बच्चों के जन्म तथा उनके मध्य काफी अन्तर को उचित बताया गया है। छोटे परिवार को ही सुखी परिवार माना गया है, क्योंकि इसमें प्रत्येक बच्चे की उचित देखभाल और विकास का पूर्ण अवसर मिलता है।

परिवार-नियोजन क्यों ?

परिवार नियोजन इसलिये आवश्यक है कि माता-पिता अपने बच्चों का पालन-पोषण तथा उनकी देखभाल अच्छी तरह कर सकें, उनके खान-पान, पढ़ाई-लिखाई आदि का प्रबन्ध कर सकें ताकि अच्छे वातावरण में उनका विकास हो, साथ ही इसका उद्देश्य माता को एक कठिन प्रसव-वेदना के बाद दूसरे प्रसव के पूर्व काफी समयान्तर प्रदान करना है ताकि उनका स्वास्थ्य सुधर सके। परिवार नियोजन का उद्देश्य यह भी है कि लोग अपने परिवार का आकार सीमित रख सकें।

इसके अन्तर्गत अनेक चिकित्सा-साधनों का प्रयोग डॉक्टर की देखरेख में किया जाता है। आज अधिकतर परिवारों ने इससे लाभ उठाया है।

परिवार-नियोजन के सन्दर्भ में डाकियों की अभिरुचि क्या है इस सन्दर्भ में उनके विचार निम्नांकित तालिका में स्पष्ट हैं :--

तालिका संख्या : 26

परिवार-नियोजन के पक्ष/विपक्ष सम्बन्धी तालिका

परिवार नियोजन	संख्या	प्रतिशत
पक्ष	110	61.11
विपक्ष	70	38.89
योग	180	100.00

कुल 180 डाकियों में से 61.11% डाकियों ने परिवार नियोजन के पक्ष में सहमति दी। ये ऐसे डाकिये हैं जो या तो उच्च शिक्षा प्राप्त हैं या नवयुवक हैं जबकि 38.89% डाकिये ऐसे हैं जिन्होंने विपक्ष में उत्तर दिया है। वे प्रौढ़ हैं तथा मिडिल, हाईस्कूल और इण्टरमीडिएट उत्तीर्ण हैं। ये अपेक्षाकृत पुराने विचार के भी हैं। ये अभी भी बच्चों के जन्म को ईश्वरीय देन और भाग्य से पैदा होना माँगते हैं।

❑❑

: 5 :

डाकियों की आर्थिक पृष्ठभूमि-आय, जीवन-स्तर तथा जीवन शैली :

किसी भी व्यक्ति की वैयक्तिक स्थिति का मापन आज के औद्योगिक युग में उसकी आर्थिक स्थिति से किया जा सकता है। व्यक्ति की सामाजिक स्थिति उसकी आर्थिक स्थिति पर निर्भर करती है। वर्ग विभाजन में अर्थ की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। आज का मानव सुख-सुविधाओं को ही प्राप्त करना चाहता है। ये सुविधाएँ बिना अर्थ के प्राप्त नहीं की जा सकती हैं।

भारतवर्ष में बेरोजगारी की समस्या बढ़ती जा रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत के प्रभुतासम्पन्न होने पर भी देश के अधिकांश व्यक्तियों की आय में अधिक अन्तर है। हमारे देश में पहले से ही धनी अधिक धनी निर्धन अधिक निर्धन होते चले गये।

अध्ययन के अन्तर्गत उत्तरदाताओं की आर्थिक स्थिति उनके व्यवसाय से प्राप्त आय पर आधारित है। मुख्य तथा गौण व्यवसाय से प्राप्त आमदनी उनकी आर्थिक दशा को निर्धारित करती है, कृषि इत्यादि उनका गौण व्यवसाय है। इस अध्ययन के लिये चुने गये उत्तरदाताओं का मुख्य व्यवसाय डाक-विभाग में नौकरी है। वे अपने परिवार का भरण-पोषण मुख्यतया अपनी नौकरी से प्राप्त मासिक आय से करते हैं।

वैसे तो सभी डाकियों का मुख्य व्यवसाय नौकरी ही है, लेकिन उनमें से कुछ डाकिये ऐसे भी हैं जिन्हें अपने गौण व्यवसायों से भी आय प्राप्त होती है।

अध्ययन के अन्तर्गत उत्तरदाताओं से उनके मुख्य व्यवसाय नौकरी से प्राप्त होने वाली आय के विषय में प्रश्न पूछे गये।

डाकियों को प्रतिमाह मुख्य व्यवसाय नौकरी से प्राप्त होने वाली आय का विवरण इस प्रकार है :

तालिका संख्या-27

डाकियों की प्रतिमाह आय को प्रदर्शित करती तालिका

क्रम सं.	प्रतिमाह आय	डाकियों की संख्या	प्रतिशत
1.	1201 - 1400	49	27.22
2.	1401 - 1600	55	30.56
3.	1601 - 1800	76	42.22
4.	1801 - 2000	-	-
योग		180	100.00

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 27.22% डाकिये 1200 से 1400 रुपये मासिक आय के रूप में प्राप्त करते हैं, 30.56% डाकिये 1401 से 1600 रुपये मासिक आय के रूप में प्राप्त करते हैं तथा 42.22% डाकिये 1601 से 1800 रुपये तक अपने मुख्य व्यवसाय नौकरी से मासिक आय के रूप में प्राप्त करते हैं। कोई भी डाकिया ऐसा नहीं मिला जो 1801 से 2000 रुपये मासिक आय के रूप में प्राप्त करता हो। डाकियों को यह मासिक आय विभाग द्वारा वेतन के रूप में प्रदान की जाती है।

इस प्रकार तालिका विश्लेषण से स्पष्ट है कि आज की मँहगाई की स्थिति को देखते हुए डाकियों को मुख्य व्यवसाय से प्राप्त होने वाली आय की स्थिति अच्छी नहीं है। इस आय से डाकिये किसी प्रकार अपने पारिवारिक दायित्व का निर्वाह कर पा रहे हैं।

उत्तरदाताओं की आय के द्वैतीयक साधन

उत्तरदाताओं से पूछा गया कि मुख्य व्यवसाय से प्राप्त होने वाली आय कम पड़ने पर इसके अतिरिक्त उनकी आय के क्या कोई द्वैतीयक साधन भी हैं, उनमें से कुछ उत्तरदाताओं ने बताया कि मुख्य व्यवसाय से प्राप्त आय के अतिरिक्त उन्हें अन्य द्वैतीयक स्रोतों से भी आय प्राप्त होती है जैसे कृषि, भूमि, पशुधन अन्य व्यवसाय, अल्प अवधि कार्य।

प्रस्तुत तालिका उत्तरदाताओं की आय के द्वैतीयक साधनों के विषय में विवरण प्रस्तुत करती है--

तालिका संख्या-28

उत्तरदाताओं की आय के द्वैतीयक साधन

क्र.सं.	आय के स्रोत	डाकियों की संख्या	प्रतिशत
1.	कृषि भूमि	81	77.89
2.	पशुधन	8	7.69
3.	अन्य व्यवसाय	7	6.73
4.	अल्प अवधि कार्य	8	7.69
योग		104	100.00

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 77.89% डाकियों के पास कृषि भूमि है, जिससे वे कृषि द्वारा आय प्राप्त करते हैं, 7.69% डाकिये चौपायों द्वारा आय प्राप्त करते हैं, 6.79% डाकिये अन्य व्यवसाय जैसे दूध बेचना, किराने के व्यापार आदि से आय प्राप्त करते हैं और 7.69% डाकिये अल्प अवधि कार्य जैसे ट्यूशन, बीड़ी बनाना आदि कार्य करके आय प्राप्त करते हैं। इसक कार्य को वे अपने कार्यालय से वापस आने के बाद करते हैं। इन डाकियों में से अधिकांशतः अपना परम्परागत व्यवसाय ही करते हैं जैसे बढ़इगीरी, नाई के

कार्य, लोहे आदि के कार्य। इस प्रकार वे कुल मिलाकर अपना भरण पोषण कर रहे हैं।

इससे निष्कर्ष निकलता है कि डाकियों को मुख्य व्यवसाय नौकरी से प्राप्त होने वाली आय भरण-पोषण के लिये पर्याप्त नहीं है। उन्हें अन्य साधनों की सहायता से अपने दैनिक जीवन की आवश्यकताएँ पूरी करनी पड़ रही है।

उत्तरदाताओं में व्यय की स्थिति

आय और व्यय एक दूसरे से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित हैं। व्यय का अध्ययन रहन-सहन के स्तर का द्योतक है। एक व्यक्ति के रहन-सहन का स्तर प्रति व्यक्ति आय और प्रति व्यक्ति व्यय द्वारा ही मापा जाता है। जीवन के लिये आवश्यक वस्तुओं की खपत आवश्यक है, परन्तु कभी-कभी अनावश्यक व्यय भी करने पड़ जाते हैं, जो सामाजिक प्रतिष्ठा के लिये आवश्यक हो जाते हैं।

आय में परिवर्तन से आदतों में परिवर्तन होते हैं, फलस्वरूप व्यय के प्रतिमानों में भी परिवर्तन हो जाते हैं।

मनुष्य केवल रोटी के सहारे ही जीवित नहीं रह सकता। वह अपना व्यक्तित्व भावनाएँ आदि भी रखता है। ये सभी उसके जीवन के अंश हैं और उसके जीवन को सफल बनाते हैं।

अध्ययन के अन्तर्गत डाकियों से औसत मासिक व्यय के विषय में प्रश्न किये गये। प्राप्त प्रदत्तों से स्पष्ट है कि प्रतिमास वे निम्नलिखित मदों पर व्यय करते हैं :--

1. भोजन 2. वस्त्र 3. मकान किराया 4. शिक्षा 5. दवा 6. अन्य

डाकियों ने अपनी औसत मासिक व्यय के विषय में आसानी से आँकड़े प्रदान किये, मकान का किराया, दवा, शिक्षा व अन्य मदों पर होने वाले विवरण उन्होंने आसानी से बताये, परन्तु भोजन और वस्त्र, के औसत व्यय को बताने में उन्होंने कठिनाई अनुभव की। सामान्य कर्मचारी को अपने भोजन व वस्त्र पर किये जाने वाले व्यय को बताने में कठिनाई होती है।

यह पूछने पर कि क्या आपके मासिक वेतन से आपकी समस्त आवश्यकताएँ पूर्ण हो जाती हैं, अधिकांश डाकियों ने नकारात्मक उत्तर दिये और कहा कि उनकी मासिक आमदनी से उनकी समस्त आवश्यकताएँ पूर्ण नहीं हो पाती हैं। यह पूछने पर कि जब आपके मासिक वेतन से आपकी समस्त आवश्यकताएँ पूर्ण नहीं हो पाती तो क्या आपके परिवार के अन्य सदस्य आर्थिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिये धन कमाते हैं, 40% डाकियों ने बताया कि उनके परिवार के अन्य सदस्य भी परिवार की आमदनी को बढ़ाते हैं तथा उन्हें स्वयं कोई अन्य छोटे रोजगार करने पड़ते हैं ताकि पारिवारिक आवश्यकतायें पूर्ण हो सकें।

प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत उत्तरदाताओं से उनके औसत मासिक व्यय के विषय में जो प्रदत्त प्राप्त हुए हैं, उन्हें तालिका में प्रस्तुत किया गया है :--

तालिका संख्या-29

डाकियों का प्रतिमाह औसत व्यय

क्र.सं.	औसत व्यय (प्रतिमाह)	डाकियों की संख्या	डाकियों का प्रतिशत
1.	1200 - 1400	21	11.67
2.	1401 - 1600	89	49.44
3.	1601 - 1800	64	35.56
4.	1801 - 2000	06	03.33
5.	2000 से ऊपर		
योग		180	100.00

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 11.67% उत्तरदाता 1200-1400 रुपया प्रतिमाह औसत व्यय करते हैं, 49.44% उत्तरदाता 1401-1600 रुपये प्रतिमाह व्यय करते हैं, 35.56% उत्तरदाता 1601-1800 रुपये प्रमिाह तथा 3.33% उत्तरदाता 1801-2000 रुपये प्रतिमाह व्यय करते हैं।

तालिका विशलेषण से पता चलता है कि इनमें से अधिकतर डाकिये अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये रुपये उधार लेते हैं। कभी-कभी उन्हें वस्तु, दवाएँ आदि क्रेडिट पर लेनी पड़ती है। यह भी एक प्रकार का ऋण है जो उनकी सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्था को प्रभावित करता है। ऐसा इसलिए है कि उनके पास व्यय करने के लिये रुपये अधिक नहीं है।

उत्तरदाताओं में बचत की स्थिति

अपनी आय के कुछ हिस्से भविष्य की आवश्यकताओं के लिये बचाना मनुष्य की प्रकृति है। मनुष्य अपनी आवश्यकताओं में से कमी करके कुछ रुपये बचाता है। इस प्रकार बचत भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितनी आय। यह बचत किसी आकस्मिक अवसर पर प्रयोग में आता है।

अर्थ के अभाव में कोई भी कार्य नहीं किया जा सकता है। प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत उत्तरदाता बचत में तो रुचि रखते हैं लेकिन अपनी कम आय के कारण अधिकांश उत्तरदाता बचत कर पाने में अपने को असमर्थ पा रहे हैं। यही कारण है कि वे बीमारी आदि अथवा सामाजिक उत्सवों को मनाने के लिये ऋण लेने के लिये बाध्य हैं।

उत्तरदाताओं से पूछा गया कि वे प्रतिमाह कितने रुपये बचा लेते हैं उनके द्वारा दिये गये उत्तर निम्नांकित तालिका से स्पष्ट है :--

तालिका संखया-30
उत्तरदाताओं में बचत की स्थिति

क्र.सं.	बचत रुपयों में	डाकियों की संख्या	प्रतिशतं
1.	50 से कम	13	30.23
2.	50 से 100	16	37.21
3.	100 - 150	09	20.93
4.	150 - 200	03	6.98
5.	200 से ऊपर	02	4.65
योग		43	100.00

डाकियों से यह पूछने पर कि क्या उनके मासिक वेतन में से कुछ रुपये बच पाते हैं, अधिकांश डाकियों ने नकारात्मक उत्तर दिया। मात्र 43 डाकियों ने ही स्वीकार किया कि किसी प्रकार थोड़ी बचत कर लेते हैं।

बचत करने वाले कुल 43 डाकियों में से 30.23% डाकिये 50 रुपये तक, 37.21% डाकिये 50 से 100 रुपये तक, 20.93% डाकिये 100 से 150 रुपये तक, 6.98% डाकिये 150 से 200 रुपये तक तथा 4.65% डाकिये 200 रुपया से ऊपर बचा लेते हैं। ये ऐसे डाकिये हैं जिनके ऊपर अभी कोई उत्तरदायित्व नहीं है तथा आमदनी के भी अन्य स्रोतं हैं।

बचत न कर पाने वाले डाकियों में अधिकांश प्रौढ़ व वृद्ध डाकिये हैं। इन्होंने सामाजिक उत्सव, मकान निर्माण आदि के लिये पहले से ही ऋण ले रखा है। अत: इनकी आय का अधिकांश भाग ऋण को चुकाने में ही व्यय हो जाता है जिससे बचत कर पाने में ये अपने को असमर्थ पा रहे हैं।

इस प्रकार अधिकांश डाकिये अपनी कम आय के कारण बचत नहीं कर पा रहे हैं।

ऋण

अध्ययन के अन्तर्गत डाकियों से उनके ऊपर ऋण के विषय में जानकारी प्राप्त की गई।

स्वतंत्रता से पूर्व अनेक भारतीय कर्मचारी कर्ज में ही अपना जीवन व्यतीत करते थे। इनमें से अधिकांशत: कर्ज में ही जन्म लेते थे और कर्ज में ही मर जाते थे। स्वतंत्रता के पश्चात यद्यपि इस स्थिति में गुणात्मक सुधार आया है, लेकिन अभी भी कर्मचारियों को ऋण से मुक्ति नहीं मिल पा रही है। ऋण की यह स्थिति उनके रहन-सहन के स्तर को प्रभावित कर रही है।

प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत उत्तरदाताओं से पूछा गया कि क्या उनके ऊपर किसी प्रकार का ऋण है, मात्र 22 उत्तरदाताओं ने बताया कि उनके ऊपर किसी प्रकार का ऋण नहीं है शेष 158 उत्तरदाताओं ने ऋण की स्थिति को स्वीकार किया।

प्रस्तुत तालिका उत्तरदाताओं द्वारा विभिन्न स्रोतों से लिये गये ऋण का विवरण प्रस्तुत करती है :--

तालिका संख्या–31

डाकियों द्वारा लिये गये ऋण का विवरण

क्र.सं.	ऋण रुपयों में	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	1000 से कम	32	20.25
2.	1001 - 2000	25	15.83
3.	2001 - 3000	26	16.46
4.	3001 - 4000	36	22.78
5.	4000 से ऊपर	39	24.68
योग		158	100.00

तालिका से स्पष्ट है कि ऋण लेने वाले कुल 158 उत्तरदाताओं में से 20.25% ने 1000 रुपये तक ऋण लिये हैं, 15.83% उत्तरदाताओं ने 1001 से 2000 रुपये तक 16.46% उत्तरदाताओं ने 2001 से 3000 रुपये 22.78% ने 3001 से 4000 तथा 24.68% ने 4000 रुपये से ऊपर तक के ऋण लिये हैं।

इस प्रकार विवरण से स्पष्ट है कि ऋण का कम से कम मापदण्ड 1000 तथा अधिकतम 4000 रुपये से ऊपर है। इससे स्पष्ट होता है कि 87.78% उत्तरदाता ऋणग्रस्त हैं। इसके कारण उनके रहन-सहन का स्तर प्रभावित है।

ऋण के स्रोत :

उत्तरदाताओं द्वारा ये ऋण विभिन्न स्रोतों से लिये गये हैं जिसका विवरण तालिका में स्पष्ट है :--

तालिका संख्या–32

डाकियों द्वारा लिये गये ऋण के स्रोत

क्र.सं.	स्रोत	डाकियों की संख्या	प्रतिशत
1.	कोआपरेटिव क्रेडिट सोसायटी	28	17.72
2.	भविष्य कोष निधि	38	24.05
3.	प्रथम व द्वितीय दोनों से	48	30.38
4.	विभागीय कर्ज जैसे सायकिल, त्यौहार-एडवांस आदि	38	24.05
5.	मित्र/महाजन	06	0380
6.	अन्य	–	–
योग		158	100.00

इस प्रकार ऋण लेने वाले कुल 158 उत्तरदाताओं में से 17.72% उत्तरदाताओं ने कोआपरेटिव क्रेडिट सोसायटी से, 24.05% उत्तरदाताओं ने भविष्य कोष-निधि से, 30.38% उत्तरदाताओं ने इन दोनों से 24.05% उत्तरदाताओं ने विभाग से सायकिल, त्यौहार आदि के लिये एडवांस के रूप में ऋण लिया है तथा 3.80% उत्तरदाताओं ने मित्र/महाजन से ऋण लिया है।

चूँकि डाकिये शिक्षित हैं और ऋण की कठिनाई को समझते हैं, अत: वे विभाग द्वारा मिली सुविधा का भरपूर लाभ उठा रहे हैं।

अधिकांश उत्तरदाताओं ने कोआपरेटिव क्रेडिट सोसायटी या भविष्य कोष निधि अथवा दोनों से ऋण लिया है। इन स्रोतों से उन्हीं उत्तरदाताओं ने ऋण लिया है जिन्हें अधिक रुपयों की जरूरत थी।

इसके अतिरिक्त अन्य छोटे कार्यों के लिये सायकिल के लिये, त्यौहार मनाने के लिये, पारिवारिक व्यय आदि के लिये उन्होंने विभिन्न मदों से ऋण लिये हैं।

इसी प्रकार कुछ ऐसे भी उत्तरदाता हैं जिन्होंने अनेक दबावों में पड़कर मित्रों अथवा महाजनों से कर्ज लिया है।

इससे स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं द्वारा विभिन्न खर्चों के लिये विभिन्न मदों से रुपये ऋण के रूप में लिये गये हैं।

उत्तरदाताओं द्वारा लिये गये ऋण के कारणों का विवरण :

डाकियों द्वारा ऋण विभिन्न कारणों से लिये गये हैं : जैसे-- बीमारी, शिक्षा, मकान, विवाह, त्यौहार, सायकिल तथा अन्य पारिवारिक व्यय हेतु।

डाकियों द्वारा लिये गये ऋण के कारणों का विवरण निम्नांकित तालिका में स्पष्ट है :--

तालिका संख्या-33
डाकियों द्वारा लिये गये ऋण के कारण

क्र.सं.	ऋण लेने के कारण	डाकियों की संख्या	डाकियों का प्रतिशत
1.	विवाह/उत्सव	65	41.14
2.	गृह निर्माण	18	11.39
3.	बीमारी	8	5.06
4.	शिक्षा	9	5.71
5.	पारिवारिक व्यय	29	18.35
6.	सायकिल/त्यौहार	29	18.35
योग		158	100.00

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि ऋण लेने वाले कुल 158 उत्तरदाताओं

में से 41.14% उत्तरदाताओं ने विवाह तथा अन्य उत्सवों के लिये 11.39% उत्तरदाताओं ने गृह निर्माण के लिये, 5.06% उत्तरदाताओं ने बीमारी हेतु, 5.70% ने शिक्षा हेतु, 18.35% ने पारिवारिक व्यय तथा 18.35% उत्तरदाताओं ने सायकिल के लिये ऋण लिया है।

इससे पता चलता है कि उत्तरदाता सामाजिक तथा आर्थिक दबाव के कारण ऋण लेने को बाध्य हैं। गाँवों से सम्बन्ध, संयुक्त परिवार, रहन-सहन के तरीके, उत्सव और शादी विवाह आदि के कारण ऋण की संख्या अधिक रही है। इसके बाद कर्ज का दबाव गृह निर्माण, बीमारी, शिक्षा आदि के कारण पड़ा है। अत: वे भी अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा देना चाह रहे हैं।

इसी कारण उन्होंने शिक्षा के लिये ऋण ले रखा है। इसके अतिरिक्त घर से कार्यकाल तक पहुँचने के लिये तथा कार्यालय से वितरण क्षेत्र तक आने के लिये उन्होंने विभाग द्वारा प्रदत्त सुविधा का लाभ उठाते हुए सायकिल, त्यौहार, पारिवारिक व्यय आदि के लिये ऋण लिया है।

इन सभी विवरणों से निष्कर्ष निकलता है कि उत्तरदाताओं की आर्थिक स्थिति अत्यन्त खराब है, क्योंकि उन्हें अपने पारिवारिक व्यय तथा त्यौहार आदि के लिये भी ऋण लेने पड़ रहे हैं। विभाग द्वारा इसके लिये जो अग्रिम धनराशि ऋण के रूप में मिलती है इससे उत्तरदाता एक ही त्यौहार मना पाते हैं और उसकी वेतन से कटौती 10 बराबर मासिक किश्तों में होते रहने के कारण वे अपने को हमेशा तनावग्रस्त अनुभव करते रहते हैं।

डाकियों में बीमा की स्थिति

जीवन-बीमा के विषय में डाकियों से प्रश्न पूछे गये कि क्या उन्होंने अपना जीवन बीमा कराया है, कुल 180 में से सभी डाकियों ने बताया कि उन्होंने अनिवार्य जीवन बीमा योजना के अन्तर्गत बीमा कराया है। उनका यह बीमा विभाग की तरफ से किया गया है। उन्होंने बताया कि अलग से उन्होंने कोई बीमा नहीं कराया है। डाकियों ने यह भी बताया कि वेतन से आवश्यकताएँ ही बड़ी कठिनाई से पूरी हो पाती है, अलग से बीमा कराने के लिये रुपये नहीं बचते।

डाकियों की आवास स्थिति
(बिजली, पानी, शौचालय, स्वच्छता तथा स्वास्थ्य)

गृह किसी परिवार के संयुक्त अधिकार को कहते हैं जिस पर उसकी एकता निर्भर करती है। जिस प्रकार परिवार एक सामाजिक इकाई के रूप में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है उसी प्रकार सामाजिक आवश्यकताओं में गृह की भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। गृह व परिवार दोनों एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं। ये केवल अवधारणा तथा विश्लेषण में ही एक दूसरे से अलग किये गये हैं।

भारतवर्ष में श्रमिक तथा नौकरी पेशा वालों के लिये गृह अथवा आवास की समस्या गम्भीर रूप धारण किये हुए है। भोजन और वस्त्र के बाद महत्वपूर्ण आवश्यकताओं में तुरन्त आवास का स्थान आता है। यदि मनुष्य के रहने के लिये पर्याप्त एवं उचित स्थान न हो तो उसके बच्चों का लालन-पालन ठीक से नहीं हो पाता है और वह बराबर चिन्तित रहता है। ऐसा समझा जाता है कि कम स्थान वाले सँकरे गृह में, जिसमें अधिक भीड़-भाड़ रहती है, कर्मचारियों तथा उनके परिवार पर शारीरिक व मानसिक रूप से बुरा प्रभाव डालते हैं। स्वच्छता के अभाव में गन्दे-निवास बीमारी व संक्रामक रोग उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध हुए हैं। इस सम्बन्ध में श्रमिक जाँच कमेटी की पंक्तियाँ पर्याप्त प्रकाश डातली हैं :--

"आज के वर्तमानकाल के भारतवर्ष में श्रमिक शारीरिक रूप से परिपक्व तथा स्वस्थ नहीं रहते। असहनीय पारिवारिक दशाएँ तो इसके लिए उत्तरदायी हैं ही, साथ ही साथ तेजी से जनसंख्या का बढ़ना भी इसमें एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। औद्योगिक शहरों में निवास की कमी के कारण क्षय-रोग का प्रसार तथा बच्चों की मृत्यु में वृद्धि हो रही है।"

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि घर की दशा की दयनीयता का व्यक्ति के स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है। यदि मकान अच्छा है तो सुखी पारिवारिक जीवन, उत्तम स्वास्थ्य आदि की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं। यदि मकान खराब है तो गन्दगी, शराबखोरी, अनैतिकता व अपराध को प्रोत्साहन मिलता है। मकान के छोटा होने के कारण उनका पारिवारिक जीवन सुखमय नहीं हो पाता है। आवास की कमी के कारण प्राय: "नौकरी पेशा व्यक्ति अपनी पत्नी व बच्चों को वहाँ नहीं ले जा पाते जहाँ वे कार्य करते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि वे अनेक सामाजिक बुराइयां में फँस जाते हैं। राधा कमल मुकर्जी ने इस समस्या पर प्रकाश डालते हुए कहा है :

"औद्योगिक केन्द्रों की गन्दी बस्तियों में मनुष्य नि:सन्देह पशु बन जाता है। और महिलाएँ असम्मानित होती हैं तथा बच्चों पर उसका जहरीला असर पड़ता है।"

डाकियों के लिये गृह की समस्या

गोरखपुर जिला पूर्वी उत्तर प्रदेश के पिछड़े जिलों में से एक जिला माना गया है। यहाँ खाद कारखाना, इंजीनियरिंग कालेज, विश्वविद्यालय, मेडिकल कालेज, तथा पूर्वोत्तर रेलवे का मुख्यालय होने से मकान की अत्यन्त गम्भीर समस्या है। गोरखपुर शहर में विभाग की ओर से डाकियों के लिये कुछ आवास

रिपोर्ट :– दि लेबर इनवेस्टिगेशन कमेटी भारत सरकार, मुख्य रिपोर्ट 1946।

का प्रबन्ध किया गया है, लेकिन वह भी हाल में किया गया है। परन्तु वह ऊँट के मुँह में जीरे के समान है। जिन डाकियों को क्वार्टर की सुविधा मिली है। उनमें बिजली, पानी, शौचालय आदि तो हैं परन्तु उनमें पानी की गम्भीर समस्या है। भूतल पर तो पानी की व्यवस्था उत्तम है पर ऊपरी तल वाले लोगों के लिये पानी चढ़ने की समस्या है और विभाग ने इसके लिये टंकी आदि का प्रबन्ध भी नहीं किया है।

अन्य विभागों में जैसे रेलवे, ब्लाक (क्षेत्र-समिति) इत्यादि में तो कार्यालय-भवन, निवास-स्थान आदि बन जाते हैं तब कार्य आरम्भ होते हैं लेकिन डाक-विभाग के अन्तर्गत ऐसा नहीं है।

यहाँ पर तो विभाग अपने लिये एक भवन भी नहीं बनवाता, किराये पर ही लेकर उसमें किसी प्रकार कार्यालय खोलकर काम चलता है, कर्मचारियों को निवास सुविधा उपलब्ध कराना तो बहुत दूर की बात है।

गाँवों में जाकर पूछने पर पता चला कि गाँवों में ग्रामवासी अपने रहने के उद्देश्य से मकान बनवाते हैं। वे किराये पर देने के लिये नहीं बनवाते हैं। ऐसी स्थिति में मजबूरीवश डाकियों को आवश्यकता पड़ने पर उन्हीं मकान मालिकों के आवास में ही रहना पड़ता है जिससे उन्हें सुविधा कम मिल पाती है।

अत: डाकियों के लिये चाहे वे शहर के डाकिये हैं या ग्रामीण क्षेत्रों के, आवास की समस्या अत्यन्त गम्भीर रूप धारण किये हुए है।

अध्ययन के अन्तर्गत डाकियों से निवास सुविधा के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे गये। प्रथम उनके निवास के विषय मे सर्वेक्षण द्वारा सूचना प्राप्त की गई। यह पूछने पर कि क्या वे किराये में रहते हैं अथवा निजी मकान में, उनके द्वारा दिये गये उत्तर निम्नांकित तालिका से स्पष्ट हो जाते हैं :

तालिका संख्या-34

डाकियों की आवास सुविधा

क्र.सं.	आवास सुविधा	डाकियों की संख्या	प्रतिशत
1.	निजी मकान	27	15.00
2.	किराये का मकान	144	80.00
3.	विभाग का क्वार्टर	09	5.00
योग		180	100.00

तालिका विश्लेषण से स्पष्ट है कि 15% डाकिये निजी मकान में रहते हैं और इनका मकान कार्यस्थल से निकट होने के कारण ये डाकिये अपना कार्य समाप्त करके वापस घर चले जाते हैं, 80% डाकिये किराये के मकान में रहते

हुए कार्यस्थल तक आते जाते हैं तथा 5% डाकियों को विभाग की तरफ से रहने के लिये क्वार्टर्स उपलब्ध कराये गये हैं, लेकिन यह सुविधा केवल गोरखपुर महानगर के ही डाकियों को प्राप्त हो पाई है, वह भी डाकियों की संख्या के अनुपात में अत्यन्त कम है।

अध्ययन के अन्तर्गत डाकिये ग्राम व नगर दोनों क्षेत्रों के हैं। गाँवों में रहने वाले अधिकांश डाकियों के मकान कच्चे हैं। शहर में निजी मकान बहुत कम डाकियों के हैं। लेकिन यहाँ पर जो डाकिये निजी मकान में रह रहे हैं अथवा क़िराये के मकान में रह रहे हैं, उन सभी के मकान पक्के हैं।

आधुनिक युग में जो सुविधा मकानों में होनी चाहिये जैसे अलग भोजनालय, स्नानगृह, शौचालय, रोशनदान, खिड़की, की व्यवस्था आदि इनमें से समस्त सुविधाएँ इन मकानों में उपलब्ध नहीं है।

यह पाया गया कि शहर में जो डाकिये अपने निजी मकानों में रह रहे हैं उनके यहाँ परिवार बँट जाने के कारण उन्हें मकान का एक भाग ही मिल पाया जिससे उन्हें मकानों में उन सुविधाओं के होते हुए भी उनसे वंचित होना पड़ा है।

जिन डाकियों ने किराये पर मकान ले रखा है अथवा जो डाकिये ग्रामों में रह रहे हैं उन्हें भी ये समस्त सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं।

शहर के डाकियों ने पूछने पर बताया कि मात्र रहने के लिये हैं किसी प्रकार किराये पर एक कमरा व शौचालय ही मिल पाया है। उन्होंने यह भी बताया कि सुविधा पूर्ण मकान मिल तो सकते हैं पर उनका किराया बहुत अधिक है, जिसे वे नहीं दे सकते हैं।

अन्य विभागों में जैसे रेलवे, ब्लाक (क्षेत्र-समिति) इत्यादि में तो पहले कार्यालय-भवन, निवास स्थान आदि बन जाते हैं तब कार्य आरम्भ होते हैं लेकिन डाक-विभाग के अन्तर्गत ऐसा नहीं है।

डाकियों द्वारा दिया जाने वाला मकान का किराया

अध्ययन के अन्तर्गत पाया गया कि जिन डाकियों का कार्य स्थल पर अपना मकान नहीं है वे किराये के मकान में रहते हैं। इस प्रकार शहर व ग्रामीण दोनों क्षेत्र के डाकियों द्वारा किराये का मकान लिया गया है। बहुत कम डाकिये ऐसे हैं जो अपने गाँव से निकट के डाक घर में कार्यरत हैं। यद्यपि गोरखपुर शहर के अन्तर्गत डाकियों को ग्रामीण क्षेत्र में कार्य करने वाले डाकियों की अपेक्षा मकान का किराया अधिक मिलता है, लेकिन फिर भी गोरखपुर महानगर में मकानों का किराया ग्रामों की अपेक्षा बहुत अधिक है।

अध्ययन के अन्तर्गत डाकियों से उनके द्वारा दिये जाने वाले किराये का विवरण ज्ञात किया गया। उनके द्वारा दिया जाने वाला मकान का किराया प्रस्तुत तालिका में स्पष्ट है--

तालिका संख्या–35

डाकियों द्वारा दिया जाने वाला किराया

क्र.सं.	किराया रुपयों में	डाकियों की संख्या	प्रतिशत
1.	100 से कम	17	11.81
2.	100 - 200	46	31.94
3.	200 - 300	68	47.22
4.	300 से ऊपर	13	09.03
योग		144	100.00

अध्ययन के अन्तर्गत कुल 180 डाकियों में से 27 डाकिये अपने निजी मकान में रहते हैं और वहाँ से ही कार्य स्थल आते जाते हैं, 144 डाकिये अपने स्वयं की व्यवस्था द्वारा किराये के मकान में रहते हैं, शेष 9 डाकिये विभाग द्वारा प्रदत्त क्वार्टर में रहते हैं। विभाग द्वारा प्रदत्त क्वार्टर में रहने वाले डाकियों के मकान का किराया विभागीय नियमानुसार उनके वेतन से कटता है।

जो 144 डाकिये किराये के मकान में रहते हैं उनके किराये का विवरण उपर्युक्त तालिका देखने से स्पष्ट हो जाता है। तालिका के अनुसार 11.81% डाकिये 100 रुपये से कम मासिक किराया देते हैं 31.94% डाकिये 100 से 200 रुपये तक मासिक किराया देते हैं 47.22% डाकिये 200-300 रुपये तक मासिक किराया देते हैं तथा 9.03% डाकिये 300 रुपये से ऊपर मकान का मासिक किराया देते हैं।

इससे यह स्पष्ट है कि विभाग द्वारा डाकियों को मकान का जो किराया मिल रहा है वह अपर्याप्त है। उनमें से लगभग सभी डाकियों को अपने पास से रुपये व्यय कर मकान का किराया देना पड़ रहा है।

स्वास्थ्य

"India is a country whose people are beyond compained short lived and incapable one resting desease and epidemics, illiteracy rampant, vast area derived of all sanitary or medical provision, unemployment or a prodigious scale both among the middle Class and the masses".[1]

स्वस्थ्य शरीर में ही स्वस्थ्य मस्तिष्क का निवास होता है। केवल अच्छा स्वास्थ्य ही अच्छे मस्तिष्क वाले व्यक्तियों को उत्पन्न करने में सक्षम हो सका है, जिससे यह प्रबुद्ध मस्तिष्क वाले लोग देश व समाज के कल्याण के लिये

1. Autobiography of Jawahar Lal Nehru.

कुछ कर सके हैं। जिस राष्ट्र के नागरिक शरीर से स्वस्थ होंगे, उनमें बीमारी नही होगी और वही राष्ट्र उन्नति कर सकेगा।

अध्ययन के अन्तर्गत उत्तरदाताओं के परिवार के प्राथमिक स्वास्थ्य की दशा औसत पाई गई है। अध्ययन में कुछ परिवार ऐसे मिले जो बीमार तो नहीं थे परन्तु जैसा एक स्वस्थ व्यक्ति को होना चाहिये वे वैसे नहीं थे। परिवार की अधिकता तथा जनसंख्या में क्रमशः वृद्धि के कारण परिवार बीमारी का शिकार बना रहता है। इसका कारण आवासीय सुविधा उपलब्ध न होना है।

डाकियों के कुछ परिवारों में पाया गया कि वे चेचक को दैवी प्रसाद मानकर ईश्वर पर छोड़ देते हैं। ऐसी स्थिति में वे चिकित्सा नहीं कराते, टी.बी. जैसा भयानक रोग भी डाकियों के परिवारों में है। शहर के डाकियों के लिये डाक-तार चिकित्सालय उपलब्ध है। शहर के डाकिये विभागीय चिकित्सालय से ही चिकित्सा करा रहे हैं और इससे उन्हें पूरा लाभ है। इसके अतिरिक्त शहर के डाकियों के परिवार के सदस्यों में जो अन्य बीमारियाँ हैं, उसके लिये भी वे डाक-तार चिकित्सालय का पूरा लाभ उठाते हुए चिकित्सा करा रहे हैं। इन डाकियों को वैसे तो सारी दवाएँ उन्हें विभागीय चिकित्सालय द्वारा उपलब्ध करा दी जाती है, लेकिन जो दवाएँ उपलब्ध नहीं रहती या ठीक नहीं रहती उसके लिए उन्हें बाहर से भी दवा मँगा कर उपलब्ध कराई जाती हैं।

गाँवों तथा कस्बों के डाकियों को ऐसी विभागीय चिकित्सालय की सुविधा उपलब्ध नहीं है। गाँवों, कस्बों में ऐसे बहुत से उप डाकघर व शाखा डाकघर हैं जहाँ विभागीय डाकिये कार्यरत हैं उनके लिये विभाग से अधिकृत प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर चिकित्सा सेवा उपलब्ध है। जो औषधियाँ सरकारी अस्पतालों में उपलब्ध नहीं हैं उन्हें डाकियों को नुसखे के अनुसार खरीद कर और बिल बनाकर विभाग से पैसे का भुगतान कराना पड़ता है।

चूँकि जिले के सभी प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र डाक विभाग द्वारा अधिकृत नहीं किये गये हैं इसलिये कभी-कभी इस सुविधा को प्राप्त करने के लिये डाकियों को काफी दूरी तय करनी पड़ती है। अतः बहुत से डाकिये अनेक समस्याओं के कारण वहाँ तक नहीं पहुँच पाते हैं, जिससे मजबूरीवश उन्हें इस सुविधा से वंचित होना पड़ता है। स्थानीय चिकित्सकों से निजी व्यय पर वे चिकित्सा कराने को बाध्य हैं। अतः ऐसे ग्राम व कस्बों के डाकिये इस चिकित्सा सुविधा से सन्तुष्ट नहीं हैं।

इसके अतिरिक्त ऐसे क्षेत्रों में जहाँ डाकघर हैं और उसी स्थान पर अधिकृत प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र भी हैं वहाँ के डाकिये भी विभाग द्वारा प्रदत्त सुविधा का लाभ नहीं उठा पाते हैं क्योंकि उन्हें अनेकों प्रकार की औपचारिकताएँ

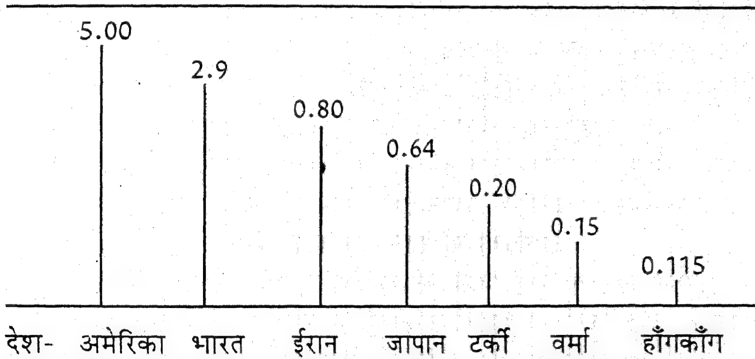
पूरी करनी पड़ती हैं जो उनके वश से बाहर होता है। इस सबको वे अत्यन्त जटिल समझते हैं, इसलिये इस कठिन स्थिति में कोई नहीं पड़ना चाहता। इस प्रकार ये लोग भी इस चिकित्सा सुविधा का कोई सदुपयोग नहीं कर पाते। अतः ऐसे डाकियों को भी औषधि खर्च स्वयं ही वहन करना पड़ता है।

किसी भी व्यक्ति के व्यक्तितत्व का मापदण्ड उसकी आदत होती है। कुछ आदतें व्यक्ति के व्यक्तितत्व को विकसित करने में सहायक बन जाती हैं। आदतें सामन्यतः किसी परिवेश अथवा वातावरण में निर्मित होती हैं। अच्छी आदतों का निर्माण अच्छे वातावरण में होता है वैसे तो निम्न जाति के लोग बुरी आदतों के शिकार बन जाते हैं क्योंकि उनको अच्छा वातावरण नहीं मिल पाता है। लेकिन यदि हम आज के भारतीय प्रसंग में देखें तो पाते हैं कि ऊँची जाति के लोग भी बुरी आदतों के शिकार होते जा रहे हैं। चूँकि उन्हें समाज का भय रहता है इसी कारण अपनी बुरी आदतों की सन्तुष्टि छिप कर करते हैं।

दुनिया में ''लगे दम मिटे गम'' का प्रचार तीव्रता से बढ़ता जा रहा है। जिसके लपेटे में हमारा देश भी आ गया है। भारत में 80000 लोग अफीम खाने के आदि हो गये हैं और 200000 लोग धतूरा-भाँग वगैरह का सेवन करते हैं। इसके अलावा 10000 लोग ऐसे भी हैं जो अन्य नशीली दवाओं के व्यसनी हैं।[1]

भारत तथा अन्य देशों में नशेबाज लोगों का विवरण निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट हो जाता है--

नशेबाज (लाखों में)



चूँकि डाकिये कार्यलयों में कार्य करते हैं और उन्हें अपना उत्तरदायित्व पूरा करना पड़ता है तथा वे सामाजिक बन्धन की अनुभूति करते हैं। अतः उनमें से अधिकांशतः बुरी आदतों के शिकार नहीं हैं। इनमें से शराब, ताड़ी, गाँजा का प्रयोग तो कोई भी डाकिया नहीं करता है, हाँ भाँग, तम्बाकू व धूम्रपान का

1. ब्लिइज, होली विशेषांक, 20 मार्च 1973, पृ0- 7, नेशनल न्यूज, सर्विस, दिल्ली।

प्रयोग वे कभी-कभी अवश्य करते हैं। पूछने पर उन्होंने बताया कि इससे उनके स्वास्थ्य पर बुरा असर नहीं पड़ता है और इसे वे छोड़ भी सकते हैं।

डाकियों के व्यसनों का विवरण निम्नलिखित तालिका में प्रस्तुत किया गया है--

तालिका संख्या-36
डाकियों में व्यसन

क्र.सं.	व्यसन की वस्तुयें	डाकियों की संख्या	प्रतिशत
1.	गाँजा	-	-
2.	भाँग	08	4.45
3.	ताड़ी	-	-
4.	तम्बाकू	114	63.33
5.	धूम्रपान	33	18.33
6.	कोई नशा नहीं	25	13.89
योग		180	100.00

उपर्युक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि 180 डाकियों में 4.45% भाँग, 63.33% तम्बाकू, 18.33% धूम्रपान करते हैं, जबकि 13.89% इनमें से किसी प्रकार का नशा नहीं करते। नशा न करने वालों का यह कहना है कि इसमें धन व्यर्थ व्यय होता है और बच्चों पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। भाँग का नशा करने वालों में उच्च जाति के ही लोग हैं। उनका कहना है कि समाज में अपनी प्रतिष्ठा बचाते हुए इस नशे का प्रयोग कर लिया जाता है। धूम्रपान (सिगरेट) की लत युवा डाकियों में ही ज्यादा है। इसे फैशन के रूप में भी पी लेते हैं जब कि बीड़ी लम्बी नौकरी वाले डाकियों द्वारा प्रयोग में लाई जा रही है लेकिन तम्बाकू का प्रयोग करने वाले डाकियों में दोनों प्रकार के (युवा, प्रौढ़) हैं। इसका प्रयोग वे मानसिक थकान तथा तनाव दूर करने के लिए करते हैं।

डाकियों के रहन-सहन का स्तर

रहन-सहन का स्तर किसी भी देश के नागरिकों की स्थिति का मापक पैमाना है। यदि किसी भी देश के नागरिकों का रहन-सहन का स्तर अच्छा नहीं है तो इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस देश का आर्थिक विकास और आय बहुत खराब है। रहन-सहन के स्तर से तात्पर्य है कि व्यक्ति अपने दैनिक जीवन में किस प्रकार का भोजन ग्रहण करता है, किस प्रकार के वस्त्र धारण करता है उसके पास आवश्यकता की कौन-कौन सी वस्तुएँ उपलब्ध हैं तथा कार्य करने के बाद वह अपने अवकाश का समय कैसे व्यतीत करता है। व्यक्ति अपनी आय के अनुसार ही अपना जीवन व्यतीत करता है। यदि व्यक्ति की आय

अधिक है तो उसके रहन-सहन का स्तर भी ऊँचा होगा, जिनकी आय कम होगी वे मध्यम स्तर तक के रहन-सहन को भी नहीं बनाये रख पायेंगे। ठीक यही स्थिति प्रस्तुत अध्ययन के उत्तरदाताओं के साथ भी है। ये उत्तरदाता येन-केन प्रकारेण अपने परिवार का जीवन-निर्वाह कर रहे हैं।

अध्ययन के अन्तर्गत उत्तरदाताओं से उनके दैनिक जीवन में प्रयोग में आने वाले सन्तुलित आहार वस्त्र, और आवश्यकता की अन्य वस्तुओं के विषय में प्रश्न पूछे गये ताकि उनके रहन-सहन के स्तर को जाना जा सके।

सन्तुलित आहार

सन्तुलित आहार से तात्पर्य ऐसे आहार से है जिसमें ऊर्जा, अमीनोएसिड, विटामिन, लौह-तत्व, कार्बोहाइड्रेट, वसा और अन्य पोषक पदार्थ इतनी मात्रा और अनुपात में सम्मिलित हों जिससे व्यक्ति का स्वास्थ्य उत्तम बना रहे।

अध्ययन के अन्तर्गत डाकियों में सन्तुलित आहार का अध्ययन किया गया कि क्या उन्हें सन्तुलित आहार प्राप्त हो पा रहा है अथवा नहीं, यदि प्राप्त हो रहा है तो किस मात्रा में।

निम्नांकित तालिका सन्तुलित आहार, विभिन्न क्षमता के व्यक्ति के लिये उसकी मात्रा तथा डाकियों द्वारा प्रयुक्त सन्तुलित आहार की मात्रा को प्रदर्शित करती है--

तालिका संख्या-37

क्र.सं.	खाद्य पदार्थ	कम परिश्रम करने वाले	कठिन श्रम करने वाले	मध्यम स्तर का श्रम करने वाले	डाकियों द्वारा प्रयुक्त आहार
1.	चावल, रोटी	460 ग्राम	670 ग्राम	520 ग्राम	520 ग्राम
2.	दाल	40 "	60 "	50 "	10 "
3.	हरी सब्जियाँ	40 "	40 "	40 "	40 "
4.	अन्य सब्जियाँ	60 "	80 "	70 "	50 "
5.	जड़ वाले पदार्थ	50 "	80 "	60 "	60 "
6.	दूध	150 "	250 "	200 "	0 "
7.	तेल व वनस्पति	40 "	65 "	45 "	20 "
8.	चीनी व गुड़	30 "	55 "	35 "	25 "

उपर्युक्त तालिका में अलग-अलग प्रकार का श्रम करने वाले व्यक्तियों के लिये सन्तुलित आहार की अलग-अलग मात्रा प्रस्तुत की गयी है।

डाकिये मध्यम स्तर का श्रम करने वाले कर्मचारी हैं। तालिका देखने से पता चलता है कि मध्यम स्तर का श्रम करने वाले व्यक्तियों के लिये चावल व रोटी की जो मात्रा सन्तुलित आहार की होनी चाहिये वह तो डाकियों को उपलब्ध हो रही है किन्तु इसके अतिरिक्त अन्य खाद्य पदार्थ उन्हें उस रूप में नहीं प्राप्त हो

रहे हैं जैसे- दाल प्रति दिन 50 ग्राम के स्थान पर 40 ग्राम, हरी सब्जियाँ 40 ग्राम के स्थान पर 10 ग्राम, अन्य सब्जियाँ 70 ग्राम के स्थान 50 ग्राम, दूध औसत रूप में नहीं के बराबर, तेल व वनस्पतियाँ 45 ग्राम की जगह 20 ग्राम तथा चीनी व गुड़ 35 ग्राम के स्थान पर 25 ग्राम ही उपलब्ध हो पा रहा है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि डाकियों को सन्तुलित आहार उचित रूप में प्राप्त नहीं हो पा रहा है। इससे उनका स्वास्थ्य व कार्य क्षमता दोनों प्रभावित हो रही है।

वस्त्र

व्यक्ति के रहन-सहन के स्तर को मापने का दूसरा पैमाना व्यक्ति द्वारा धारण किये जाने वाले वस्त्र हैं। वैसे तो डाकियों को विभाग द्वारा वस्त्र प्रदान किये जाते हैं। इनका प्रयोग वे कार्य के समय में ही करते हैं, लेकिन दैनिक जीवन में उनके द्वारा अपनी आय से ही अपने व परिवार के लिये वस्त्र बनवाये जाते हैं।

निम्नलिखित तालिका डाकियों तथा उनके परिवार के द्वारा दैनिक जीवन में प्रयुक्त वस्त्रों का चित्रण प्रस्तुत करती है--

तालिका संख्या-38

उत्तरदाताओं तथा उनके परिवार द्वारा दैनिक जीवन में प्रयुक्त वस्त्रों का विवरण

क्र.सं.	वस्त्र के प्रकार	डाकियों की संख्या	प्रतिशत
1.	मोटे	88	48.89
2.	मध्यम स्तर के	68	37.78
3.	उच्च स्तर के	24	13.33
योग		180	100.00

तालिका द्वारा स्पष्ट होता है कि 48.89 प्रतिशत डाकिये व उनका परिवार मोटे वस्त्र पहनते हैं, 37.78 प्रतिशत मध्यम स्तर के, 13.33 प्रतिशत उच्च स्तर के वस्त्र पहनते हैं। उच्च प्रकार के वस्त्र पहनने वाले डाकियों में ज्यादातर वे ही हैं, जो नवयुवक हैं और जिनकी नियुक्ति पिछले 5 वर्षों में हुई हैं। कभी-कभी ये नवयुवक डाकिये अच्छे कपड़े बनवाने के लिए दूसरों से ऋण भी ले लेते हैं।

प्रायः देखने में आता है कि डाकिये विभाग द्वारा दिये हुए वस्त्र का प्रयोग कार्य के घण्टों के पश्चात भी करते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि वे स्वयं के वस्त्रों पर कम से कम व्यय करके घर में अन्य सदस्यों के वस्त्रों की आपूर्ति करते हैं।

रहन-सहन के अन्तर्गत निम्नांकित तालिका डाकियों के आवास-स्तर

को चित्रित करती है। जैसे वे अपने दैनिक जीवन में किन-किन सुविधाओं का उपभोग करते हैं, जैसे-कुर्सी, मेज, पंखे, रेडियो अन्य।

तालिका संख्या-39

उत्तरदाताओं द्वारा दैनिक जीवन में प्रयुक्त सुविधा की वस्तुएँ

क्र.सं.	वस्तुओं के प्रकार	डाकियों की संख्या	प्रतिशत
1.	कुर्सी	72	40
2.	पंखे (विद्युत)	17	9.45
3.	ट्रांजिस्टर	87	48.33
4.	अन्य	4	2.22
योग		180	100.00

तालिका से स्पष्ट होता है कि कुल 180 उत्तरदाताओं में से 40 प्रतिशत डाकियों के पास कुर्सियाँ हैं 9.45 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास विद्युत पंखे हैं जब कि 48.33 प्रतिशत के पास रेडियो है। इसके अतिरिक्त 2.22 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास सुविधाजनक अन्य वस्तुयें हैं जैसे साधारण प्रकार के सोफे, टी. वी. ड्रेसिंग टेबुल आदि। लेकिन ये वस्तुयें इन डाकियों द्वारा खरीदी हुई नहीं है बल्कि ये उन्हें विवाह में दहेज आदि के रूप में मिली हुई हैं।

इस प्रकार रहन-सहन के स्तर से सम्बन्धित उपर्युक्त तीनों तालिकाओं के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि 70 प्रतिशत से अधिक उत्तरदाताओं को अच्छे भोजन नहीं उपलब्ध हो पाते। लगभग 50 प्रतिशत मोटे कपड़ पहनते हैं और 50 प्रतिशत से कम ही डाकियों के पास फर्नीचर, पंखे, विद्युत, ट्रांजिस्टर आदि घरेलू वस्तुयें हैं। यह स्पष्ट रूप से संकेत करता है कि डाकियों के रहन-सहन का स्तर अच्छा नहीं है।



: 6 :

डाकियों के कार्य की दशाएँ

किसी भी संगठन अथवा संस्था के लिए उसमें कार्यरत कर्मचारी सबसे महत्वपूर्ण साधन होते हैं। संस्था की सफलता कर्मचारियों की कार्य कुशलता एवं सहयोग पर निर्भर करती है। डाक विभाग एक ऐसा ही जनोपयोगी संगठन है।

भारतीय डाक सेवा विश्व की महानतम डाक सेवा है और इस दायित्वपूर्ण विभाग का आदर्श वाक्य है, 'अहनिशं सेवामहे' अर्थात् रात-दिन सेवारत रहते हुए जनता की अनवरत सेवा करना ही इस विभाग का मूल मन्त्र है।

आज के संचार-साधनों से देश के कल-कारखानों व्यापार और विभागीय प्रशासनों के संचालन में बहुत सहायता मिलती है मगर गाँवों में रहने वाले, पहाड़ों की बर्फीली चट्टानों पर ड्यूटी देने वाले, रेगिस्तान के हजारों मील लम्बे मरूस्थल में निवास करने वालों का एकमात्र साधन तो डाक की चिट्ठी ही है। संदेश पहुँचाने तथा लाने का कार्य प्राचीन काल से ही होता आ रहा है।

कार्य की दृष्टि से डाकिये का स्थान डाक-व्यवस्था के कर्मचारियों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि मानव समाज में डाक लोकप्रियता को भी बढ़ाता है। डाकिये का व्यवसाय अत्यन्त कठिन है। कन्धे पर डाक का थैला लटका कर पोस्टमैन किसी के लिए शान्ति का और किसी के लिए संवेदना का सन्देश वाहक बन कर आता है। यह दूर-दूर तक फैले हुए गाँवों, पहाड़ी और रेगिस्तानी इलाकों में पत्र बाँटता है। मूसलाधार बारिश में, चिलचिलाती दोपहरी में, व कड़ाके की ठंड में भी भारतीय डाकिया नागरिकों के यहाँ डाक पहुँचाता है। उसका कार्य वस्तुतः अद्‌भुत है क्योंकि वह अपने कार्यों से मेल-मिलाप, समन्वय और प्रेम-सम्बन्ध को सुदृढ़ बनाता है। जनता उसकी प्रतीक्षा करती है, उससे अनुराग करती है, उसे देखकर मुस्कराती है, उसका मान एवं सम्मान करती है। इस प्रकार वह अपने व्यवसाय द्वारा जनता में डाक-विभाग की छवि को निखारता है, जनता की सेवा करता है और समाज के सभी लोगों को अपने-अपने कर्तव्य को करते रहने की याद दिलाता है।

प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत डाकियों के व्यावसायिक पृष्ठभूमि का अध्ययन किया गया है। इसके अन्तर्गत यह ज्ञात करने का प्रयास किया गया है कि डाकिये इस व्यवसाय में कब से कार्य कर रहे हैं, उनके पिता का क्या व्यवसाय रहा है, क्या डाकिये अपने वर्तमान पेशे से सन्तुष्ट हैं और क्या अपने पुत्र को इस व्यवसाय में लाना चाहेंगे, इसके अतिरिक्त उनमें व्यावसायिक गतिशीलता किस प्रकार की है, सुविधाओं के अन्तर्गत उन्हें विभाग से किस प्रकार की सुविधाएँ

मिली हुई है आदि का व्यापक चित्रण प्रस्तुत किया गया है, साथ ही सरकार द्वारा इनके कल्याण के लिये क्या-क्या प्रयास किये गये हैं आदि इस अध्याय की प्रमुख विशेषतायें हैं।

प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत सर्वप्रथम यह ज्ञात करने का प्रयास किया गया है कि सन् 1981 से पूर्व डाकियों की कितनी संख्या थी और उस समय कितनी जनसंख्या पर एक डाकिया कार्यरत था तथा 1981 के बाद 1991 में डाकियों की संख्या में कितनी वृद्धि हुई है और कितनी जनसंख्या पर अब डाकिये को कार्य करना पड़ रहा है। विवरण तालिका में स्पष्ट है--

तालिका संख्या-40

क्र.सं.	वर्ष	जनसंख्या (गोरखपुर)	डाकियों की संख्या	जनसंख्या प्रति डाकिया
1.	1981	37,95,735	112	33890
2.	1991	47,46,622	180	26370

उपर्युक्त तालिका में 1981 की जनगणना के समय महराजगंज जनपद गोरखपुर जनपद से अलग नहीं हुआ था, अतः उसकी जनसंख्या 37,95,735 थी तथा वर्ष 1991 में महराजगंज जनपद के गोरखपुर जनपद से अलग हो जाने के बाद दोनों जिलों की जनसंख्या अलग-अलग क्रमशः इस प्रकार है- गोरखपुर-30,67,280 तथा महराजगंज-16,79,342। किन्तु अभी भी डाक-विभाग का कार्य दोनों जिलों का अलग-अलग न होकर संयुक्त रूप से ही गोरखपुर मुख्यालय द्वारा किया जा रहा है, इसलिये उपर्युक्त तालिका में दोनों जनपदों की जनसंख्या संयुक्त रूप से 47,46,622 प्रस्तुत की गई है।

तालिका से स्पष्ट है कि 1981 की जनगणना के अनुसार जब गोरखपुर जनपद की कुल जनसंख्या 37,95,735 थी तो उस समय कुल डाकिये 112 थे इस प्रकार जनसंख्या की दृष्टि से 33,890 की जनसंख्या पर एक डाकिया नियुक्त था तथा 1991 की जनगणना के अनुसार 47,46,622 की जनसंख्या पर डाकियों की संख्या बढ़कर 180 हो गई है, इस प्रकार अब 26,370 की जनसंख्या पर एक डाकिया कार्य कर रहा है।

विश्लेषण से स्पष्ट है कि 1981 से पूर्व जनसंख्या के आधार पर डाकियों पर कार्य का भार अधिक था जबकि 1991 के बाद जनसंख्या की दृष्टि से इनके ऊपर कार्य का भार पहले की अपेक्षा कम हुआ है।

डाकियों के पिता का व्यवसाय

अध्ययन के अन्तर्गत डाकियों से उनके पिता के व्यवसाय के विषय में जानकारी प्राप्त की गई है। इसको ज्ञात करने का उद्देश्य यह देखना है कि क्या नौकरी पेशे में वे ही डाकिये आये हैं जिनके पिता भी नौकरी करते थे अथवा

अन्य व्यवसाय करने वालों ने भी अपने पुत्रों को नौकरी में लाना पसन्द किया है। विवरण तालिका में प्रस्तुत है--

तालिका संख्या-41

डाकियों के पिता के व्यवसाय का विवरण

क्र.सं.	डाकियों के पिता का व्यवसाय	डाकियों की संख्या	प्रतिशत
1.	कृषि	180	60
2.	नौकरी	34	18.89
3.	व्यापार	17	9.44
4.	अन्य व्यवसाय (परम्परागत)	21	11.67
योग		180	100.00

तालिका से स्पष्ट है कि 60 प्रतिशत डाकियों के पिता कृषि कार्य में, 18.89 प्रतिशत डाकियों के पिता नौकरी पेशे में, 9.44 प्रतिशत डाकियों के पिता व्यापार में तथा 11.67 प्रतिशत डाकियों के पिता व्यापार में तथा 11.67 प्रतिशत डाकियों के पिता अन्य व्यवसाय (परम्परागत) में हैं/रहे हैं।

विवरण से स्पष्ट है कि यद्यपि डाकियों के पिता भिन्न व्यवसायों में संलग्न है/रहे हैं। लेकिन उन्होंने अपने बच्चों को नौकरी पेशे में ही लगाया है। इससे पता चलता है कि डाकियों के परिवारों में व्यावसायिक गतिशीलता बढ़ी है।

अध्ययन के अन्तर्गत यह भी पाया गया है कि आधुनिकीकरण उन्हीं डाकियों का हुआ है जिनके पिता शिक्षित रहे हैं और जिनकी आय अधिक रही है।

उत्तरदाताओं का अपने बच्चों के लिए व्यवसाय को दी गई प्राथमिकता सम्बन्धी विचार

व्यवसाय के अन्तर्गत डाकियों से प्रश्न पूछा गया है कि वे अपने बच्चों के लिए किस व्यवसाय को प्राथमिकता देंगे। इसका विवरण निम्नांकित तालिका से स्पष्ट है--

तालिका संख्या-42

क्र.सं.	व्यवसाय	डाकियों की संख्या	डाकियों का प्रतिशत
1.	चिकित्सा	42	23.33
2.	इन्जीनियरिंग	25	13.89
3.	प्रशासन	55	30.56
4.	अध्यापन	27	15.0
5.	व्यापार	11	06.12
6.	अन्य	20	11.1
योग		180	100.00

इस प्रकार जहाँ तक डाकियों का बच्चों के लिए व्यवसाय को दी गई प्राथमिकता का प्रश्न है 23.33 प्रतिशत डाकियों ने अपने बच्चों को चिकित्सा सेवा में जाने का विचार व्यस्त किया जबकि 13.89 प्रतिशत इन्जीनियरिंग में, 30.56 प्रतिशत ने प्रशासन में, 15 प्रतिशत अध्यापन में। व्यापार कराना पसन्द करने वाले डाकियों का प्रतिशत 6.12 है जबकि अन्य व्यवसाय जैसे कृषि आदि कार्य के लिए 11.1 प्रतिशत ने बच्चों के लिये व्यवसाय को प्राथमिकता दी। इस प्रकार सबसे ज्यादा डाकिये प्रशासन के व्यवसाय को उपयुक्त समझते हैं जबकि सबसे कम व्यापार को।

डाकियों द्वारा वर्तमान-पेशे में अपने पुत्रों को लाने के विषय में विचार--

डाकियों से यह पूछा गया कि क्या वे अपने पुत्र को इस पेशे में लाना चाहेंगे, इस विषय में उनके द्वारा व्यक्त किये गये विचार निम्नांकित तालिका से स्पष्ट होते हैं।

तालिका संख्या-43

क्र.सं.	पुत्र को वर्तमान पेशे में लाना चाहते हैं	डाकियों की संख्या	प्रतिशत
1.	पक्ष	36	20
2.	विपक्ष	144	80
योग		180	100

तालिका से पता चलता है कि 36 (20 प्रतिशत) डाकिये ही अपने पुत्र सन्तान को इस व्यवसाय में लाना चाहते हैं। कारण पूछने पर उनमें से कुछ ने बताया कि यह उनका खानदानी पेशा रहा है और इसे उसका लड़का आसानी से कर सकता है, जबकि कुछ का यह विचार है कि इस पेशे के कारण उनके बच्चों को उनसे ज्यादा दूर नहीं रहना पड़ेगा और वे घर के कृषि-कार्यों में भी हाथ बँटा लेंगे।

दूसरी तरफ 144(80 प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने बताया कि वे वर्तमान पेशे से सन्तुष्ट नहीं है। इन डाकियों ने बताया कि पहले केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों व प्रान्त सरकार के कर्मचारियों के वेतन में बहुत अन्तर था, उन्हें अपेक्षाकृत अधिक वेतन मिलता था। अत: लोगों ने डाकियों की नौकरी स्वीकार की थी, इसलिए पहले वे इस पेशे से संतुष्ट थे, लेकिन वर्तमान समय में उन्होंने इस पेशे से असंतोष प्रकट किया। इन डाकियों का कहना है कि वर्तमान समय में केन्द्र सरकार व प्रान्त दोनों के वेतन में समानता हो गई है। इसके अतिरिक्त डाकियों के कार्य की दशायें प्रान्त सरकार के कर्मचारियों की तुलना में बहुत कठिन हैं इसलिए वे अपने पुत्रों को इस व्यवसाय में लाना पसन्द नहीं कर रहे हैं लेकिन इन्हें

वेतन के अतिरिक्त किसी प्रकार की कोई ऊपरी आमदनी नहीं है जबकि अन्य विभागों में कर्मचारियों को ऊपरी आमदनी वेतन से कहीं ज्यादा हो जाती है।

इससे स्पष्ट है कि डाकिये वर्तमान पेशे से सन्तुष्ट नहीं हैं और उनमें से 80 प्रतिशत अपने पुत्रों को इस पेशे में नहीं लाना चाहते।

नौकरी करने का उद्देश्य

किसी भी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का उसके व्यवसाय (पेशे) से अत्यधिक घनिष्ठ सम्बन्ध है। कभी-कभी यह देखा गया है कि व्यवसाय (यहाँ व्यवसाय से तात्पर्य नौकरी से है क्योंकि सभी कर्मचारी पेशे वाले हैं, यह उनका व्यवसाय है) व्यक्ति के सामाजिक स्थिति का निर्धारण करता है।

समाज में व्यवसाय उसकी सामाजिक स्थिति का प्रतीक है परन्तु आज के भौतिकवादी युग में धन महत्वपूर्ण अंग बन गया है। आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में नौकरी पेशे वालों को आदर की दृष्टि से देखा जाता है।

लगभग सभी डाकिये ग्रामीण क्षेत्रों के ही हैं जहाँ का मुख्य पेशा कृषि ही है। कृषि-कार्य तथा अपने दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वहाँ के लोगों को अपने कृषि उत्पादन को ही बेंचकर काम चलाना पड़ता है जिससे उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ नहीं रह जाती है लेकिन जो ग्रामीण व्यवसाय में आ चुके हैं, उन्हें अपनी इन आवश्यकताओं की पूर्ति में मदद मिल जाती है। इससे उनका जीवन यापन हो जाता है। इस प्रकार सभी उत्तरदाताओं ने नौकरी के पीछे जीवन यापन ही उद्देश्य बताया है।

समान व समकक्ष व्यवसाय में लगे कर्मियों की तुलना में डाकियों का स्थान

अध्ययन के अन्तर्गत उत्तरदाताओं से यह पूछा गया कि अपने समान व समकक्ष व्यवसायों में लगे अन्य विभाग के सहकर्मियों से अपनी तुलना करने पर वे अपने को सामाजिक व आर्थिक दृष्टिकोण से कहाँ स्थित पाते हैं उच्च, समकक्ष अथवा निम्न, निम्नांकित तालिका में इसका विवरण स्पष्ट है।

तालिका संख्या--44

डाकियों का अपने समान व समकक्ष व्यवसाय में लगे अन्य विभागों के सहकर्मियों की तुलना में स्थान--

क्र.सं.	डाकियों का स्थान	डाकियों की संख्या	प्रतिशत
1.	उच्च		
2.	समकक्ष	64	35.5
3.	निम्न	116	64.5
योग		180	100.00

तालिका से स्पष्ट है कि कुल 100 डाकियों में से कोई भी डाकिया ऐसा नहीं है जो दूसरे विभागों में कार्य करने वाले सहकर्मियों की तुलना में अपने को उनसे उच्च पाता है। अतः कुल डाकियों में से 35.5 प्रतिशत डाकिये अपने को उनके समकक्ष पाते हैं तथा 64.5 प्रतिशत डाकिये अपने को उनसे निम्न स्थिति में पाते हैं।

इससे स्पष्ट है कि अधिकांश डाकिये अपने पेशे से सन्तुष्ट नहीं हैं क्योंकि उन्हीं के समकक्ष अन्य विभागों के कर्मचारी इनके समान वेतन प्राप्त करने के बाद भी आर्थिक दृष्टि से अच्छे हैं क्योंकि उनके यहाँ वेतन के अतिरिक्त आय के अन्य स्रोत भी हैं। वे जनता से चोरी-छिपे रूपये (रिश्वत के रूप में) लेकर उनका कार्य करते हैं, इसके अतिरिक्त वे अन्य स्रोत भी तलाश्ते रहते हैं जबकि डाक-विभाग इस मामले में बहुत ईमानदार है। जनता की इतनी सेवा करने के बाद भी इनको कुछ देना तो दूर इनकी शिकायतें ही अधिक की जाती हैं।

आर्थिक स्थिति निम्न होने के क़ारण समाज में इनकी सामाजिक स्थिति भी निम्न है।

अध्ययन के दौरान यह ज्ञात हुआ कि अपनी इस निम्न आर्थिक स्थिति के कारण ये अपने बच्चों को अच्छे स्कूलों में नहीं डाल पा रहे हैं उन्हें शिक्षा नहीं दिला पा रहे हैं, अपनी लड़कियों का विवाह अच्छे घरों में नहीं कर पा रहे हैं। आर्थिक स्थिति दुर्बल होने के कारण अन्य विभागों में कार्य करने वाले सहकर्मी इनके यहाँ सम्बन्ध स्थापित नहीं करना चाहते हैं।

अध्ययन के अन्तर्गत उत्तरदाताओं से उनकी महत्वाकांक्षाओं के विषय में प्रश्न किये गये। कुल 180 उत्तरदाताओं में से डाकिये मिडिल कक्षा उत्तीर्ण हैं उन्होंने अपनी कोई महत्वाकांक्षा नहीं बताई, शेष अन्य ने बताया कि वे तृतीय श्रेणी में सबसे निचले स्तर पर हैं और वे चाहते हैं कि तृतीय श्रेणी में सबसे उच्च पद प्राप्त कर लें।

मनोरंजन व अवकाश

व्यक्ति के जीवन में मनोरंजन का अपना एक अलग स्थान है जितने मनुष्य हैं, उतने ही मनोरंजन के साधन भी हैं। प्रत्येक व्यक्ति मनोरंजन के सम्बन्ध में अपना अलग-अलग विचार रखता है। दिन भर की थकान के बाद मनोरंजन आवश्यक है तभी व्यक्ति की थकान दूर होती है और वह प्रसन्नता का अनुभव करता है। डाकिये दिन भर कार्य करने के पश्चात थकान महसूस करते हैं, अतः उन्हें भी मनोरंजन चाहिये, परन्तु मनोरंजन के लिये धन की भी आवश्यकता पड़ती है। आज के युग में मनोरंजन व्यापारिक हो गया है। इसमें व्यक्ति को धन व्यय करना पड़ता है। प्राचीन युग में तो व्यक्ति का मनोरंजन परिवार के अन्दर

ही हो जाता था किन्तु आज ऐसा नहीं है, फलतः व्यक्ति को अपना मनोरंजन घर से बाहर ही करना होता है।

मनोरंजन के अनेक साधन हैं। प्रत्येक व्यक्ति का प्रसन्नता प्राप्त करने का अपना अलग-अलग दृष्टिकोण है। कुछ व्यक्ति तो अपने परिवार के सदस्यों के साथ रहकर आनन्द प्राप्त करना चाहते हैं तो कुछ अपनी सम्पत्ति की देखभाल करके।

अध्ययन के अन्तर्गत डाकियों से उनके मनोरंजन के विषय में प्रश्न पूछे गये कि वे अपने अवकाश के समय का सदुपयोग कैसे करते हैं, अपना साप्ताहिक अवकाश किस प्रकार व्यतीत करते हैं, मनोरंजन के किन-किन साधनों का प्रयोग करते हैं, मँहगे या कामचलाऊ?

डाकियों के विचार तालिका में प्रस्तुत हैं--

तालिका संख्या-45

उत्तरदाताओं के मनोरंजन सम्बन्धी क्रियाकलाप

क्र.सं.	मनोरंजन के साधन	डाकियों की संख्या	प्रतिशत
1.	खेल	09	5.07
2.	सिनेमा	12	6.67
3.	उपन्यास पढ़ना	05	2.78
4.	गाना/बजाना	09	5.0
5.	अध्ययन	12	6.67
6.	घूमना		
7.	गृहकार्य	48	26.67
8.	खेती बारी	69	38.33
9.	अन्य (गपशप)	16	8.89
योग		180	100

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 5.07 प्रतिशत डाकिये खेल द्वारा अपना साप्ताहिक अवकाश व्यतीत करते हैं जबकि 6.67 प्रतिशत सिनेमा देखने जाते हैं। सिनेमा देखने वालों में युवक डाकिये और शहर तथा कस्बों के डाकिये हैं। इससे पता चलता है कि सिनेमा देखने वालों की संख्या अधिक नहीं है। 2. 78 प्रतिशत डाकिये उपन्यास पढ़ने में रूचि लेते हैं। इसके द्वारा डाकिये मानसिक सन्तुष्टि प्राप्त करते हैं 5 प्रतिशत डाकिये गाना-बजाना द्वारा मनोरंजन करते हैं। यह मनोरंजन का सबसे सस्ता साधन है। इस साधन को ग्रामीणों द्वारा ही अपनाया गया है। 6.67 प्रतिशत डाकिये अध्ययन में रूचि लेते हैं। इसमें युवक डाकिये जो उच्च शिक्षा प्राप्त हैं वे विभागीय परीक्षाओं के लिए अध्ययन-कार्य

में लगे हुए हैं। किसी भी डाकिये ने साप्ताहिक अवकाश में घूमने में नहीं रूचि दिखाई है। उनका कहना है कि आउट डोर ड्यूटी के कारण उन्हें वैसे ही दिन भर घूमना पड़ता है। 26.67 प्रतिशत डाकियों ने गृह-कार्य में रूचि दिखाई। उन्होंने बताया कि साप्ताहिक अवकाश के दिनों में वे घर पर गृहकार्य जैसे पशुओं की देखभाल आदि के कार्य करते हैं। 38.33 प्रतिशत डाकियों में कुछ शहर वाले और अन्य गाँव वाले अपने कृषि कार्य को देखते हैं। जबकि शेष 8.89 प्रतिशत डाकिये गपशप से अपना मनोरंजन करते हैं। इस प्रकार तालिका से पता चलता है कि डाकियों का मनोरंजन सम्बन्धी क्रिया-कलापों के विषय में कोई विशेष दृष्टिकोण नहीं है। उनके द्वारा मनोरंजन के जिन साधनों का प्रयोग किया जा रहा है, वे सस्ते व उपयोगी हैं।

कार्यस्थल व निवास-स्थान के बीच दूरी

अध्ययन के अन्तर्गत अधिकांश उत्तरदाता ग्रामीण क्षेत्रों के ही हैं। शहर में रहने वाले उत्तरदाताओं की संख्या अपेक्षाकृत कम है। इस सन्दर्भ में यह देखना आवश्यक है कि डाकियों के कार्यस्थल व निवास के बीच कितनी दूरी है-विवरण निम्नांकित तालिका में स्पष्ट है--

तालिका संख्या-46

कार्यस्थल व निवास के बीच दूरी

क्र.सं.	दूरी किमी0 में	डाकियों की संख्या	प्रतिशत
1.	0-5	100	55-56
2.	5-10	52	28-89
3.	10-15	28	15.55
4.	15 से ऊपर		
योग		180	100

उपर्युक्त तालिका के अनुसार 55.56 प्रतिशत डाकिये 5 कि.मी. तक की दूरी तय करते हैं, 28.89 प्रतिशत, 5-10 कि0मी0 तक की दूरी तथा 15.55 प्रतिशत डाकिये 10-15 कि0मी0 तक की दूरी प्रतिदिन तय कर निवास से कार्यालय तक पहुँचते हैं। उन्होंने बताया कि ये दूरी वे सायकिल से ही तय करते हैं क्योंकि अगर वे थोड़ी दूरी पैदल तय भी कर लें तो वितरण-क्षेत्र में जाने के लिए उन्हें सायकिल की ही आवश्यकता पड़ेगी। इसलिए डाकिये पैदल नहीं चलते और अर्थाभाव के कारण सायकिल के अतिरिक्त अन्य किसी वाहन का प्रयोग भी नहीं कर पाते। सायकिल खरीदने में उन्हें असुविधा नहीं होती क्योंकि उन्हें विभाग की ओर से सायकिल खरीदने के लिए अग्रिम धनराशि भी मिल जाती है।

कार्यालय से वितरण क्षेत्र तक आने-जाने के दौरान डाकियों द्वारा तय किये जाने वाली दूरी का विवरण

डाकियों द्वारा आम जनता तक उनके पत्र व अन्य सामग्री पहुँचाने के लिए जिन स्थानों पर जाना पड़ता है उसे वितरण क्षेत्र कहते हैं। सभी डाकियों का अपना अलग-अलग वितरण-क्षेत्र होता है।

गोरखपुर शहर में पहले चूँकि जनसंख्या कम थी इसलिए प्रधान डाकघर से ही डाकियों द्वारा जनता तक समस्त पत्रों को पहुँचाया जाता था। इससे उन्हें ही पूरे शहर का चक्कर लगाना पड़ता था लेकिन धीरे-धीरे जनसंख्या की वृद्धि तथा नगरों के विस्तार के कारण एक स्थान से ही डाक-वितरण में असुविधा होने लगी, जिसके कारण पूरे गोरखपुर शहर को 15 वितरण क्षेत्रों के अन्तर्गत विभाजित कर दिया गया है। साथ ही डाकियों की संख्या भी बढ़ा दी गई है। यहाँ कार्यालय से वितरण क्षेत्र बहुत दूर नहीं पड़ते हैं। अत: यहाँ पर डाकियों ने बताया कि उनको औसतन 5-7 कि0मी0 तक की दूरी तय करनी पड़ती है, लेकिन गाँवों में डाकियों को एक गाँव से दूसरे गाँव तक चलते हुए कई गाँवों की दूरी तय करनी पड़ती है। और साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में डाकियों की संख्या भी कम होती है इसलिए ग्रामीण क्षेत्र में डाकियों से पूछे जाने पर उन्होंने बताया कि उन्हें प्रतिदिन औसतन 10-15 कि0मी0 तक की दूरी तय करनी पड़ती है।

इस प्रकार शहर के डाकियों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्र के डाकियों को अधिक दूरी तय करनी पड़ती है।

डाकियों के उत्तरदायित्व व कार्य के घण्टे

डाकियों से उनके कार्य की दशाओं के बारे में जानकारी प्राप्त की गई। उनसे यह पूछने पर कि वर्तमान कार्य के घण्टों को देखते हुए वे अपने ऊपर अधिक कार्य का बोझ अनुभव करते हैं, सभी डाकियों ने सकारात्मक उत्तर दिया। उनका कहना है कि उनके ऊपर कार्यों का दायित्व इतना अधिक है कि वर्तमान कार्य के घण्टों में वे सम्पादित नहीं कर पा रहे हैं। उन्होंने बताया कि वे पूरे वितरण-क्षेत्र में समय के अन्दर नहीं पहुँच पा रहे हैं। डाकघरों में पूछने पर पता चला कि अवितरित वस्तुओं की वापसी की संख्या अधिक हो रही है। उत्तरदाताओं ने बताया कि पत्र समय से मिले यह तभी सम्भव होगा जब उनके वितरण-क्षेत्र को या तो कम किया जाय अथवा कार्य को देखते हुए और भी डाकिये नियुक्त किये जाँय। इससे जनता को भी कोई शिकायत नहीं रहेगी।

ओवरटाइम

इस सन्दर्भ में डाकियों से यह पूछा गया कि क्या उन्हें निर्धारित अवधि से अधिक भी कार्य करना पड़ता है, उन्हें बताया कि उन्हें हमेशा नहीं करना पड़ता बल्कि जब कोई डाकिया आवकाश पा जाता है और आरक्षित डाकिये उपलब्ध नहीं होते हैं ऐसी दशा में सरकारी कार्य को सुचारू रूप से सम्पादित करने के

लिए विभाग द्वारा अच्छा ओवर टाइम भत्ता दिया जाता है।

अध्ययन के अन्तर्गत डाकियों से यह पूछे जाने पर कि डाक कर्मचारी होने के कारण क्या वे अपने दैनिक जीवन में समय की कमी का अनुभव करते हैं, लगभग सभी ने बताया कि उनको समय की कमी महसूस होती है क्योंकि घर से कार्यालय होते हुए घर वापस आने में उन्हें सायकिल से बहुत लम्बी दूरी तय करनी पड़ती है। घर आते-आते शाम हो जाती है अतः उनका समय और शक्ति दोनों व्यय होता है। जिससे वे अपने परिवार को कम समय दे पाते हैं, जिसका प्रभाव बच्चों के अनुशासन पर पड़ रहा है।

डाकियों को विभाग से मिलने वाली सुविधाएँ- कार्य की दशायें जिसके अन्तर्गत रहकर कर्मचारी कार्य करता है उसके स्वास्थ्य, क्षमता, मनोविज्ञान और उनके कार्य करने के तरीके को प्रभावित करता है। अस्वास्थ्यकर दशाओं के अन्तर्गत रहकर व्यक्ति कठिन परिश्रम नहीं कर सकता है, कार्य करने में उसका मन नहीं लगता है। कार्य की अच्छी दशायें कर्मचारियों की कार्य क्षमता को ही प्रभावित नहीं करती बल्कि उसे प्रसन्न भी रखती हैं और यह प्रसन्नता उनकी कार्य-कुशलता में वृद्धि करती है। इसके अभाव में वह अपने कार्य को बहुत कठिन समझता है, उखड़ा हुआ महसूस करता है और हीनता की भावना के कारण उसे अपने जीवन का कोई आकर्षण नहीं रह जाता है। कार्य की दशायें अच्छी होने पर ही व्यक्ति संगठनों और परिवारों आदि को भी समय दे पाता है। इससे अधिकारियों और कर्मचारियों के बीच सम्बन्ध भी अच्छे बने रहते हैं।

कार्यों की दशाओं के अन्तर्गत निम्नांकित बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है।

1. **वर्दी**- डाकियों को कार्यालय से बाहर जाकर जनता के बीच कार्य करना पड़ता है ऐसी स्थिति में इनकी पहचान बनाने के लिए इनके लिए विशेष वर्दी की व्यवस्था की गई है। वर्दी को देखकर ही दूर से ही उसकी उपस्थिति का ज्ञान जनता को हो जाता है।

डाकियों द्वारा उन्हें विभाग द्वारा मिलने वाली वर्दी के विषय में प्रश्न पूछे गये। सभी ने यह स्वीकार किया कि वर्दी उन्हें बराबर मिलती है जिसके अन्तर्गत पैण्ट, शर्ट, टोपी, जर्सी, जाड़ों में ऊनी वर्दी, स्वेटर, दस्ताने, जूते, मोजे, चप्पल आदि दिये जाते हैं। धूप और वर्षा से बचने के लिए उन्हें छाता तथा बरसाती (रेनकोट) भी दिये जाते हैं।

जब डाकियों से यह पूछा गया कि क्या वे विभाग से मिलने वाली वर्दी से संतुष्ट हैं तो उन्होंने बताया कि अभी तक जो वर्दी मिलती थी वह सूती तथा भद्दे मोटे कपड़े की होती थी, जो सिली-सिलाई होती थी पर उनके नाप की नहीं होती थी। उन्हें अपने व्यय पर उसे अपने नाप का कराना पड़ता था, जिससे बहुतों को अर्थाभाव के कारण वैसे ही पहन लेना पड़ता था परन्तु अब वर्दी के लिए टेरीकाट के कपड़े दे दिये जा रहे हैं और साथ ही सिलाई के लिए अलग से

पैसे भी विभाग द्वारा दिये जा रहे हैं जिससे वे उसे अपने अनुरूप सिला रहे हैं। इसके कारण वे अब वर्दी से काफी प्रसन्न हैं। इससे जनता के बीच में इस विभाग की छवि पहले की अपेक्षा अच्छी दिखाई दी है। लेकिन इस सम्बन्ध में डाकियों ने एक शिकायत की है कि उन्हें वर्दी समय से नहीं मिलती है, बहुधा गर्मी की वर्दी जाड़ों में और जाड़े की वर्दी गर्मी में दी जाती है। कभी-कभी वर्दी मिलने में 1/2 वर्ष विलम्ब हो जाता है जिससे उन्हें अपनी पुरानी व फटी वर्दी से ही काम चलाना पड़ता है।

डाकियों के डाक सामग्री रखने की सुविधा का विवरण- अध्ययन के अन्तर्गत डाकियों से उन्हें डाक सामग्री रखने के लिए विभाग की ओर से मिलने वाली सुविधाओं के विषय में प्रश्न पूछने पर उन्होंने बताया कि उन्हें, बैग, नेट बैग और बरसाती बैग मिलने का नियम है लेकिन कभी-कभी ही उन्हें यह सुविधायें मिल पाती हैं। डाकियों से सम्पर्क करते समय पाया गया कि किसी भी डाकिये के पास विभाग द्वारा प्रदत्त कोई भी बैग नहीं था बल्कि सभी के पास निजी-व्यय पर लिया गया बैग था।

डाक-सामग्री को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने के लिए भी विभाग की ओर से नियम बनाये गये हैं। विभाग द्वारा निर्धारित वजन से अधिक के बोझ वितरण क्षेत्र में ले जाने के लिए विभाग की ओर से डाकियों को कोई शुल्क नहीं दिया जाता है। इस सन्दर्भ में डाकियों से प्रश्न पूछे गये कि डाक-सामग्री अधिक हो जाने पर वे उसे वितरण हेतु एक स्थान से दूसरे स्थान तक कैसे ले जाते हैं, समस्त डाकियों ने बताया कि कुली अथवा रिक्शे द्वारा ले जाते हैं जिसका व्यय विभाग वहन करता है लेकिन डाकियों ने इस सम्बन्ध में शिकायत की कि विभाग की ओर से दूरी के हिसाब से जो दर पहले निर्धारित की गई थी वह वर्तमान समय की मँहगाई के अनुपात में कम है, अतः कुली अथवा रिक्शे वालों के द्वारा अधिक मूल्य माँगे जाने पर उन्हें डाकियों को अपनी जेब से भी पैसे खर्च करने पड़ते हैं।

मनोरंजन- मनोरंजन व्यक्ति के जीवन का एक आवश्यक अंग है। यह व्यक्ति को शारीरिक थकान के बाद मानसिक संतुष्टि प्रदान करता है। डाकियों से इसके सम्बन्ध में पूछने पर पता चला कि मनोरंजन की सुविधा शहर में मात्र प्रधान डाकघर में ही है। गोरखपुर मंडल के अन्य किसी स्थान पर या शहर के ही अन्य 14 वितरण क्षेत्रों में इसकी कोई सुविधा उपलब्ध नहीं है। प्रधान डाकघर के मनोरंजन क्लब में निम्नांकित सुविधायें उपलब्ध हैं जैसे- रंगीन टी. वी., कमरे में खेले जाने वाले खेल, जैसे- कैरमबोर्ड, शतरंज, इत्यादि तथा बैडमिंण्टन, बालीबॉल आदि। प्रधान डाकघर वाले डाकियों ने बताया कि यहाँ सुविधा उपलब्ध तो है पर वे लोग इसका लाभ नहीं उठा पाते। इन्हें कार्य के बीच में अवकाश भी नहीं मिलता। कार्यालय में भी थोड़ी ही देर काम इन्हें

करना पड़ता है इसके बाद वे वितरण-क्षेत्र में चले जाते हैं। शाम को थककर लौटने के बाद वे मनोरंजन क्लब जाने के बजाय अपने निवास स्थान जाना ही पसन्द करते हैं।

विभाग द्वारा प्रदत्त औषधि की सुविधा का विवरण- शरीर को स्वस्थ बनाये रखने में औषधि का अपना महत्व है। यह व्यक्ति के स्वास्थ्य के लिए ही आवश्यक नहीं है बल्कि उसके कार्य के स्तर को भी प्रभावित करता है। जब कर्मचारियों का स्वास्थ्य ठीक रहेगा तो वे मन लगाकर अपना कार्य कर सकेंगे। इसीलिए सरकार ने इस ओर विशेष ध्यान दिया है। इसके अन्तर्गत गोरखपुर शहर में डाकतार चिकित्सालय की स्थापना की गई है जिसके द्वारा गोरखपुर शहर तथा इस महानगर के अन्तर्गत आने वाले सभी डाक-घरों के कर्मचारी इससे लाभान्वित हो रहे हैं।

डाकतार चिकित्सालय

गोरखपुर महानगर में डाक तार चिकित्सालय है जिसमें एक पुरूष तथा एक महिला डाक्टर नियुक्त हैं। डाकतार विभाग के सभी कर्मचारी और उनके परिवार के सदस्य निःशुल्क चिकित्सा के अधिकारी हैं। इसके अन्तर्गत विभाग के कर्मचारियों और उनके आश्रितों की चिकित्सा की जाती है। चिकित्सालय में स्त्री और पुरुष-मरीज को देखने के लिए अलग-अलग कमरे हैं जहाँ उन्हें दवा लिखी जाती है।

दवाओं का वितरण चिकित्सकों द्वारा निर्धारित दवायें) स्त्री और पुरुषों को अलग-अलग खिड़कियों से उपलब्ध करायी जाती है। जो निर्धारित दवा चिकित्सालय में उपलब्ध नहीं होती है उन्हें स्थानीय दुकान से खरीद कर मरीजों को चिकित्सालय द्वारा दिया जाता है।

ड्रेसिंग रूम और इंजेक्शन रूम

यहाँ दोनों के लिए अलग-अलग कमरों की व्यवस्था है जहाँ पर इंजेक्शन व ड्रेसिंग किया जाता है। यहाँ पर साधारण आपरेशन भी कर दिये जाते हैं।

न तो इस चिकित्सालय में विशेषज्ञों की सुविधा है और न ही यहाँ पर रोगी भर्ती किये जाते हैं। यदि किसी रोगी के साथ ऐसी परिस्थिति आती है तो उन्हें जिला चिकित्सालय अथवा मेडिकल कालेज जाने के लिए परामर्श दिया जाता है। इन स्थानों पर कर्मचारियों द्वारा चिकित्सा सम्बन्धी जो व्यय होता है उसे विभागीय नियमों के अन्तर्गत कर्मचारियों को उन्हें वापस लौटाने की व्यवस्था है।

पैथालोजी की व्यावस्था

यहाँ एक पैथोलोजी विभाग भी है, जहाँ पर रक्त, मल-मूत्र, की जाँच की जाती है और इसके परिणाम के अनुसार रोगियों की उचित दवा दी जाती है।

महानगर क्षेत्र से बाहर कार्य करने वाले डाक कर्मचारियों को डाक-तार चिकित्सालय की सुविधा उपलब्ध नहीं है। ऐसे डाक कर्मचारियों एवं डाकियों

को विभाग द्वारा अनुमन्य स्वास्थ्य केन्द्रों पर अपने तथा आश्रितों की चिकित्सा की सुविधा दी गई है। जो दवायें इन स्वास्थ्य केन्द्रों पर उपलब्ध नहीं है उन्हें वे बाजार से खरीद कर रसीद प्राप्त कर सकते हैं और इस रसीद के माध्यम से वे विभाग से दवा के लिए स्वयं वहन किये गये मूल्य को वापस प्राप्त कर सकते हैं। प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर विशेषज्ञ की सुविधा उपलब्ध न होने पर उनके लिए भी जिला अस्पताल तथा मेडिकल कालेज से चिकित्सा कराने पर उसका मूल्य पुनः प्राप्त करने की व्यवस्था है।

गोरखपुर महानगर के डाकियों से चिकित्सा सम्बन्धी सुविधा के विषय में प्रश्न पूछने पर उन्होंने बताया कि वे इस सुविधा का पूरा लाभ उठा रहे हैं और इससे वे पूर्णतः सन्तुष्ट भी हैं। उनका कहना है कि जो निर्धारित दवायें चिकित्सालय में उपलब्ध नहीं होतीं, उन्हें भी किसी परिस्थिति में बाजार से मँगाकर उपलब्ध कराई जाती है भले ही वे कितनी मँहगी क्यों न हों।

चिकित्सकों तथा चिकित्सालय के अन्य कर्मचारियों के व्यवहार से भी वे काफी संतुष्ट दिखे। उन्होंने बताया कि चिकित्सा विभाग उनसे किसी भी प्रकार के शुल्क की आशा नहीं करते।

महानगर के क्षेत्र के बाहर पूरे गोरखपुर मण्डल में जब इस सुविधा के विषय में डाकियों से जानकारी प्राप्त की गई तो उनमें घोर असन्तोष पाया गया। उनका कहना था कि स्वास्थ्य केन्द्रों की दूरी प्रायः उनके कार्यालय से अधिक होती है जिससे उनका तथा उनके आश्रित सदस्यों का वहाँ तक पहुँचना बहुत कठिन होता है। उन्हें यातायात की भी सुविधा समय से उपलब्ध नहीं हो पाती है। उनका पूरा दिन इसी में व्यर्थ चला जाता है। बिना अवकाश लिए उनका कार्य नहीं चल पात। इसके अतिरिक्त जो दवायें चिकित्सक लिखते हैं उनके स्थानीय बाजार में उपलब्ध न होने पर उन्हें इधर-उधर भटकना पड़ता है। कभी-कभी उन्हें गोरखपुर आने पर ही ये दवायें उपलब्ध हो पाती हैं। उन्होंने बताया कि दवाओं का पैसा लेने के लिए भी उन्हें काफी असुविधा का सामना करना पड़ता है। प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर जाकर कौन-कौन सी दवा दी गई, इसे फार्म पर लिखवाना पड़ता है तथा दवा के कैशमेमों को उनसे प्रतिहस्ताक्षरित कराना पड़ता है। विभागीय औपचारिकता को पूरा करने के पश्चात पैसा वापस लेने के लिए बिल प्रस्तुत करना पड़ता है। बिल को प्रस्तुत करने की समय-सीमा बहुत कम रखी गई है। जिसके अन्तर्गत बिल को प्रस्तुत न करने पर वह निरस्त कर दिया जाता है और दवा का सारा व्यय फिर उन्हें ही वहन करना पड़ता है। इसके बाद बिल प्रस्तुत करने के पश्चात भी अधिकारियों द्वारा अनेकों आपत्तियाँ लगाई जाती हैं। कभी-कभी इसकी विभागीय जाँच भी कराई जाती है जिससे कि दवा का पैसा वापस लेने में बहुत अधिक समय लग जाता है।

पुस्तकालय

गोरखपुर प्रधान डाकघर में डाकघर के कर्मचारियों के लिए पुस्तकालय

की सुविधा उपलब्ध है, जिसमें उपन्यास, लेख, निबन्ध, कहानी जीवनी आदि विभिन्न प्रकार की सभी स्तर की पुस्तकें उपलब्ध हैं। इसका लाभ सिर्फ प्रधान डाकघर के ही डाकिये उठा पाते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में डाकियों को ऐसी कोई भी सुविधा उपलब्ध नहीं है।

कैण्टीन

कर्मचारियों के स्वास्थ्य, कार्यक्षेत्र आदि की दृष्टि से कैण्टीन का बहुत महत्व है। कैण्टीन का उद्देश्य कर्मचारियों को उनके कार्य स्थल के निकट कम पैसे में सस्ते, स्वच्छ, पोषक और सन्तुलित आहार उपलब्ध कराना है। इसके अतिरिक्त कैण्टीन कर्मचारियों के मेल-मिलाप के स्थल के रूप में भी कार्य करता है जहाँ न केवल वे भोजन व बात-चीत करते हैं बल्कि आराम महसूस करते हुए पुनः ऊर्जा प्राप्त करते हैं। कैण्टीन ऐसा होना चाहिए जहाँ अधिक लोग बैठ सकें। यह सेवा के उद्देश्य से कार्य करता है न कि लाभ के उद्देश्य से।

गोरखपुर महानगर के अन्तर्गत 15 वितरण कार्यालयों में से मात्र प्रधान डाकघर गोरखपुर में ही कैण्टीन की सुविधा उपलब्ध है जहाँ डाकियों के लिए साधारण चाय, नाश्ते का प्रबन्ध है। शहर के बाहर के डाकियों के लिए इनका कोई प्रश्न ही नहीं है। यहाँ प्रधान डाकघर के डाकियों ने बताया कि यहाँ जो कैण्टीन है वह बहुत छोटा है उसकी सुविधा लेने के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

आवास का विवरण

व्यक्ति की आधारभूत आवश्यकताओं में से आवास भी एक है। यह व्यक्ति को धूप, वर्षा आदि से बचाता है। अच्छे आवास से तात्पर्य गृह-जीवन, प्रसन्नता, स्वास्थ्य, एकांत के क्षण भावनात्मक सुरक्षा आदि उपलब्ध कराना है। दूसरी ओर इसके द्वारा सामाजिक उत्सव आदि भी सम्पन्न किये जाते हैं। यह न केवल मौसम से सुरक्षा, भोजन बनाने और सोने के लिए स्थान देता है, बल्कि जटिल सामाजिक रीति-रिवाजों का सामाजिक केन्द्र भी है।"[1]

व्यक्ति किसी भी कार्य को सुचारू रूप से तभी कर सकता है जब उसके अन्दर कार्य करने की अच्छी क्षमता हो। यह कार्य-क्षमता कमोवेश रूप में व्यक्ति के रहन-सहन के स्तर पर निर्भर करती है। इस रहन-सहन के स्तर के अन्तर्गत आवास का अपना महत्व है। इस प्रकार आवास और स्वास्थ्य एक दूसरे से अन्तःसम्बन्धित हैं और ये दोनों ही व्यक्ति की कार्य क्षमता में वृद्धि करते हैं।

अध्ययन के अन्तर्गत डाकियों को विभाग से मिलने वाली आवासीय सुविधाओं के विषय में जानकारी करने पर ज्ञात हुआ कि पहले तो इसका कहीं पर कोई प्रबन्ध नहीं था लेकिन अभी हाल ही में शहर में विभाग की ओर से

---

1. The Environmental Hygeine Commitee Report 1949, Quoted in S.C. Agrawala, Industrial Housing in India, P. 298, Roxy Press, New Delhi, 1952

इनके लिए 9 क्वार्टर्स बनवाये गये हैं और उन्हें डाकियों को आवंटित भी किया जा चुका है जो यहाँ के मुख्य व्यावसायिक केन्द्र गोलघर में स्थित है। इन क्वार्टर्स में सभी प्रकार की सुविधाओं जैसे पानी, बिजली, प्रकाश, हवा आदि का प्रबन्ध है। परन्तु यह शहर के डाकियों की संख्या को देखते हुए बहुत कम है। इसके अतिरिक्त अन्य सभी डाकियों ने अपने आवास की व्यवस्था स्वयं की है। इसके लिए उन्हें विभाग की तरफ से मकान का किराया भत्ता मिलता है।

प्रोन्नति

प्रोन्नति का तात्पर्य एक अच्छे वेतनमान अथवा प्रस्थिति में वृद्धि से है। प्रोन्नति की सुनिश्चित और सुनियोजित व्यवस्था कर्मचारियों को संतुष्ट करने का प्रभावशाली तरीका है। प्रोन्नति के अभाव में कर्मचारी हतोत्साहित होता है और उसकी कार्य-क्षमता घट जाती है। डाकियों के प्रोन्नति का नियम सेवाकाल में उन्हें दो समयबद्ध प्रोन्नति दी जाती है।

1. 16 वर्ष का सेवाकाल पूरा करने पर।
2. 26 वर्ष का सेवाकाल पूरा करने पर।

इसके विपरीत प्रोन्नति वाला पद रिक्त होता है तो वरीयता के आधार पर उनकी नियुक्ति उस पद के लिए हो जाती है।

16 वर्ष व 26 वर्ष का सेवाकाल पूरा होने के पश्चात् भी यदि प्रोन्नति का स्थान रिक्त नहीं है तो इस पद पर कार्यरत रहते हुए भी उनको वह वेतनमान दे दिया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रतियोगितात्मक परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर उनकी नियुक्ति डाक-सहायक के पद पर हो जाती है।

हॉलीडे होम्स

डाक विभाग के समस्त कर्मचारियों के लिए शिमला, नैनीताल, तिरूपति, माउण्टआबू आदि स्थानों पर हॉलीडे होम्स की स्थापना की गई है। इन केन्द्रों पर थोड़े से ही खर्च वहन करने पर उन्हें रहने की सुविधा प्राप्त है। इन गृहों में डाक विभाग के कर्मचारी अपनी छुट्टियाँ व्यतीत कर सकते हैं। गृह के अन्तर्गत अलग-अलग इकाइयों की अपनी व्यवस्थ में शयन कक्ष, बिस्तर स्टोर रूम, शौचालय, रसोईघर आदि हैं। इन कर्मचारियों के लिए हॉलीडे होम्स में आउट डोर और इन डोर गेम्स की भी व्यवस्था है।

अनुसंधान क्षेत्र में जाने पर पता चला कि एक भी डाकिया आज तक वहाँ नहीं जा पाया। पूछने पर डाकियों ने बताया कि वहाँ न पहुँचने का कारण उन्हें इसकी जानकारी न होना है। इसके विषय में उनको अनुसंधानकर्ता द्वारा जानकारी देने तथा भविष्य में इसके सदुपयोग के विषय में पूछे जाने पर उन्होंने बताया कि किसी प्रकार से वे लोग अपने मासिक वेतन से दैनिक आवश्यकतायें ही पूरी कर पाते हैं। इनमें से कई उत्तरदाता ऋणग्रस्त हैं इसलिए इन हॉलीडे होम्स का सदुपयोग कर पाना उनके लिए सम्भव नहीं है।

एल0 टी0 सी0

डाक विभाग अपने कर्मचारियों को चार वर्ष में एक बार अवकाश के दौरान कार्य स्थल से देश के किसी भी कोने में जाने के लिए सुविधा प्रदान करता है। यह सुविधा कर्मचारी तथा उसके परिवार के आश्रितों को उपलब्ध है। कर्मचारी को यह सुविधा तभी मिलती है जब वह अर्जित अवकाश पर हो। इसके अन्तर्गत विभाग कार्यस्थल से जहाँ तक वह जाता है उसे तथा उसके परिवार के आश्रितों को आने-जाने की सुविधा देता है। पूरा किराया विभाग वहन करता है। आने-जाने के किराये का तीन-चौथाई (3/4) भाग कर्मचारी को यात्रा प्रारम्भ करने से पूर्व दे दिया जाता है तथा एक-चौथाई (1/4) भाग यात्रा से लौटने के बाद उसे बिल बनाकर प्राप्त करना होता है।

डाकियों से पूछने पर उन्होंने बताया कि वे इसका पूर्ण सदुपयोग करते हैं कई डाकियों ने बताया कि वे छुट्टियों में भारत के अन्तिम छोर कन्याकुमारी तक की यात्रा कर चुके हैं।

डाक-विभाग कर्मचारियों को दी जाने वाली अग्रिम धनराशि

डाक-विभाग द्वारा अपने कर्मचारियों को कर्ज के भार से मुक्त करने तथा अन्य सुविधायें प्रदान करने हेतु धनराशि की व्यवस्था की गई है। ये अग्रिम धनराशियाँ इस प्रकार हैं--

1. **प्राकृतिक विपत्तियों के लिए-** प्राकृतिक आपदायें जैसे-- बाढ़, सूखा, भूचाल तूफान में कर्मचारियों को ब्याज, मुक्त अग्रिम धनराशि दी जाती है। ये प्राकृतिक आपदायें लोगों के फसलों, मकान, चल-अचल सम्पत्ति आदि को नुकसान पहुँचाती हैं। यह अग्रिम धनराशि उन कर्मचारियों को दी जाती है जिसकी उपर्युक्त सम्पत्ति को आंशिक या पूर्ण रूप से क्षति पहुँची होती है। यह धनराशि कर्मचारियों को अधिक से अधिक 24 मासिक किस्तों में विभाग को वापस कर देना होता है। डाक-विभाग ने कई बार बाढ़ के लिए धनराशि तथा एक बार सूखा के लिए अग्रिम धनराशि यहाँ के कर्मचारियों को दिया है जिससे यहाँ सभी डाकियों ने लाभ उठाया।
2. **त्यौहारों के लिए अग्रिम-** होली, पोंगल, दुर्गापूजा, दीपावली, ईदुलफितर, क्रिसमस आदि भारत के प्रमुख त्यौहार हैं। इन त्यौहारों को मनाने के लिए रुपये की आवश्यकता होती है भारत में चूँकि प्रति व्यक्ति आय कम है इसलिए यहाँ आर्थिक दृष्टिकोण से त्यौहारों को मनाना थोड़ा मुश्किल होता है। अपने कर्मचारियों को इन त्यौहारों पर आर्थिक मदद देने के लिए डाक-विभाग द्वारा कर्मचारी को उसके धर्मानुसार त्यौहार के अवसर पर प्रतिवर्ष 488/- अग्रिम धनराशि दी जाती है।
3. **पुराने ऋणों को चुकान के लिए अग्रिम धनराशि-** डाक-विभाग द्वारा उन ऋणों को चुकाने के लिए भी अग्रिम राशि दी जाती है जिसे कर्मचारी ने मकान-निर्माण के उद्देश्य से सरकार से लिया है। यह उन्हीं कर्मचारियों को

दिया जाता है जिन्होंने निरन्तर 10 वर्ष का सेवा काल पूरा कर लिया हैं। इसकी राशि 50,000 रुपये अथवा मासिक वेतन का 75 गुना है इनमें से जो कम हो।

मूलधन को 180 मासिक किस्तों में वापस ले लिया जाता है तथा ब्याज की रकम 60 मासिक किस्तों में ली जाती है।

4. **सायकिल के लिए अग्रिम राशि**- डाक-विभाग द्वारा अपने कर्मचारियों के लिए 500/- सायकिल के लिए अग्रिम राशि दी जाती है और इसे 25 किस्तों में वापस लिया जाता है। इसे सभी डाकियों ने लिया है।
5. **गृह-निर्माण अग्रिम धनराशि**- कर्मचारियों को अपने निजी मकान की सुविधा देने के लिए अग्रिम धनराशि देने की व्यवस्था है। यह धनराशि अपने रहने के लिए बनाने वाले मकान अथवा मकान-निर्माण के लिए जमीन खरीदने के लिए दिया जाता है।
6. **भविष्य निधि से अग्रिम राशि**- कुछ विशेष कार्यों के लिए जैसे विवाह, बच्चों की उच्च-शिक्षा, बीमारी इत्यादि के लिए कर्मचारियों के लिए अपने भविष्य निधि खाते से अग्रिम राशि देने की व्यवस्था की गई है। यह अग्रिम राशि उनके तीन माह के वेतन के बराबर या जितना उसके भविष्य निधि में जमा है उसकी आधी रकम जो कम हो, के बराबर दी जा सकती है। इसका भुगतान 24 बराबर-बराबर मासिक किस्तों में करना होता है। जिस महीने में एडवांस लिया जाता है उसके बाद के दूसरे माह से किश्तों की कटौती प्रारम्भ हो जाती है।

अन्य कार्य के लिये अग्रिम वेतन लेने की अन्य सुविधा

(क) स्थानान्तरण के समय कर्मचारी को एक स्थान से दूसरे स्थान जाने के लिए कुछ विशेष पैसों की आवश्यकता होती है। पुरानी जगह के व्यय से मुक्ति पाने के लिए नये स्थान जाकर अपनी पूर्ण व्यवस्था को दृष्टि में रखते हुए विभाग द्वारा कर्मचारियों को एक माह के वेतन के बराबर-रुपये प्रदान किये जाते हैं।

(ख) प्रशिक्षण के लिए कर्मचारी जब विभाग में प्रशिक्षण के लिए अपने कार्य-स्थल से जाता है तो एक माह के वेतन के बराबर उसे अग्रिम धनराशि दी जाती है। इसकी कटौती भी 3 माह में कर ली जाती है। यदि कर्मचारी 30 दिन से अधिक अर्जित अवकाश पर जाता है तो उसे जाने से पूर्व एक माह के बराबर अग्रिम धनराशि देने का प्रावधान है।

यू0 पी0 पोस्टल प्राइमरी कर्मचारी बैंक

कर्मचारियों को बाहरी कर्जदारों से बचाने के लिए कोआपरेटिव बैंक की स्थापनाहुई है जिसके द्वारा कर्मचारी ब्याज पर रकम प्राप्त कर सकते हैं।

डाक कर्मचारी कल्याण कोष

डाक-विभाग द्वारा अपने कर्मचारियों की सुख-सुविधा एवं हितों के लिए डाक-कर्मचारी कल्याण कोष की स्थापना की गई है। गोरखपुर मण्डल उत्तर-प्रदेश

डाक-कर्मचारी-कल्याण बोर्ड के अन्तर्गत आता है इसके माध्यम से विभाग अपने कर्मचारियों को विभिन्न परिस्थितियों में कल्याण कोष से सहायता प्रदान करता है।

डाक-कर्मचारी कल्याण कोष से सहायता प्राप्त करने की पात्रता

ऐसे विभागीय कर्मचारियों को, जिनका मासिक (मूल) वेतन रुपया 1200/- (पुराने वेतनमान में) से कम हो, कल्याण कोष से आर्थिक सहायता प्रदान की जा सकती है। साथ ही कुछ मामलों में विभागीय तथा आकस्मिक मंजूदरों को भी कल्याण कोष से आर्थिक सहायता प्रदान की जा सकती है।

कल्याण कोष से वित्तीय सहायता

वैसे तो डाक कर्मचारी को कल्याण कोष से कई रूपों में सहायता प्रदान की जाती है परन्तु उनमें से विभागीय कर्मचारियों के बच्चों को छात्रवृत्ति, कर्मचारियों के निधन पर उनके विध्वा/आश्रितों को आर्थिक सहायता का प्राविधान नहीं है उनमें (विपत्ति पड़ने पर) आर्थिक सहायता पहुँचाना आदि है। मुख्य रूप से निम्नलिखित मामलों में आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है--

1. **मृत कर्मचारी की विधवा/आश्रित को सहायता**- ऐसे विभागीय कर्मचारी की विधवा/आश्रितों को जिसका मासिक मूल वेतन (पुराने वेतनमान में) रुपया 1200/- या कम हो वर्तमान में रुपया 2000/- तथा अतिरिक्त विभागीय कर्मचारी के मामले में रुपया 1000/- की आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है। यदि कर्मचारी की मृत्यु ड्यूटी के दौरान होती है तो विभागीय कर्मचारी की विधवा/आश्रित को क्रमशः रुपया 4000/- व रुपया 2000/- अतिरिक्त आर्थिक सहायता दी जाती है।
2. **लम्बी बीमारी/गहन शल्य चिकित्सा के मामले**- लम्बी बीमारी के कारण बिना वेतन अवकाश पर होने की स्थिति में मूल वेतन तथा मँहगाई वेतन का 3/4 अथवा रुपया 500/- प्रतिमाह, इनमें जो कम हो कल्याण कोष से दिया जा सकता है तथा अर्धवेतन अवकाश पर जाने के मामले में मूल वेतन तथा मँहगाई वेतन का 1/2 (आधा) अथवा रुपया 300/- प्रतिमाह इनमें जो कम हो दी जाती है।

इसके लिए आवश्यक है बिना वेतन/अर्धवेतन अवकाश पर 30 दिन से कम न रहा हो। ऐसे मामलों में अधिकतम 36 माह तक सर्किल वेलफेयर फण्ड से आर्थिक सहायता 6-6 माह का नवीनीकरण करके दी जा सकती है। उससे ज्यादा अवधि वाले मामले निदेशालय के पास निर्णयार्थ भेजे जाते हैं। गहन शल्य चिकित्सा के मामलों, गम्भीर बीमारियों तथा कैंसर, गुर्दे तथा दिल की बीमारियों की स्थिति में कल्याण कोष से आर्थिक सहायता दिये जाने हेतु विचार किया जाता है।

1. पत्रिक-डाक संलाप (उत्तर-प्रदेश डाक परिमण्डल की पत्रिका)

3. **कल्याण कोष से छात्रवृत्ति**– विभागीय कर्मचारियों के बच्चों को तकनीकी व गैर तकनीकी शिक्षार्थ निम्नलिखित दरों पर छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है––

(क) गैर तकनीकी कक्षा 12 (इण्टर फाइनल) से स्नातक कक्षाओं तक रु0 60 प्रति माह।

(ख) तकनीकी (1) डिप्लोमा कोर्स रु0 75/– प्रतिमाह
(2) डिग्री कोर्स रु0 125/– प्रतिमाह (3) आई0 आई0 टी0 रु0 175/प्रतिमाह

(ग)ऐसे मेधावी छात्रों को जो कक्षा 7 से 8 तक की कक्षाओं मे अध्ययनरत हैं और अपनी पूर्ववर्ती कक्षा में 75: (65: अनुसूचित जाति के बच्चे) अंक प्राप्त करते हैं, उन्हें विशेष योग्यता पुरस्कार रु0 200/– प्रति वर्ष की दर से पुस्तकीय सहायता देकर मदद की जाती है।

डाकियों का संगठन

आज के समाज में श्रमिक संगठनों का अत्यधिक महत्व है। इसका उद्देश्य श्रमिकों के हितों की रक्षा करना है। श्रमिक संघवाद का विकास आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था के परिणाम स्वरूप ही हुआ है। श्रमिक संघ के उद्गम के विषय में सिडने और बैट्रिस वैब का कहना है कि एक श्रमिक मजदूरी प्राप्त करने वालों का एक समुदाय है जिसका उद्देश्य उनकी कार्मिक जीवन की स्थितियों को सुधारना तथा कायम रखना है। उनके मतानुसार प्रजातांत्रिक समाज में एक ऐसे श्रमिक–संगठन की अत्यन्त आवश्यकता है जिसके द्वारा श्रमिक अपने रोजगार की स्थितियों को नियन्त्रित करने में कुछ योग दे सकें। इस प्रकार से श्रमिक संघों के विकास को पूँजीवादी व्यवस्था की एक घटना मात्र नहीं कहा जा सकता है बल्कि प्रजातांत्रिक राज्य में उनका स्थायी महत्व है।

विद्वानों द्वारा श्रमिक–संगठन के विषय में दी गई अनेक परिभाषाओं से निष्कर्ष निकलता है कि संगठन मनुष्यों का वह योग है जो सामूहिक रूप से मिलकर अपने हित के लिए कार्य करते हैं।

भारत के समस्त तृतीय व चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी श्रम कानून के अन्तर्गत आते हैं। इसलिए श्रमिकों का नेतृत्व करने वाली संस्थायें तृतीय श्रेणी/चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों की आवश्यक माँगों को उद्योगपतियों/सरकार प्रबन्धक/अधिकारियों आदि के सम्मुख रखती है और उनकी उचित माँगों को पूरा करने में भूमिका अदा करती हैं।

डाक–विभाग के अन्तर्गत डाकियों ने भी अपना संगठन बना रखा है। इसके द्वारा डाकिये कठिनाइयों माँगों समस्याओं आदि को अधिकारियों तथा सरकार तक पहुँचाते हैं।

डाक–विभाग में सभी कर्मचारी संघों की सदस्यता शुल्क 2/– प्रतिमाह है। इस प्रकार मासिक चन्दे से यूनियन के लिए पर्याप्त धनराशि नहीं मिल पाती है।

भारतवर्ष में डाक-विभाग के अन्तर्गत निम्नांकित डाक कर्मचारी संघों को मान्यता प्रदान की गई है।

1. अखिल भारतीय डाक कर्मचारी संघ।
2. राष्ट्रीय डाक कर्मचारी संघ।
3. भारतीय मजदूर महा संघ।

डाकियों से कर्मचारी संघ की सदस्यता के सम्बन्ध में विचार ज्ञात किये गये। कुल 180 डाकियों में से (87.22%) डाकियों ने किसी न किसी डाक-कर्मचारी संघ की सदस्यता को ग्रहण किया है और 18 ने अभी भी किसी संघ का सदस्य बनना स्वीकार नहीं किया है। इन लोगों द्वारा सदस्यता स्वीकार करने व न करने दोनों विषय में कुछ कारण दिये गये।

प्रस्तुत है डाकियों का संघों की सदस्यता ग्रहण करने की स्थिति

तालिका संख्या-46

डाकियों का कर्मचारी संघ की सदस्यता ग्रहण करने की स्थिति

क्र.सं.	कर्मचारी संघ	सदस्य संख्या	प्रतिशत
1.	अखिल भारतीय डाक कर्मचारी संघ	71	39.44
2.	राष्ट्रीय डाक कर्मचारी संघ	59	32.78
3.	भारतीय मजूदर महासंघ	27	15.00
4.	किसी भी संघ का नहीं	23	12.78
योग		180	100.00

कुल 180 डाकियों में से 157 ही किसी न किसी संघ के सदस्य हैं। जिनमें से 39.44 अखिल भारतीय डाक कर्मचारी संघ के, 32.78 ने राष्ट्रीय डाक कर्मचारी संघ तथा 15% ने इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन संघ की सदस्यता ग्रहण की है जबकि 12.78% डाकिये किसी भी संघ के सदस्य नहीं है।

तालिका. संख्या-47

संघ की सदस्यता स्वीकार करने के कारण

क्र.सं.	कारक	डाकियों की संख्या	प्रतिशत
1.	अपनी समस्याओं को सुलझाने में मदद के लिए	101	64.33
2.	मित्रों अथवा समबन्धियों द्वारा सुझाव दिये जाने के कारण	16	10.19
3.	क्योंकि यह कर्मचारियों का अपना एक संगठन है	40	25.48
योग		157	100%

1. History of Trade Unianism by Sidney and Beatrice Webb.

डाकियों से जब पूछा गया कि उन्होंने सदस्यता क्या अपनी इच्छा से ग्रहण की है अथवा किसी दबाव में पड़कर, उनमें से 64.33% ने बताया कि उन्होंने इसलिए सदस्यता ग्रहण की है क्योंकि इससे उन्हें अपनी निलम्बन जैसी समस्याओं को सुलझाने में मदद मिलती है। इसकी सदस्यता 10.19% डाकियों ने मित्रों और सम्बन्धियों के सुझाव देने के कारण ग्रहण किया है जबकि 25.48% डाकियों ने महज इसलिए इसकी सदस्यता को स्वीकार किया है क्योंकि यह कर्मचारियों का अपना संगठन है इसलिए प्रतिमाह आय से चन्दे के रूप में रुपये देना ये सभी अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

सदस्यता स्वीकार नहीं करने के कारण के विषय में प्रश्न पूछे जाने पर उन्होंने जो उत्तर दिया वह इस तालिका से स्पष्ट है--

उत्तरदाताओं का संघों की सदस्यता स्वीकार न करने का कारण

तालिका संख्या–48

क्र.सं.	संघों की सदस्यता स्वीकार न करने का कारण	डाकियों की संख्या	प्रतिशत
1.	यह डाकियों की समस्याओं को सुलझाने में सहायक नहीं है।	20	86.96
2.	ये पहले स्वयं समस्यायें पैदा करते हैं, फिर उसे सुलझाने का प्रयत्न करते हैं।	03	13.04
योग		23	100.00

तालिका से स्पष्ट है कि जिन 23 डाकियों ने संघ की सदस्यता अस्वीकार की है उनमें से 20 (86.96 प्रतिशत) का कहना है कि यह कर्मचारियों की समस्यायें सुलझाने में सहायक नहीं है जबकि 3 (13.04 प्रतिशत) ने बताया कि उनके संघ पहले स्वयं समस्यायें पैदा करते हैं फिर उसे सुलझाने का प्रयत्न करते हैं, इसीलिए इन लोगों ने ग्रहण नहीं किया है।

उत्तरदाताओं से यह पूछने पर कि उनके अनुसार संघों की संख्या क्या होनी चाहिए, क्या एक ही संघ पर्याप्त है अथवा इससे अधिक भी होना चाहिये, इस सम्बन्ध में उनके विचार निम्नांकित तालिका में स्पष्ट है--

तालिका संख्या-49

क्र.सं.	कर्मचारियों के कल्याणार्थ संघों की संख्या	डाकियों की सं0	प्रतिशत
1.	एक संघ	70	38.88
2.	दो संघ	33	18.33
3.	दो से अधिक संघ	27	15
4.	किसी भी प्रकार के संघ की आवश्यकता नहीं है	50	27.79
योग		180	100 प्रतिशत

180 डाकियों में से 70 (38.88 प्रतिशत) एक संघ के पक्ष में हैं। उनका कहना है कि इससे कर्मचारियों के बीच वैमनस्य नहीं रहेगा और वे लाभान्वित होंगे, 18.33 प्रतिशत दो श्रमिक संघ के पक्ष में हैं। उनके अनुसार दो संघ होने से एकाधिकार की प्रवृत्ति नहीं रहेगी, 15 प्रतिशत ने दो से अधिक श्रमिक संघ के पक्ष में विचार व्यक्त किया है। इनके अनुसार अधिक संघों के रहने पर ही प्रशासन पर प्रोन्नति व कर्मचारियों के कल्याण के लिए दबाव डाला जा सकता है जब कि 27.78 प्रतिशत ने किसी भी संघ की आवश्यकता से इन्कार किया है इन्होंने संघ के कार्यों से असन्तोष व्यक्त किया। यह उनके अनुसार खर्चीली है इन्हें हमेशा पैसे देने पड़ते हैं।

इससे निष्कर्ष निकलता है कि संघ के क्रिया-कलापों में भाग लेने में डाकियों की कोई विशेष रुचि नहीं है, भले ही उन्होंने किसी कारणवश इसकी सदस्यता स्वीकार कर ली है परन्तु वे इसके प्रति जागरूक नहीं हैं। अध्ययन से ज्ञात हुआ कि जब किसी यूनियन की मीटिंग होती है तो कुल संख्या का एक चौथाई डाकिये ही मीटिंग में उपस्थित रहते हैं। उनमें बहुधा शहर के निवासी डाकिये हैं शेष डाकिये अपने कार्य के घण्टों के पश्चात घर पर चले जाते हैं। रामास्वामी ने कहा है कि "अधिक सदस्यता का यह तात्पर्य नहीं है कि सभी सदस्य संघ के क्रिया-कलापों में भाग लेते ही हैं।"

❑❑

1. E.A. Ramaswamy, The Worker and his Union, P. 52

: 7 :

निष्कर्ष

संचार साधन अन्तर्राष्ट्रीय एकता, विश्वबन्धुत्व, सामीप्य तथा सामुदायिक सद्भावना के सबसे सस्ते व सुलभ साधन हैं। टेलीफोन, टेलीप्रिन्टर, टेलीग्राफ आदि इस सन्दर्भ में प्रचलित सेवाएँ हैं। आज इलेक्ट्रानिक क्रान्ति से फेसीमील और डाटा ट्राँसमिशन जैसी सेवाएँ भी उपलब्ध हो चुकी हैं, लेकिन डाक सेवा जो सबसे पुरानी सेवा है अपनी उपयोगिता में लोक-जीवन को आज भी प्रभावित कर रही है।

आज आधुनिकीकरण की प्रक्रिया तीव्र गति से चल रही है। संचार साधनों के अन्तर्गत डाक-सेवा भी आधुनिकीकरण का एक तरीका है। आज डाक-सेवा ने व्यक्ति से समय व दूसरी को कम किया है। इससे गाँवों का आधुनिकीकरण हुआ है। हमारे अध्ययन से यह स्पष्ट है कि भारतवर्ष जो आधुनिकता की ओर अग्रसर हुआ है उसे आधुनिक बनाने में डाक-व्यवस्था ने अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। दूरस्थ स्थलों तक यह सेवा उपलब्ध है। यह समाज के प्रत्येक धनी-निर्धन एवं विभिन्न सम्प्रदाय के बीच मधुर सम्बन्ध स्थापित कर सेवा की ओर उन्मुख होता हुआ पारस्परिक सद्भावना का जागरण सन्देश प्रसारित करता है। डाक-सेवा निश्चय ही सुसंस्कृत, विभिन्न विचारों के माध्यम एवं साहित्य -सृजन में भी सहायक सिद्ध हुआ है। यदि साहित्य समाज का दर्पण है तो निःसन्देह डाक-सेवा विभिन्न स्थलों पर विद्यमान मानव का प्रेरणा स्रोत है। एक सामान्य पत्र भी दूरस्थ स्थलों तक सुरक्षित पहुँच कर प्रापक को वितरित हो जाना डाक-सेवा द्वारा सम्पादित महान कृत्य है। यह समाज को गतिशील बनाने के लिये एक सुव्यवस्था है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में संचार सुविधा हेतु अनेक डाकघर खोले गये हैं। डाक सेवा का मुख्य लक्ष्य डाक को अधिकतम गति से सुरक्षा पूर्वक समयानुसार पहुँचाना तथा वितरित करना है वितरित करने का दायित्व डाकिये को सौंपा गया है।

डाकिया डाक सेवा का सबसे महत्वपूर्ण अभिकरण है। डाक विभाग के अन्तर्गत डाक-वितरण का कार्य करने वाले दो प्रकार के व्यक्ति हैं। प्रथम विभागीय डाकिये तथा द्वितीय अतिरिक्त विभागीय वितरण-अभिकर्ता। अतिरिक्त विभागीय वितरण-अभिकर्ता विभाग के कर्मचारी न होकर एजेण्ट हैं। इनके कार्य की दशाएँ विभागीय डाकियों से भिन्न हैं। अविभागीय होने के कारण इन्हें विभाग की ओर से कोई भी सुविधा नहीं मिलती है, इन्हें वेतनमान भी नहीं प्राप्त

होता, मात्र फिक्स्ड-एलाउन्स ही दिये जाते हैं। अत: अविभागीय होने के कारण इन्हें प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अन्तर्गत सम्मिलित नहीं किया गया है।

इस प्रकार प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पूर्ण रूप से विभागीय डाकियों के अध्ययन पर ही आधारित है।

डाकिये की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अवलोकन करने से यह ज्ञात हुआ कि सन्देश पहुँचाने तथा सन्देश लाने का कार्य प्राचीन काल से ही होता आ रहा है।

आज के इस व्यवस्तता भरे जीवन में प्रत्येक व्यक्ति को अपने दूर-दराज के रिश्तेदारों, मित्रों, शुभचिन्तकों, का समाचार ज्ञात करने की उत्सुकता बनी रहती है। डाक-विभाग के अन्तर्गत डाकिया ही एक ऐसा महत्वपूर्ण अभिकरण है जो व्यक्ति की इन आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। डाकिये द्वारा सही समय पर व सही स्थान पर डाक पहुँचाने से समूचे डाक-विभाग को लोकप्रियता प्राप्त होती है।

कन्धे पर डाक का थैला लटकाये डाकिये को देखते ही प्रत्येक व्यक्ति प्रसन्न हो उठता है और पूछ बैठता है कि ''कोई पत्र है क्या'' उसको इस जिज्ञासा का मुस्कराते हुए 'हाँ' या 'नाँ' में उत्तर देने मात्र से ही डाकिया अपने क्षेत्र में लोक प्रिय हो जाता है।

जहाँ तक डाक-व्यवस्था के अन्तर्गत उसके महत्व एवं उपयोगिता की बात है, ये विभाग के अत्यन्त उपयोगी कर्मचारी हैं। कार्य की दृष्टि से उसका स्थान डाक-विभाग के अन्य कर्मचारियों की तुलना में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। सबेरे से शाम तक डाकिया पत्र, पैकेट, मनीआर्डर, बीमा एवं अन्य प्रकार के लिखित सन्देश घर-घर पहुँचाता है।

इस प्रकार विभिन्न दृष्टिकोणों से अवलोकन करने पर पता चलता है कि डाकिया एक सरकारी कर्मचारी होते हुए भी मानव समाज का सेवक है जो ''अहर्निशं सेवामहें'' अर्थात् दिन-रात सेवा करते रहने की भावना लिये हुये अपने कर्त्तव्य पर डटा हुआ है और जनता में विभाग की छवि को निखार रहा है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अन्तर्गत समस्त गोरखपुर प्रखण्ड व इसके अन्तर्गत उपप्रखण्डों में कार्यरत कुल 180 डाकियों की सामाजिक व आर्थिक स्थिति का अध्ययन किया गया। अध्ययन जीवन के विभिन्न पक्षों-आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आधुनिक व्यवहार प्रतिमानों, मूल्यों अभिवृत्तियों, सामाजिक व्यवसायिक गतिशीलता, अन्य विभागों में इन्हीं के समकक्ष कार्यरत कर्मियों की तुलना में इनका स्थान आदि को देखने का एक प्रयास है।

प्रस्तुत शोध प्रतिवेदन का प्रारम्भ डाक-विभाग के ऐतिहासिक पुनरावलोकन से किया गया है। इसके अन्तर्गत विभिन्न युगों में प्रचलित डाक व्यवस्था को स्पष्ट किया गया है।

अध्ययन के अन्तर्गत वस्तुनिष्ठ परिणाम तक पहुँचने के लिये अन्वेषणात्मक

तथा वर्णनात्मक शोध अभिकल्पों को निर्मित किया गया है। अध्ययन प्राथमिक तथा द्वैतीयक तथ्यों पर आधारित था, इस हेतु निर्मित साक्षात्कार अनुसूची की सहायता से प्राप्त प्रत्युत्तरों से अध्ययन के विविध पक्षों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त हुए। चूँकि अध्ययन की इकाइयाँ छोटी थी, अत: जनगणना पद्धति का प्रयोग किया गया है। अध्ययन निष्कर्षों को अर्थपूर्ण बनाने व क्रमबद्ध रूप से प्रदान करने हेतु उन्हें निम्नलिखित क्रम में प्रस्तुत किया गया है--

1. डाक-विभाग एक ऐतिहासिक पुनरावलोकन।
2. डाकियों की सामाजिक पृष्ठभूमि।
3. डाकियों की आर्थिक पृष्ठभूमि-आय, जीवन स्तर तथा जीवन शैली।
4. डाकियों के परिवार का स्वरूप।
5. डाकियों के कार्य की दशाएँ।

अध्ययन सम्बन्धी तथ्यों का क्रमबद्ध वर्गीकरण व विश्लेषण उपर्युक्त अध्यायों में प्रस्तुत किया गया है। इस अन्तिम अध्याय में अध्ययन सारांश को प्रस्तुत किया है जिसके आधार पर कुछ निश्चित निष्कर्ष निकालने के साथ ही भविष्य के अनुसंधान की दिशा को इंगित करने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन गोरखपुर प्रखण्ड व इसके अन्तर्गत उपप्रखण्डों में स्थित डाकियों की सामाजिक स्थिति का एक अध्ययन है। अध्ययन से सम्बन्धित समस्त 180 डाकियों से सम्पर्क कर अध्ययन से सम्बन्धित गुणात्मक व गणनात्मक तथ्यों का संकलन किया है।

प्रस्तुत अध्ययन समस्त गोरखपुर प्रखण्ड व उपप्रखण्डों के डाकियों के साक्षात्कार पर आधारित है।

अध्ययन के लिये चुने गये उत्तरदाता अलग-अलग सामाजिक पृष्ठभूमि के हैं। वे विभिन्न आयु, समूह परिवार जाति, धर्म, आदि के हैं। इनके विभिन्न अध्ययन किया गया। अध्ययन के अन्तर्गत कुल 180 उत्तरदाताओं में 18 से 58 वर्ष आयु-समूह के उत्तरदाता हैं जिनमें 18-28 वर्ष आयु समूह के 8.89 प्रतिशत 29-38 वर्ष आयु समूह के 14.44 प्रतिशत 39-48 तक 47.78 प्रतिशत तथा 49-58 वर्ष तक के 28.89 प्रतिशत उत्तरदाता हैं।

इस प्रकार 39-48 वर्ष आयु समूह के उत्तरदाताओं की संख्या सर्वाधिक तथा 18.28 वर्ष तक के उत्तरदाताओं की संख्या सबसे कम है।

उत्तरदाताओं में 96.11 प्रतिशत उत्तरदाता हिन्दी भाषा बोलते हैं तथा शेष 3.89 प्रतिशत हिन्दी भाषा के अतिरिक्त उर्दू भाषा का अच्छा ज्ञान रखते हैं।

92.78 प्रतिशत उत्तरदाता ग्रामीण पृष्ठभूमि के हैं तथा 7.22 प्रतिशत उत्तरदाता नगरीय पृष्ठभूमि के हैं।

अध्ययन के अन्तर्गत अधिकांश उत्तरदाता जूनियर हाई स्कूल कक्षा उत्तीर्ण हैं, लेकिन अब उनमें स्नातकोत्तर स्तर तक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति आ रहे हैं। इससे

इतना अवश्य होगा कि ऐसी शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के सोचने व कार्य करने का ढँग अपेक्षाकृत बेहतर होगा।

चूँकि शिक्षा को व्यक्ति की दशा में सुधार के रूप में मान्यता दी जाती है अत: शिक्षा के प्रति उत्तरदाताओं की अभिरूचियों का विश्लेषण करना भी स्वाभाविक रूप से महत्वपूर्ण था। अध्ययन में अधिकांश डाकियों ने अपने बच्चों की शिक्षा के प्रति जागरूकता प्रदर्शित की है। यद्यपि लड़के व लड़की दोनों की शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया गया है परन्तु लड़कों की शिक्षा के प्रति किंचित अधिक महत्व दिया गया है। उन्होंने लड़कियों की शिक्षा के प्रति उदासीनता प्रकट की है। लड़कों के लिये तकनीकी व व्यावसायिक ज्ञान-प्राप्ति को प्राथमिकता दी गई है, जबकि लड़कियों के सन्दर्भ में सामान्यत: स्नातकोत्तर तक की ही शिक्षा को पर्याप्त माना गया है, इसमें भी मात्र 27.8 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने ही उच्च शिक्षा देने की इच्छा प्रकट की है।

शैक्षिक ज्ञान के सम्बन्ध में प्राय: लड़कियों के लिये ऐसे पाठ्यक्रम को महत्वपूर्ण माना जाता रहा है जो उनके घरेलू जीवन में सहायक सिद्ध हो सके। प्रस्तुत अध्ययन में भी यह तथ्य स्पष्ट हुआ है। इसी संदर्भ में उत्तरदाताओं का अपनी लड़कियों को सहशिक्षा देने के सम्बन्ध में अभिवृत्तियों को ज्ञात करने पर पता चला कि अधिकांश डाकिये बेसिक स्तर तक ही लड़कियों को सहशिक्षा देना पसन्द करते हैं। इससे उनकी रूढ़िवादी मनोवृत्ति स्पष्ट होती है।

अध्ययन के अन्तर्गत जहाँ तक बच्चों के स्कूल/कालेज जाने के साधनों का प्रश्न है, पाया गया कि अधिकांश डाकियों के बच्चे (61.11 प्रतिशत) पैदल ही स्कूल/कालेज जाते हैं। छोटे बच्चे व लड़कियों को ही कुछ उत्तरदाता साईकिल/रिक्शे से भेज पा रहे हैं।

अध्ययन के अन्तर्गत उत्तरदाताओं से उनके बच्चों की शिक्षा का उद्देश्य ज्ञात करने पर पाया गया कि (56.11 प्रतिशत) अपने बच्चों को किसी न किसी व्यवसाय में लगाने के लिये ही शिक्षित कर रहे हैं, 30.56 प्रतिशत उत्तरदाता उन्हें भविष्य में किसी भी परिस्थिति में तैयार रहने के लिये शिक्षित कर रहे हैं। जबकि शेष 13.33 प्रतिशत उत्तरदाता अपने बच्चों को शिक्षा इसलिये दे रहे हैं ताकि उनका चरित्र निर्माण हो सके।

इसमें 63.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं की पत्नियाँ, अशिक्षित पाई गईं। शेष 36.67 प्रतिशत उत्तरदाताओं की ही पत्नियाँ शिक्षित हैं। इनमें भी अधिकांश अल्पशिक्षित हैं। इससे स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं के पत्नियों की अशिक्षा अथवा अल्पशिक्षा उनके परिवार के रहन-सहन के स्तर पर, उनके सोचने की क्षमता तथा बच्चों के प्रति संस्कार को प्रभावित करेगी।

परिवार नियोजन के सन्दर्भ में उत्तरदाताओं की अभिरूचि के विश्लेषण से स्पष्ट है कि कुल 180 डाकियों में से 61.11 प्रतिशत डाकिये परिवार

नियोजन के पक्ष में नहीं हैं, मात्र 38.89 प्रतिशत डाकिये ही इसके पक्ष में हैं।

इससे स्पष्ट है कि अधिकांश उत्तरदाता अभी भी परिवार-नियोजन के विपक्ष में हैं और वे बच्चों का पैदा होना एक ईश्वरीय देन मानते हैं। यह उत्तरदाताओं में परम्परावादिता को स्पष्ट करता है।

व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण में परिवार का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है। यह एक सार्वभौमिक संस्था है भले ही इसका रूप अलग-अलग समाजों में अलग-अलग रहा हो।

प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत उत्तरदाताओं की पारिवारिक संरचना का अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि कुल 180 उत्तरदाताओं में से 60 प्रतिशत उत्तरदाता एकांकी परिवारों से सम्बद्ध हैं तथा 40 प्रतिशत उत्तरदाता संयुक्त परिवारों से हैं।

अध्ययन में यह पाया गया कि एकांकी परिवारों से सम्बन्ध रखने वाले डाकियों में अधिकांश प्रौढ़ और अधिक उम्र वाले उत्तरदाता हैं, इन लोगों ने संयुक्त परिवारों में कलह से परेशान होकर इसमें रहने का विचार त्यागते हुए अपना अलग परिवार बसा लिया है। वे अपने पत्नी व बच्चों का भरण पोषण कर रहे हैं और सन्तुष्ट हैं।

इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञात हुआ है कि संयुक्त परिवारों में रहने वाले अधिकांश डाकिये कम उम्र के हैं जिसमें से कुछ तो अपने माता-पिता के साथ रह रहे हैं ताकि उनके सहयोग से अपनी अजीविका में कुछ अंश बचा सकें, इसके अतिरिक्त संयुक्त परिवारों में रहने वाले कुछ ऐसे भी डाकिये हैं जिसका परिवार बड़ा है और आय के साधन सीमित हैं, ऐसे डाकिये अपने पूरे परिवार का भरण-पोषण करने के लिये संयुक्त परिवारों में रह रहे हैं। ऐसे डाकियों के परिवारों में छोटे-बड़े सभी सदस्य, आजीविका के लिये कोई न कोई कार्य अवश्य कर रहे हैं। इन लोगों का यह विचार है कि संयुक्त परिवारों में बच्चों का भरण-पोषण अच्छी तरह हो जाता है और सुरक्षा भी अधिक रहती है।

अध्ययन में से 88.89 प्रतिशत उत्तरदाता विवाहित तथा 11.11 प्रतिशत उत्तरदाता विधुर हैं।

ऐसा इसलिये है कि डाक-विभाग में डाकियों की नियुक्ति सीधे न होकर विभागीय प्रतियोगितात्मक परीक्षा द्वारा होती है, अतः उन्हें डाकिये का पद प्राप्त करने में कुछ वर्ष लग जाते हैं जिससे उनकी उम्र अपेक्षाकृत कुछ अधिक हो जाती है, अतः सभी डाकिये विवाहित जीवन में प्रवेश कर चुके होते हैं।

लड़के व लड़कियों के विवाह की आयु के सम्बन्ध में दृष्टिकोण ज्ञात करने पर यह पाया गया कि कुल 180 उत्तरदाताओं में से 3.89 प्रतिशत उत्तरदाता अपने लड़कों का विवाह 18 से 20 वर्ष की आयु में, 52.22 प्रतिशत उत्तरदाता 21-23 वर्ष की आयु में 22.22 प्रतिशत उत्तरदाता 24-26 वर्ष तथा

2.22 प्रतिशत उत्तरदाता अपने लड़कों का विवाह 27 वर्ष अथवा उससे ऊपर की अवस्था में करना चाहते हैं।

अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि अब सवर्णो के अतिरिक्त निम्न जातियों के डाकियों के सोचने की क्षमता में भी परिवर्तन आया है। व्यवसाय में आने के कारण उनके विवाह सम्बन्धी आयु के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है और उनमें अधिकांश अब अपने लड़कों का विवाह वयस्क हो जाने के बाद ही करना चाहते हैं।

लड़कियों के विवाह की आयु के विषय में दृष्टिकोण ज्ञात करने पर पता चला कि 12.78 प्रतिशत उत्तरदाता अभी भी अपनी लड़कियों का विवाह 15 वर्ष से कम की आयु में कर देना चाहते हैं, 18.33 प्रतिशत उत्तरदाता अपनी लड़कियों का विवाह 15 से 17 वर्ष, 14.44 प्रतिशत उत्तरदाता 18 से 20 वर्ष, 20 प्रतिशत उत्तरदाता 21 से 23 वर्ष तथा 1.67 प्रतिशत उत्तरदाता 24 वर्ष से ऊपर की आयु में अपनी लड़कियों का विवाह करना पसन्द करते हैं।

अध्ययन से पता चलता है कि उत्तरदाताओं का लड़कों के विवाह की आयु की भाँति ही लड़कियों के विवाह की आयु के दृष्टिकोण में परिवर्तन आ रहा है। अब वे लड़कियों को शिक्षा के ग्रहण कराने के बाद ही उनका विवाह करना चाहते हैं।

जात्येत्तर वर्ग को सरकार द्वारा प्रोत्साहन, नौकरियों में आरक्षण आदि दिये जाने के कारण इनकी लड़कियाँ भी उच्च शिक्षा ग्रहण कर रही हैं। उच्च शिक्षा समाप्त करने तक इनकी अवस्था 21 वर्ष से ऊपर हो जा रही है।

अतः स्पष्ट है कि अधिकांश उत्तरदाता लड़कियों का विवाह 18 वर्ष से ऊपर की आयु में ही करना चाह रहे हैं।

परम्परात्मक भारतीय समाज की विशेषताओं में जाति व्यवस्था का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इस दृष्टि से जाति का अध्ययन करना आवश्यक है। अध्ययन के अन्तर्गत सभी जाति के उत्तरदाताओं को तीन श्रेणियों में रखा गया है उच्च, मध्यम और निम्न। उच्च जाति के उत्तरदाताओं की संख्या 63 है। इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जाति के उत्तरदाता सम्मिलित हैं। मध्यम जाति के अन्तर्गत उन उत्तरदाताओं को रखा गया है जो अस्पृश्य नहीं हैं, इनकी संख्या 65 है तथा निम्न जाति के अन्तर्गत उन उत्तरदाताओं को सम्मिलित किया गया है जिन्हें समाज में अभी भी अस्पृश्य मानते हैं। इनकी संख्या 55 है।

इसमें 6 मुस्लिम उत्तरदाताओं को उनकी जाति व्यवस्था हिन्दुओं से भिन्न होने के कारण कहीं निष्कर्ष में त्रुटि न आ जाय, सम्मिलित नही किया गया है। जातिगत विभेदीकरण के कारण उत्तरदाताओं को पेशा अपनाने के प्रति कोई विशेष रूकावट नहीं उत्पन्न कर सका है। सभी जाति व समुदाय के डाकियों ने समय की माँग के अनुसार अपने परम्परागत पेशे को बदला है और उ[illegible] श्रमिक वर्ग में संगठित किया है।

अध्ययन के अन्तर्गत भिन्न विचार व दृष्टिकोण वाले उत्तरदाता पाए गए। जातीयता के सम्बन्ध में उनके विचार ज्ञात करने पर पता चला कि 95.4 प्रतिशत उत्तरदाता जातीयता में विश्वास रखते हैं तथा 4.6 प्रतिशत उत्तरदाता इसमें विश्वास नहीं रखते।

इससे निष्कर्ष निकलता है कि समय में परिवर्तन तथा शिक्षा में वृद्धि के बावजूद अधिकांश उत्तरदाता अभी भी जातीयता में विश्वास करते हैं। वे कार्यालय में कार्य करने के कारण दूसरी जाति के लोगों के साथ भोजन करने को तैयार हैं, लेकिन अन्तर्जातीय विवाह के लिये तैयार नहीं हैं। इससे उत्तरदाताओं में जातिगत भेदभाव स्पष्ट होता है।

अधिकांश उत्तरदाताओं ने जाति में विश्वास का आधार जन्म को बताया है। इससे पता चलता है कि जाति की नैतिक शक्ति उनमें अभी भी प्रबल है। उत्तरदाताओं से समाजिक प्रस्थिति को निर्धारित करने वाले कारकों को ज्ञात करने पर पता चला कि 14.44 प्रतिशत उत्तरदाता जाति को सामाजिक प्रस्थिति का निर्धारक कारक मानते हैं, 78 प्रतिशत उत्तरदाता धन को, तथा 37.78 प्रतिशत पेशे को सामाजिक प्रस्थिति का निर्धारण कारक मानते हैं।

अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि अधिकांश डाकिये धन को सामाजिक प्रस्थिति का निर्धारक कारक मानते हैं। डाकियों ने बताया कि आज का युग भौतिकवादी है जिसके पास अधिक पैसे हैं उन्हीं का समाज में अधिक महत्व व प्रतिष्ठा है।

भारत एक ऐसा देश है जहाँ अस्पृश्यों की संख्या करोड़ों में है। यह प्राचीन काल से ही जाति व्यवस्था के एक अंग के रूप में विद्यमान रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सरकारी प्रयासों के फलस्वरूप अस्पृश्यों की स्थिति में सुधार आया है।

अध्ययन के अन्तर्गत उत्तरदाताओं से अस्पृश्यता में विश्वास के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर ज्ञात हुआ कि 30 प्रतिशत उत्तरदाता अभी भी अस्पृश्यता में विश्वास करते हैं, जबकि 70 प्रतिशत इसमें विश्वास नहीं करते हैं।

इससे स्पष्ट होता है कि अब डाकियों में अस्पृश्यता सम्बन्धी धारणा में काफी परिवर्तन आया है। ऐसा इसलिये है कि कार्यालय में सभी जाति के उत्तरदाता एक साथ कार्य कर रहे हैं, उनके साथ उन्हें उठना, बैठना रहना और भोजन करना भी पड़ रहा है।

उत्तरदाताओं में भाग्य में विश्वास के दृष्टिकोण का अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि उत्तरदाताओं में से अधिकांश भाग्य में विश्वास रखते हैं।

इस सन्दर्भ में अध्ययन से पता चला कि जो उत्तरदाता जूनियर हाई स्कूल तक पढ़े हैं, वे भाग्य में अधिक विश्वास करते हैं। जैसे-जैसे इनमें शिक्षा का

प्रतिशत बढ़ा है वैसे-वैसे उत्तरदाताओं में भाग्य के प्रति विश्वास सम्बन्धी धारणा में परिवर्तन आया है। वे इसमें विश्वास नहीं कर रहे हैं। इससे पता चलता है कि आने वाले वर्षों में जैसे-जैसे इनमें शिक्षा का प्रतिशत बढ़ेगा, सोचने, विचारने भाग्य में विश्वास तथा अन्य अन्धविश्वासों में कमी आयेगी।

धार्मिक, सांस्कृतिक मूल्य व आस्थाएँ सामाजिक जीवन का महत्वपूर्ण पक्ष कही जा सकती हैं। अतः समूह के प्रचलित ज्ञान, आचार, विचार, धारणाओं, मान्यताओं, विश्वासों, आस्थाओं व धार्मिक मूल्यों से सम्बन्धित डाकियों की अभिवृत्तियों का विश्लेषण करना भी अध्ययन के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण माना गया है। धर्म भारतीय समाज में गहराई से जड़ जमाए हुए हैं। प्रस्तुत अध्ययन में भी यह स्पष्ट हुआ है कि धार्मिक आस्था व विश्वासों का आज भी व्यक्ति के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। 93.9 प्रतिशत उत्तरदाताओं द्वारा ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास करना उनके गहन धार्मिक विश्वास को स्पष्ट करता है। इस प्रकार औसत उत्तरदाता धार्मिक रूप से आस्थावान हैं तथा धार्मिक प्रतीकों को कम या अधिक रूप में स्वीकार करते हैं। इस सन्दर्भ में मुस्लिम उत्तरदाताओं का प्रतिशत आंशिक रूप से उच्च है तथा हिन्दुओं में उच्च शिक्षित व युवा वर्ग में धार्मिक आस्था कम है।

प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत उत्तरदाताओं की आर्थिक स्थिति का अध्ययन किया गया, यह पाया गया कि उनकी आर्थिक स्थिति व्यवसाय से प्राप्त होने वाली आय पर निर्भर करती है। इसमें समस्त उत्तरदाताओं का मुख्य व्यवसाय नौकरी है। उत्तरदाताओं की मासिक आय ज्ञात करने पर पता चला कि कुल 180 उत्तरदाताओं में से 27.22 प्रतिशत उत्तरदाता 1200 रु0 से 1400 रुपये प्रतिमाह वेतन के रूप में प्राप्त करते हैं, 30.56 प्रतिशत उत्तरदाता 1401 से 1600 रुपये प्रतिमाह 42.22 प्रतिशत उत्तरदाता 1601 रुपये से 1800 रुपये तक प्रतिमाह वेतन के रूप में प्राप्त करते हैं।

इससे स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं को विभाग द्वारा प्रदत्त मासिक वेतन वर्तमान समय की महँगाई की दृष्टि से अत्यन्त कम है। अपनी इस छोटी सी आय में से ही उत्तरदाताओं को, परिवार का भरण पोषण, विभिन्न उत्तरदायित्वों का निर्वाह तथा ऋणों की आदायगी करनी पड़ती है।

इस कठिन स्थिति में कुछ उत्तरदाता द्वैतीयक साधनों से भी आय प्राप्त कर रहे हैं जिसमें 77.89 प्रतिशत उत्तरदाता कृषि कार्य द्वारा 70.69 प्रतिशत उत्तरदाता पशुधन द्वारा 6.73 प्रतिशत उत्तरदाता अपने जातिगत पेशे द्वारा तथा 7.69 प्रतिशत उत्तरदाता अल्पवधि कार्य जैसे ट्यूशन आदि द्वारा आय प्राप्त कर रहे हैं जो उनके दैनिक जीवन की आवश्यकता संतुष्टि में सहायक हो रहा है।

शेष उत्तरदाता जिनके पास आय के कोई भी द्वैतीयक साधन नहीं है, उन्हें

जीवनयापन करने में अत्यन्त कठिनाई हो रही है। इससे स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं की आर्थिक स्थिति अत्यन्त खराब है।

अध्ययन के अन्तर्गत उत्तरदाताओं द्वारा किये जाने वाले व्यय के अध्ययन से स्पष्ट है कि उनकी आय भोजन, वस्त्र, मकान के किराये, शिक्षा, दवा आदि पर ही खर्च करने के लिये कम पड़ती है। अतः अनेक उत्तरदाताओं को परिवार में अन्य सदस्यों को भी कोई न कोई कार्य करना पड़ता है, इसके अतिरिक्त उन्होंने रुपये भी उधार लिये हैं।

उत्तरदाताओं द्वारा विभिन्न मदों पर किये ज़ाने वाले औसत व्यय का अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि 11.67 प्रतिशत उत्तरदाता 1200 से 1400 रुपये तक 49.44 प्रतिशत 1401 से 1600 रुपये तक, 35.56 प्रतिशत 1601 से 1800 रुपये तक तथा 33 प्रतिशत उत्तरदाता 1801 से 2000 रुपये तक औसत मासिक व्यय करते हैं।

इससे भी स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं को अपनी मासिक आय की तुलना में व्यय अधिक करने पड़ रहे हैं जिससे उन्होंने रुपये भी उधार ले रखे हैं तथा दवाएँ, वस्त्र आदि क्रेडिट पर खरीद रहे हैं। यह भी एक प्रकार का ऋण है जो उनकी सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्था को प्रभावित कर रहा है।

अध्ययन के अन्तर्गत उत्तरदाता बचत में तो रूचि रखते हैं लेकिन अपनी कम आय के कारण उनमें से अधिकांश बचत कर पाने में अपने को असमर्थ पा रहे हैं। यही कारण है कि वे बीमारी आदि अथवा सामाजिक उत्सवों के लिये ऋण लेने को बाध्य हैं। बहुत थोड़े से (23.88 प्रतिशत) उत्तरदाता ही कोई दायित्व न होने के कारण थोड़ी बहुत बचत कर ले रहे हैं।

अध्ययन के अन्तर्गत उत्तरदाताओं के ऊपर ऋण के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की गई। यह ज्ञात हुआ कि 87.88 प्रतिशत उत्तरदाता ऋण ग्रस्त हैं जिनमें 20.25 प्रतिशत उत्तरदाताओं के ऊपर 1000 रुपये तक ऋण है, 15.83 प्रतिशत उत्तरदाताओं के ऊपर 10001 से 2000 रुपये तक 16.46 प्रतिशत उत्तरदाताओं पर 2001 से 3000 रुपये तक 22.78 प्रतिशत के ऊपर 3001 से 4000 रुपये तथा 24.68 प्रतिशत उत्तरदाताओं पर 4000 रुपये से ऊपर ऋण हैं।

इससे स्पष्ट होता है कि अधिक संख्या में उत्तरदाता ऋण के भार से दबे हैं। चूँकि उत्तरदाता शिक्षित हैं, अतः उन्होंने डाक विभाग द्वारा मिली सुविधा का भरपूर लाभ उठाते हुए विभिन्न स्त्रोतों से ऋण लिया है। इसमें सबसे अधिक उत्तरदाताओं ने भविष्य कोष निधि तथा कोआपरेटिव क्रेडिट सोसायटी से ऋण ले रखा है।

यह भी ज्ञात हुआ कि उत्तरदाताओं द्वारा ये ऋण विभिन्न कारणों से लिये गये हैं।

ऋण लेने वाले कुल 158 उत्तरदाताओं मे से 41.44 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने विवाह तथा अन्य उत्सवों के लिये, 11.39 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने गृह

निर्माण के लिये 5.06 प्रतिशत ने बीमारी 5.70 प्रतिशत ने शिक्षा, 18.35 प्रतिशत पारिवारिक व्यय तथा 18.35 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सायकिल, त्यौहार आदि के लिये ऋण लिया है।

इससे स्पष्ट है कि विभिन्न सामाजिक तथा दबावों के कारण उत्तरदाता ऋण लेने के लिये बाध्य हैं।

ये सभी विवरण अध्ययन के अन्तर्गत उत्तरदाताओं की खराब आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डालते हैं जैसा कि स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं को अपने पारिवारिक व्यय तथा त्यौहार जैसे मदों के लिये भी ऋण लेने पड़ रहे हैं।

उत्तरदाताओं की आवास स्थिति के विषय में अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि गोरखपुर महानगर में विभाग की ओर से डाकियों के लिये कुछ आवास का प्रबन्ध किया गया है परन्तु डाकियों की संख्या को देखते हुए यह अत्यन्त कम है। जिन डाकियों को क्वार्टर की सुविधा मिली हुई है, उनमें बिजली, शौचालय आदि तो हैं परन्तु उनमें पानी की गम्भीर समस्या है। भूतल पर तो पानी की व्यवस्था ठीक है। परन्तु ऊपरी तल वालों के लिये पानी चढ़ने की गम्भीर समस्या है। विभाग ने उसके लिये टंकी आदि का प्रबन्ध नहीं किया है।

ग्रामीण क्षेत्रों में भी आवास की समस्या बनी हुई है। अध्ययन के अन्तर्गत डाक-विभाग से इस सम्बन्ध में पूछने पर पता चला कि यहाँ पर तो विभाग अपने लिये एक भवन भी नहीं बनवा पाता, किराये पर ही लेकर उसमें किसी प्रकार कार्यालय खोल लिये जाते हैं, कर्मचारियों को निवास सुविधा उपलब्ध कराना तो बहुत दूर की बात है।

गाँवों में ग्रामवासियों ने चूँकि मकान अपने उपभोग के उद्देश्य से बनवाया है, किराये के उद्देश्य से नहीं, इसलिये वहाँ पर डाकिये उन्हीं मकान मालिकों के आवास में किसी प्रकार से रह रहे हैं जिससे उन्हें सुविधा कम ही मिल पाती है।

अत: डाकिये चाहे शहर के हों अथवा गाँव के आवास की समस्या अत्यन्त गंभीर है।

डाकियों की आवास सुविधा का अध्ययन करने पर पता चला 15 प्रतिशत डाकिये निजी मकानों में रहते हैं, 80 प्रतिशत किराये के मकान में रहते हैं तथा 5 प्रतिशत विभाग द्वारा प्रदत्त आवास में रहते हैं।

गाँवों में रहने वाले अधिकांश डाकियों के मकान कच्चे हैं। शहर में बहुत कम डाकियों के निजी मकान हैं लेकिन शहर में रहने वाले डाकियों के निजी अथवा किराये के मकान पक्के हैं।

किराये पर रहने वाले कुल 144 डाकियों में से 11.81% डाकिये 100 रु0 से कम मकान का किराया देते हैं, 31.94% डाकिये 100 से 200 तक किराया देते हैं, 47.22% डाकिये 200 से 300 रुपये तक तथा 9.03 डाकिये 300 रुपये से ऊपर मकान का किराया देते हैं।

जीवनयापन करने में अत्यन्त कठिनाई हो रही है। इससे स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं की आर्थिक स्थिति अत्यन्त खराब है।

अध्ययन के अन्तर्गत उत्तरदाताओं द्वारा किये जाने वाले व्यय के अध्ययन से स्पष्ट है कि उनकी आय भोजन, वस्त्र, मकान के किराये, शिक्षा, दवा आदि पर ही खर्च करने के लिये कम पड़ती है। अतः अनेक उत्तरदाताओं को परिवार में अन्य सदस्यों को भी कोई न कोई कार्य करना पड़ता है, इसके अतिरिक्त उन्होंने रुपये भी उधार लिये हैं।

उत्तरदाताओं द्वारा विभिन्न मदों पर किये ज़ाने वाले औसत व्यय का अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि 11.67 प्रतिशत उत्तरदाता 1200 से 1400 रुपये तक 49.44 प्रतिशत 1401 से 1600 रुपये तक, 35.56 प्रतिशत 1601 से 1800 रुपये तक तथा 33 प्रतिशत उत्तरदाता 1801 से 2000 रुपये तक औसत मासिक व्यय करते हैं।

इससे भी स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं को अपनी मासिक आय की तुलना में व्यय अधिक करने पड़ रहे हैं जिससे उन्होंने रुपये भी उधार ले रखे हैं तथा दवाएँ, वस्त्र आदि क्रेडिट पर खरीद रहे हैं। यह भी एक प्रकार का ऋण है जो उनकी सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्था को प्रभावित कर रहा है।

अध्ययन के अन्तर्गत उत्तरदाता बचत में तो रूचि रखते हैं लेकिन अपनी कम आय के कारण उनमें से अधिकांश बचत कर पाने में अपने को असमर्थ पा रहे हैं। यही कारण है कि वे बीमारी आदि अथवा सामाजिक उत्सवों के लिये ऋण लेने को बाध्य हैं। बहुत थोड़े से (23.88 प्रतिशत) उत्तरदाता ही कोई दायित्व न होने के कारण थोड़ी बहुत बचत कर ले रहे हैं।

अध्ययन के अन्तर्गत उत्तरदाताओं के ऊपर ऋण के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की गई। यह ज्ञात हुआ कि 87.88 प्रतिशत उत्तरदाता ऋण ग्रस्त हैं जिनमें 20.25 प्रतिशत उत्तरदाताओं के ऊपर 1000 रुपये तक ऋण है, 15.83 प्रतिशत उत्तरदाताओं के ऊपर 10001 से 2000 रुपये तक 16.46 प्रतिशत उत्तरदाताओं पर 2001 से 3000 रुपये तक 22.78 प्रतिशत के ऊपर 3001 से 4000 रुपये तथा 24.68 प्रतिशत उत्तरदाताओं पर 4000 रुपये से ऊपर ऋण हैं।

इससे स्पष्ट होता है कि अधिक संख्या में उत्तरदाता ऋण के भार से दबे हैं। चूँकि उत्तरदाता शिक्षित हैं, अतः उन्होंने डाक विभाग द्वारा मिली सुविधा का भरपूर लाभ उठाते हुए विभिन्न स्रोतों से ऋण लिया है। इसमें सबसे अधिक उत्तरदाताओं ने भविष्य कोष निधि तथा कोआपरेटिव क्रेडिट सोसायटी से ऋण ले रखा है।

यह भी ज्ञात हुआ कि उत्तरदाताओं द्वारा ये ऋण विभिन्न कारणों से लिये गये हैं।

ऋण लेने वाले कुल 158 उत्तरदाताओं मे से 41.44 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने विवाह तथा अन्य उत्सवों के लिये, 11.39 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने गृह

निर्माण के लिये 5.06 प्रतिशत ने बीमारी 5.70 प्रतिशत ने शिक्षा, 18.35 प्रतिशत पारिवारिक व्यय तथा 18.35 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सायकिल, त्यौहार आदि के लिये ऋण लिया है।

इससे स्पष्ट है कि विभिन्न सामाजिक तथा दबावों के कारण उत्तरदाता ऋण लेने के लिये बाध्य हैं।

ये सभी विवरण अध्ययन के अन्तर्गत उत्तरदाताओं की खराब आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डालते हैं जैसा कि स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं को अपने पारिवारिक व्यय तथा त्यौहार जैसे मदों के लिये भी ऋण लेने पड़ रहे हैं।

उत्तरदाताओं की आवास स्थिति के विषय में अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि गोरखपुर महानगर में विभाग की ओर से डाकियों के लिये कुछ आवास का प्रबन्ध किया गया है परन्तु डाकियों की संख्या को देखते हुए यह अत्यन्त कम है। जिन डाकियों को क्वार्टर की सुविधा मिली हुई है, उनमें बिजली, शौचालय आदि तो हैं परन्तु उनमें पानी की गम्भीर समस्या है। भूतल पर तो पानी की व्यवस्था ठीक है। परन्तु ऊपरी तल वालों के लिये पानी चढ़ने की गम्भीर समस्या है। विभाग ने उसके लिये टंकी आदि का प्रबन्ध नहीं किया है।

ग्रामीण क्षेत्रों में भी आवास की समस्या बनी हुई है। अध्ययन के अन्तर्गत डाक-विभाग से इस सम्बन्ध में पूछने पर पता चला कि यहाँ पर तो विभाग अपने लिये एक भवन भी नहीं बनवा पाता, किराये पर ही लेकर उसमें किसी प्रकार कार्यालय खोल लिये जाते हैं, कर्मचारियों को निवास सुविधा उपलब्ध कराना तो बहुत दूर की बात है।

गाँवों में ग्रामवासियों ने चूँकि मकान अपने उपभोग के उद्देश्य से बनवाया है, किराये के उद्देश्य से नहीं, इसलिये वहाँ पर डाकिये उन्हीं मकान मालिकों के आवास में किसी प्रकार से रह रहे हैं जिससे उन्हें सुविधा कम ही मिल पाती है।

अत: डाकिये चाहे शहर के हों अथवा गाँव के आवास की समस्या अत्यन्त गंभीर है।

डाकियों की आवास सुविधा का अध्ययन करने पर पता चला 15 प्रतिशत डाकिये निजी मकानों में रहते हैं, 80 प्रतिशत किराये के मकान में रहते हैं तथा 5 प्रतिशत विभाग द्वारा प्रदत्त आवास में रहते हैं।

गाँवों में रहने वाले अधिकांश डाकियों के मकान कच्चे हैं। शहर में बहुत कम डाकियों के निजी मकान हैं लेकिन शहर में रहने वाले डाकियों के निजी अथवा किराये के मकान पक्के हैं।

किराये पर रहने वाले कुल 144 डाकियों में से 11.81% डाकिये 100 रु0 से कम मकान का किराया देते हैं, 31.94% डाकिये 100 से 200 तक किराया देते हैं, 47.22% डाकिये 200 से 300 रुपये तक तथा 9.03 डाकिये 300 रुपये से ऊपर मकान का किराया देते हैं।

इससे स्पष्ट है कि डाकियों को विभाग द्वारा जो किराया मिलता है वह कम है। डाकियों को अपने पास से रुपये मिलाकर देना पड़ रहा है।

उत्तरदाताओं के स्वास्थ्य का अध्ययन करने पर पाया गया कि उनके परिवार के प्राथमिक स्वास्थ्य की दशा औसत है। अध्ययन में कुछ परिवार ऐसे पाये गये जो बीमार तो नहीं थे परन्तु जैसा एक स्वस्थ्य व्यक्ति को होना चाहिए वैसे वे नहीं थे।

इसका कारण ज्ञात करने पर पता चला कि ऐसा अच्छी आवासीय सुविधा उपलब्ध न होने के कारण है। डाकियों के परिवार में जाने पर पता चला कि कुछ डाकियों के परिवार में टी.बी. तथा चेचक जैसे रोग हैं, लेकिन चेचक को वे दैवी प्रसाद मानकर उसकी चिकित्सा नहीं कराते। इससे स्पष्ट होता है कि डाकिये शिक्षित होने के बावजूद रूढ़िवादी विचारधारा के हैं। चिकित्सा सुविधा का अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि महानगर के सभी डाकिये विभाग द्वारा प्रदत्त डाक-तार चिकित्सालय का पूर्ण लाभ उठा रहे हैं। उन्हें दवाएँ विभागीय चिकित्सालय द्वारा उपलब्ध करा दी जाती है और उपलब्ध न होने पर बाहर से मँगा ली जाती हैं।

इस प्रकार महानगर के सभी डाकिये डाक-तार चिकित्सालय की सेवा से पूरी तरह सन्तुष्ट हैं।

गाँव तथा कस्बों के डाकियों को डाक-तार चिकित्सालय की सुविधा सुलभ नहीं है। गाँव तथा कस्बों में ऐसे बहुत से शाखा डाकघर व उपडाकघर पाए गए हैं जहाँ विभागीय डाकियों के लिए अधिकृत प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर चिकित्सा सेवा उपलब्ध है तथा जो औषधियाँ सरकारी अस्पतालों में उपलब्ध नहीं होती उसे डाकियों को डाक्टर के नुस्खे के अनुसार खरीद कर व बिल बनाकर पैसे का भुगतान कराना पड़ता है।

ग्रामीण क्षेत्र के डाकिये इस चिकित्सा सेवा से सन्तुष्ट नहीं है क्योंकि जिले के सभी स्वास्थ्य केन्द्र डाक-विभाग द्वारा कर्मचारियों के लिए अधिकृत न किये जाने के कारण डाकियों को चिकित्सा के लिये काफी दूरी तय करनी पड़ती है। अत: वे विभिन्न कठिनाइयों के कारण वहाँ न पहुँच पाने से इस सुविधा का लाभ नहीं उठा पा रहे हैं। अत: स्थानीय चिकित्सकों से निजी व्यय पर चिकित्सा कराने को बाध्य हैं।

डाकियों को विभाग द्वारा प्रदत्त सुविधा का लाभ उठाने के लिए अनेक औपचारिकताएँ पूरी करनी पड़ती है जो अत्यधिक जटिल हैं। इस कारण भी वे चिकित्सा सुविधा का पूरा लाभ नहीं उठा पा रहे हैं।

इससे स्पष्ट है कि शहर के डाकिये तो विभागीय चिकित्सा-सुविधा से सन्तुष्ट हैं, लेकिन ग्रामीण क्षेत्र के डाकिये इससे असन्तुष्ट हैं।

डाकियों में व्यवसन का अध्ययन करने पर पाया गया कि चूँकि वे

कार्यालयों में कार्यरत हैं और उन्हें अपना उत्तरदायित्व पूरा करना पड़ता है तथा वे सामाजिक बन्धन की अनुभूति करते हैं, अतः उनमें से अधिकांशतः बुरी आदतों जैसे शराब, जुआ आदि का प्रयोग नहीं करते। वे भाँग, तम्बाकू व धूम्रपान जैसे सिगरेट, बीड़ी आदि का प्रयोग कभी-कभी कर लेते हैं कुछ डाकियों में से 4.35% डाकिये भाँग का, 63.33% डाकिये तम्बाकू का, 18.33% डाकिये धूम्रपान का प्रयोग करते हैं, जबकि 13.89% डाकिये किसी भी प्रकार का नशा नहीं करते।

यह पाया गया कि सिगरेट का प्रयोग अधिकांशतः युवा डाकियों तथा बीड़ी का प्रयोग अधिक उम्र वाले डाकियों द्वारा मानसिक-थकान तथा तनाव दूर करने के लिये किया जा रहा है।

प्रस्तुत अध्ययन में डाकियों के रहन-सहन के स्तर के अन्तर्गत भोजन, वस्त्र तथा सुविधा की वस्तुओं का अध्ययन किया गया। इससे उनके रहन-सहन के स्तर को ज्ञात करने में पर्याप्त सहायता मिल सकी है।

डाकियों द्वारा दैनिक जीवन में सन्तुलित आहार के रूप में प्रयुक्त खाद्य सामग्री के अध्ययन से स्पष्ट है कि अधिकांश डाकिये अपना जीवन निर्वाह चावल, गेहूँ आदि अनाज द्वारा कर रहे हैं। इन्हें दाल, हरी सब्जियाँ, माँस-मछली अण्डा, फल, दही आदि नित्य नहीं उपलब्ध हो पा रहे हैं। इससे पता चलता है कि उनमें पौष्टिक आहार की कमी है जिससे उनका शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित हो रहा है।

उत्तरदाता तथा उनके परिवार के सदस्यों द्वारा 48.89% डाकिये व उनके परिवार द्वारा मोटे वस्त्र पहने जा रहे हैं, 37.8% उत्तरदाता मध्यम स्तर के तथा 13.33% उत्तरदाता उच्च स्तर के वस्त्र पहन रहे हैं।

उच्चकोटि के वस्त्र पहनने वालों में अधिकांशतः वे नवयुवक डाकिये हैं जिनकी नियुक्ति पिछले 5 वर्षों में हुई है तथा जिनके ऊपर अभी कोई विशेष दायित्व नहीं है। कभी-कभी इन नवयुवक डाकियों द्वारा अच्छे कपड़े बनवाने के लिये दूसरों से ऋण भी लिया जाता है।

रहन-सहन के स्तर के अन्तर्गत उत्तरदाताओं द्वारा दैनिक जीवन में प्रयुक्त सुविधा की वस्तुओं का अध्ययन करने से यह ज्ञात हुआ कि उनके पास कुर्सियाँ, विद्युत पंखे, रेडियो कुछ के पास टी. वी. साधारण सोफे आदि हैं, लेकिन सोफे टी. वी. आदि उन्हें दहेज में प्राप्त हुई हैं। इससे स्पष्ट है कि डाकियों के रहन-सहन का स्तर अत्यन्त निम्न है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के अन्तर्गत डाकियों के कार्य की दशा का अध्ययन किया गया। सबसे पहले यह देखा गया कि डाकिये कब से कार्य कर रहे हैं। 1980 से पूर्व डाकियों की जितनी संख्या थी उसमें अब तक कितनी वृद्धि हुई है तथा उनकी संख्या में वृद्धि के साथ या उनके ऊपर से कार्य का बोझ कम हुआ

इससे स्पष्ट है कि डाकियों को विभाग द्वारा जो किराया मिलता है वह कम है। डाकियों को अपने पास से रुपये मिलाकर देना पड़ रहा है।

उत्तरदाताओं के स्वास्थ्य का अध्ययन करने पर पाया गया कि उनके परिवार के प्राथमिक स्वास्थ्य की दशा औसत है। अध्ययन में कुछ परिवार ऐसे पाये गये जो बीमार तो नहीं थे परन्तु जैसा एक स्वस्थ्य व्यक्ति को होना चाहिए वैसे वे नहीं थे।

इसका कारण ज्ञात करने पर पता चला कि ऐसा अच्छी आवासीय सुविधा उपलब्ध न होने के कारण है। डाकियों के परिवार में जाने पर पता चला कि कुछ डाकियों के परिवार में टी.बी. तथा चेचक जैसे रोग हैं, लेकिन चेचक को वे दैवी प्रसाद मानकर उसकी चिकित्सा नहीं कराते। इससे स्पष्ट होता है कि डाकिये शिक्षित होने के बावजूद रूढ़िवादी विचारधारा के हैं। चिकित्सा सुविधा का अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि महानगर के सभी डाकिये विभाग द्वारा प्रदत्त डाक-तार चिकित्सालय का पूर्ण लाभ उठा रहे हैं। उन्हें दवाएँ विभागीय चिकित्सालय द्वारा उपलब्ध करा दी जाती है और उपलब्ध न होने पर बाहर से मँगा ली जाती हैं।

इस प्रकार महानगर के सभी डाकिये डाक-तार चिकित्सालय की सेवा से पूरी तरह सन्तुष्ट हैं।

गाँव तथा कस्बों के डाकियों को डाक-तार चिकित्सालय की सुविधा सुलभ नहीं है। गाँव तथा कस्बों में ऐसे बहुत से शाखा डाकघर व उपडाकघर पाए गए हैं जहाँ विभागीय डाकियों के लिए अधिकृत प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर चिकित्सा सेवा उपलब्ध है तथा जो औषधियाँ सरकारी अस्पतालों में उपलब्ध नहीं होती उसे डाकियों को डाक्टर के नुस्खे के अनुसार खरीद कर व बिल बनाकर पैसे का भुगतान कराना पड़ता है।

ग्रामीण क्षेत्र के डाकिये इस चिकित्सा सेवा से सन्तुष्ट नहीं है क्योंकि जिले के सभी स्वास्थ्य केन्द्र डाक-विभाग द्वारा कर्मचारियों के लिए अधिकृत न किये जाने के कारण डाकियों को चिकित्सा के लिये काफी दूरी तय करनी पड़ती है। अत: वे विभिन्न कठिनाइयों के कारण वहाँ न पहुँच पाने से इस सुविधा का लाभ नहीं उठा पा रहे हैं। अत: स्थानीय चिकित्सकों से निजी व्यय पर चिकित्सा कराने को बाध्य हैं।

डाकियों को विभाग द्वारा प्रदत्त सुविधा का लाभ उठाने के लिए अनेक औपचारिकताएँ पूरी करनी पड़ती है जो अत्यधिक जटिल हैं। इस कारण भी वे चिकित्सा सुविधा का पूरा लाभ नहीं उठा पा रहे हैं।

इससे स्पष्ट है कि शहर के डाकिये तो विभागीय चिकित्सा-सुविधा से सन्तुष्ट हैं, लेकिन ग्रामीण क्षेत्र के डाकिये इससे असन्तुष्ट हैं।

डाकियों में व्यवसन का अध्ययन करने पर पाया गया कि चूँकि वे

कार्यालयों में कार्यरत हैं और उन्हें अपना उत्तरदायित्व पूरा करना पड़ता है तथा वे सामाजिक बन्धन की अनुभूति करते हैं, अतः उनमें से अधिकांशतः बुरी आदतों जैसे शराब, जुआ आदि का प्रयोग नहीं करते। वे भाँग, तम्बाकू व धूम्रपान जैसे सिगरेट, बीड़ी आदि का प्रयोग कभी-कभी कर लेते हैं कुछ डाकियों में से 4.35% डाकिये भाँग का, 63.33% डाकिये तम्बाकू का, 18.33% डाकिये धूम्रपान का प्रयोग करते हैं, जबकि 13.89% डाकिये किसी भी प्रकार का नशा नहीं करते।

यह पाया गया कि सिगरेट का प्रयोग अधिकांशतः युवा डाकियों तथा बीड़ी का प्रयोग अधिक उम्र वाले डाकियों द्वारा मानसिक-थकान तथा तनाव दूर करने के लिये किया जा रहा है।

प्रस्तुत अध्ययन में डाकियों के रहन-सहन के स्तर के अन्तर्गत भोजन, वस्त्र तथा सुविधा की वस्तुओं का अध्ययन किया गया। इससे उनके रहन-सहन के स्तर को ज्ञात करने में पर्याप्त सहायता मिल सकी है।

डाकियों द्वारा दैनिक जीवन में सन्तुलित आहार के रूप में प्रयुक्त खाद्य सामग्री के अध्ययन से स्पष्ट है कि अधिकांश डाकिये अपना जीवन निर्वाह चावल, गेहूँ आदि अनाज द्वारा कर रहे हैं। इन्हें दाल, हरी सब्जियाँ, माँस-मछली अण्डा, फल, दही आदि नित्य नहीं उपलब्ध हो पा रहे हैं। इससे पता चलता है कि उनमें पौष्टिक आहार की कमी है जिससे उनका शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित हो रहा है।

उत्तरदाता तथा उनके परिवार के सदस्यों द्वारा 48.89% डाकिये व उनके परिवार द्वारा मोटे वस्त्र पहने जा रहे हैं, 37.8% उत्तरदाता मध्यम स्तर के तथा 13.33% उत्तरदाता उच्च स्तर के वस्त्र पहन रहे हैं।

उच्चकोटि के वस्त्र पहनने वालों में अधिकांशतः वे नवयुवक डाकिये हैं जिनकी नियुक्ति पिछले 5 वर्षों में हुई है तथा जिनके ऊपर अभी कोई विशेष दायित्व नहीं है। कभी-कभी इन नवयुवक डाकियों द्वारा अच्छे कपड़े बनवाने के लिये दूसरों से ऋण भी लिया जाता है।

रहन-सहन के स्तर के अन्तर्गत उत्तरदाताओं द्वारा दैनिक जीवन में प्रयुक्त सुविधा की वस्तुओं का अध्ययन करने से यह ज्ञात हुआ कि उनके पास कुर्सियाँ, विद्युत पंखे, रेडियो कुछ के पास टी. वी. साधारण सोफे आदि हैं, लेकिन सोफे टी. वी. आदि उन्हें दहेज में प्राप्त हुई हैं। इससे स्पष्ट है कि डाकियों के रहन-सहन का स्तर अत्यन्त निम्न है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के अन्तर्गत डाकियों के कार्य की दशा का अध्ययन किया गया। सबसे पहले यह देखा गया कि डाकिये कब से कार्य कर रहे हैं। 1980 से पूर्व डाकियों की जितनी संख्या थी उसमें अब तक कितनी वृद्धि हुई है तथा उनकी संख्या में वृद्धि के साथ या उनके ऊपर से कार्य का बोझ कम हुआ

है, यह पाया गया कि 1980 से पूर्व इनकी संख्या जहाँ 112 थीं, अब बढ़कर 180 हो गई है। लेकिन उस अनुपात में इनके ऊपर से कार्य का बोझ कम नहीं हुआ है क्योंकि पहले डाकघरों की संख्या जहाँ कम थी वहाँ अब इनकी संख्या में बढ़ोत्तरी हो गई है और प्रत्येक डाकघर के वितरण-कार्यालय न होने के कारण डाकियों को अधिक दूरी तय करके पत्रों का वितरण करना पड़ रहा है।

अधिकांश उत्तरदाता ग्रामीण क्षेत्रों के रहने वाले हैं। शहर में रहने वाले उत्तरदाताओं की संख्या अपेक्षाकृत कम है। अध्ययन से ज्ञात हुआ कि कुल 180 उत्तरदाताओं में से 55.56% उत्तरदाता 5 कि0मी0, 28.89% उत्तरदाता 5 से 10 कि0मी0 तक तथा 15.55% उत्तरदाता 10 से 15 कि0मी0 तक की दूरी कार्यालय से निवास तक तय करते हैं।

उत्तरदाताओं से कार्य की दशाओं के विषय में जानकारी प्राप्त करने पर पाया गया कि उनके ऊपर कार्य का उत्तरदायित्व अधिक है जिसे वे वर्तमान कार्य के घण्टों में सम्पादित नहीं कर पा रहे हैं। वे पूरे वितरण-क्षेत्र में समय के अन्दर नहीं पहुँच पा रहे हैं। इसका प्रमाण डाकघरों में डाकियों द्वारा वस्तुओं की वापसी देखने से प्राप्त हो गया।

डाकियों का अपने समान व समकक्ष अन्य विभागों में कार्यरत कर्मियों से आर्थिक दृष्टि से तुलना करने पर पाया गया कि कुल डाकियों में से 64.5% उत्तरदाता अपने को उनसे निम्न पाते हैं तथा 35.5% उत्तरदाता उनके समकक्ष पाते हैं।

अतः स्पष्ट है कि अधिकांश डाकिये अपने वर्तमान पेशे से सन्तुष्ट नहीं हैं क्योंकि उन्हीं के समकक्ष अन्य विभागों के कर्मचारी वेतन के अतिरिक्त आय के अन्य स्रोत के कारण आर्थिक दृष्टि से अच्छे हैं।

यह पूछने पर कि पेशे से सन्तुष्ट न होने पर क्या डाकिये अपने बच्चों को इस व्यवसाय में लाना चाहेंगे 80% डाकियों ने नकारात्मक उत्तर दिया। इसका कारण उन्होंने बताया कि दूसरे विभागों की तुलना में इस व्यवसाय में वेतन तो समान है परन्तु कार्य की दशाएँ अत्यन्त खराब हैं तथा आय के कोई स्रोत भी नहीं हैं; जबकि दूसरे विभागों में कार्य की दशाएँ, सुविधाएँ, आय के स्रोत आदि अच्छे हैं।

अधिकांश डाकियों के पिता कृषि कार्य में ही संलग्न रहे हैं, किन्तु उन्होंने अपने पुत्रों को नौकरी पेशे में ही लगाना उचित समझा है।

यहाँ एक बात स्पष्ट हुई है कि आधुनिकीकरण उन्हीं डाकियों का हुआ है जिनके पिता शिक्षित रहे हैं अथवा जिनके पिता की आय अधिक रही है।

जहाँ तक मनोरंजन के साधनों के उपभोग का प्रश्न है डाकिये कृषि, गृहकार्य, उपन्यास, गाना/बजाना, अध्ययन, भ्रमण आदि द्वारा ही अपना मनोरंजन करते हैं। मनोरंजन सम्बन्धी क्रिया-कलापों के प्रति उनका कोई विशेष्ज्ञ दृष्टिकोण नहीं पाया गया।

विभाग द्वारा प्रदत्त सुविधाओं के अध्ययन से पता चला है कि कपड़े, जूते, मोजे, चप्पल, दस्तानें आदि उन्हें बराबर मिल रहे हैं, किन्तु समय से नहीं मिल पा रहे हैं।

विभाग की ओर से डाक-सामग्री रखने के लिये उन्हें बैग, नेटबैग, बरसाती बैग आदि मिलने का नियम है, लेकिन ये सुविधाएँ भी उन्हें कभी-कभी ही मिल पाती हैं। डाकियों से सम्पर्क करने पर पाया गया कि किसी भी डाकिये के पास विभाग द्वारा प्रदत्त कोई बैग नहीं था। इसे उन्होंने निजी व्यय पर खरीदा है।

डाक सामग्री को एक स्थान से दूसरे स्थान तक वितरण-क्षेत्र में डाक लाने ले जाने सम्बन्धी नियम के अन्तर्गत डाकियों को निर्धारित वजन के लिये ही शुल्क दिया जाता है उससे अधिक वजन हो जाने पर रिक्शे अथवा कुली को अपने पास से किराया देना पड़ रहा है। इस प्रकार विभाग द्वारा मिली इन सुविधाओं के प्रति डाकियों में असन्तुष्टि पाई गई।

व्यक्ति की आधारभूत आवश्यकताओं में से आवास एक है। आवास अच्छा होने पर ही व्यक्ति का स्वास्थ्य अच्छा रहता है और उसकी कार्यक्षमता अच्छी बनी रहती है। इसी सन्दर्भ में उनकी आवास स्थिति का अध्ययन किया गया और पाया गया कि विभाग द्वारा गोरखपुर महानगर के डाकियों के लिये तो कुछ आवास उपलब्ध कराये गये हैं जो संख्या में नौ हैं किन्तु यह डाकियों की संख्या को देखते हुए अपर्यान्त हैं।

बहुत कम डाकियों के निजी मकान हैं। अधिकांश डाकिये किराये पर मकान लेकर रह रहे हैं। इनके मकानों में आधुनिक सुख सुविधा, रसोईघर, बाथरूम, अलग बेडरूम आदि का अभाव पाया गया। इनके मकान भी स्वच्छ इलाकों में स्थित नहीं पाए गए। यह देखा गया कि उनके परिवार के सदस्य कई बीमारियों के शिकार थे।

डाकियों के कार्य के समय में जलपान आदि के लिये विभाग की ओर से मात्र शहर के प्रधान डाकघर में ही इसकी सुविधा प्रदान की गई है। शहर के 14 वितरण कार्यालयों तथा ग्रामीण क्षेत्र के कार्यालयों में इसकी कोई व्यवस्था नहीं पाई गई।

अध्ययन के अन्तर्गत डाकिये प्रोन्नति सम्बन्धी नियम से सन्तुष्ट पाए गए। डाक-विभाग द्वारा हालीडे होम्स की सुविधा अपने कर्मचारियों को प्रदान की गई है परन्तु क्षेत्र में जाने पर पाया गया कि किसी भी कर्मचारी को इसके विषय में कोई जानकारी नहीं थी।

डाक विभाग अपने कर्मचारियों को चार वर्ष में एक बार अवकाश के दौरान कार्य स्थल से देश के किसी भी कोने में जाने की जो सुविधा अपने कर्मचारी तथा उनके परिवार के आश्रितों को प्रदान कर रहा है उनसे डाकिये लाभ उठाते पाए गए।

डाक विभाग द्वारा अपने कर्मचारियों को ऋण-भार से मुक्त करने तथा अन्य सुविधाएँ प्रदान करने हेतु अग्रिम धनराशि की व्यवस्था की गई है जो उनके कल्याण की दिशा में एक अच्छा कदम है। डाकिये भी इस सुविधा से लाभान्वित हैं परन्तु यह पाया गया कि कुछ डाकिये अग्रिम धनराशियों का उचित ढँग से प्रयोग नहीं करते। कुल 180 डाकियों में से सभी डाकिये इन अग्रिम धनराशियों का लाभ लेते तो हैं परन्तु जिस उद्देश्य के लिए इसे लेते हैं उसका प्रयोग उनमें न करके अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति में कर देते हैं। डाकियों ने सायकिल, त्यौहार, मकान निर्माण, प्राकृतिक आपदाओं आदि के लिये यह सुविधा तो प्राप्त कर ली है किन्तु यह पाया गया कि उनमें से 50% ने इसका प्रयोग इन उद्देश्यों के लिये नहीं किया है। इस प्रकार इस तरह की योजनाएँ डाकियों में ऋण लेने की आदत बनाये रखने में सहायक हो रही हैं।

इसके अतिरिक्त डाक प्रशासन द्वारा अपने कर्मचारियों को जिनका मासिक मूल वेतन रुपया 1200/- (पुराने वेतनमान में) से कम है, कल्याण कोष की स्थापना करके उन्हें आर्थिक सहायता प्रदान किये जाने का प्राविधान है।

इसके अन्तर्गत मृत कर्मचारी की विधवा/आश्रित की आर्थिक सहायता, लम्बी बीमारी अथवा गहन शल्य चिकित्सा के लिये उनके कर्मचारियों के बच्चों को छात्रवृत्ति दी जाती है किन्तु क्षेत्र में जाने पर पता चला कि 75% डाकियों को इस सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं है, शेष 25% ही इससे परिचित हैं और इससे लाभ उठा रहे हैं।

डाक-विभाग के अन्तर्गत डाकियों का अपना संगठन तीन प्रकार के हैं--

1. अखिल भारतीय डाक कर्मचारी संघ
2. राष्ट्रीय डाक कर्मचारी संघ
3. भातीय मजदूर महासंघ

डाकियों के संघ का अध्ययन करने पर पाया गया कि कर्मचारियों में अपनी ख्याति बढ़ाने के उद्देश्य से संगठन के कार्यकर्ता उसमें अधिक से अधिक सदस्य संख्या दिखाना चाहते हैं ताकि लोग आकर्षित होकर इसके सदस्य बने। इसके लिये उन्होंने झूठी सदस्यता भी दिखाई है।

संगठन का कार्य कर्मचारियों की समस्याएँ सुलझाना है, लेकिन डाक विभाग में कर्मचारियों का जो संगठन है वह किसी भी कर्मचारी के व्यक्तिगत मामले (चाहे वह मामला विभाग से सम्बन्धित हो) पर विचार नहीं करता है। सामूहिक मामले पर ही यह विचार करता है। इसलिये यह पाया कि डाकिये इन संगठनों के सदस्य तो बन गये हैं किन्तु इसमें विशेष रुचि नहीं रखते। डाकियों के एक समूह ने तो इन संघों को बन्द करने की बात कही है, लेकिन कुछ डाकियों ने कहा कि यह संघ बना रहे किन्तु वे इसके सदस्य नहीं रहेंगे। इस प्रकार डाकिये इन संघों से तथा इनके कार्यों से असन्तुष्ट पाए गए।

इस प्रकार डाकिये संघों के विषय में विशेष जागरुक नहीं पाए गए हैं। यह देखा गया कि जब संघ की मीटिंग आदि होती है तो कुल संख्या का एक चौथाई भाग ही मीटिंग में उपस्थित रहता है उसमें भी बहुधा शहर के ही निवासी डाकिये होते हैं शेष डाकिये अपने कार्य के घण्टों के पश्चात अपने घर वापस चले जाते हैं।

यद्यपि भारत के अन्य सरकारी संस्थानों की सेवा में गिरावट के साथ ही डाक-सेवा में भी गिरावट आई है किन्तु इस विषय में डाक-विभाग का यह कहना है कि वह अत्यन्त घाटे में जनता की सेवा कर रहा है। महालेखाकार के हिसाब के अनुसार 1986-87 से 1990-91 के पाँच वर्ष में इस विभाग का कथन है कि 103 करोड़ रुपये की हानि थी तथा 1990-91 में 192 करोड़ रुपये की हानि है। 1986-87 से 1990-91 के पाँच वर्षों में इस विभाग की कुल आय 3487 करोड़ रुपये थी तथा कुल व्यय 4519 रुपये थी यानी 1032 करोड़ रुपये का घाटा रहा। डाक-विभाग का कथन है कि साधारण पोस्टकार्ड टिकट, लिफाफे आदि की बिक्री से 1990-91 के वर्ष में विभाग को 512 करोड़ रुपये मिला पर इस बिक्री में 118.3 करोड़ रुपये का घाटा रहा। घाटा इसलिये कि जो पोस्टकार्ड पन्द्रह पैसे का बेचा जाता है उसकी छपाई व कागज पर 127.3 पैसा खर्च होता है। प्रति पोस्टकाड़ पर 112 पैसे का घाटा है। इसी प्रकार रजिस्टर्ड पत्र, पार्सल आदि पर 819.79 पैसे का खर्च है पर जनता से 600 पैसा ही लिया जाता है। इस प्रकार डाक-विभाग की प्रत्येक सेवा में विभाग को अधिक घाटा उठाना पड़ रहा है।

डाक-विभाग का कहना है कि घाटे को पूरा करने के लिये अब अनेक सेवाओं में कटौती कर दी गई है। पहले पत्र की छँटाई ट्रेन में ही होती थी और सुविधानुसार पत्र अलग-अलग शहरों में वितरण के लिये भेज दिया जाता था। इससे डाक शीघ्र पहुँच जाती थी किन्तु अब पत्रों की छँटाई जिला मुख्यालय पर ही हो रही है जिससे पत्रों की छँटाई में विलम्ब हो रहा है। इससे जो पत्र तीन दिन में वितरित हो जाना चाहिए उसमें एक सप्ताह का समय लग रहा है।

इसके अतिरिक्त जो कर्मचारी अवकाश ग्रहण करते जा रहे हैं उनके स्थान पर नयी नियुक्तियाँ नहीं की जा रही हैं। इससे विभाग में कर्मचारियों पर कार्य का भार बढ़ता जा रहा है।

लेकिन पत्र के समय से वितरित न होने के लिए डाकियों को दोषी नहीं माना जा सकता, क्योंकि छँटाई के बाद डाक जब भी डाकियों को दी जाती है तो उसे वे वितरण हेतु तुरन्त ले जाते हैं और वितरित कर देते हैं।

डाक विभाग की सेवा में गिरावट के कारण जनता द्वारा अब प्राईवेट एजेन्सियों जैसे कोरियर सेवाओं की मदद ली जा रही है। यद्यपि शासन डाक-विभाग के अलावा और किसी माध्यम से डाक-सेवा के विरुद्ध है किन्तु महालेखाकार

1. The Times of India, Dated-23 Sept. 1992.

के अनुसार अब अधिक व्यक्ति अनेक पत्र वाहक एजेन्सियों से कार्य ले रहे हैं।

1898 के पोस्टल कानून के अनुसार निजी क्षेत्र में ऐसी सेवा पर पहले अपराध के रूप में 50 रुपये प्रति पत्र या वस्तु दण्ड होगा। दूसरी बार अपराध करने पर 500 रुपया प्रति पत्र दण्डनीय होगा, इधर डाकखाने की सेवा से इतना असन्तोष हो गया है कि सरकारी बैंक, सरकारी उद्योग आदि भी इस निजी सेवा से लाभ उठा रहे हैं, दण्ड देना तो दूर की बात है।

जनता की इन शिकायतों को दूर करने तथा अपने विभाग की छवि को उज्ज्वल बनाने के लिये डाक-विभाग ने डाक-सेवा को आधुनिक बनाने तथा आर्थिक दृष्टि से कम लागत में जनता को डाक सेवा सुलभ कराने के लिए एक समिति का गठन किया है। डाक विभाग के सचिव श्री एल0डी0 बोनेल ने 23 सितम्बर 1992 को यह घोषणा की है कि डाक-विभाग-बोर्ड के भूतपूर्व सदस्य श्री गुरचरन की अध्यक्षता में यह समिति गठित की गई है जो तीन/चार माह में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर देगी।

श्री बोनेल का कहना है कि यह समिति अगस्त 1992 में गठित की गई है जो यह भी अध्ययन करेगी कि 'इण्डियन पोस्टल एक्ट' में इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये किस प्रकार सुधार लाया जाय। इस कार्य के लिये यह समिति विभिन्न देशों के पोस्टल एक्ट का अध्ययन करेगी तथा डाक सेवा का प्रयोग करने वाली बड़ी-बड़ी कम्पनियों, व्यापारिक संस्थानों तथा औद्योगिक संस्थानों, कोरियर-सर्विसेज तथा अन्य प्रतिद्वन्दियों से सम्पर्क स्थापित करके उनके विचारों को ज्ञात करेगी। कमेटी की रिपोर्ट प्राप्त होने पर ही यह विचार किया जा सकेगा कि भारतीय डाक सेवाओं को व्यावसायिक आधार चलाया जाय या नहीं।

इस सम्बन्ध में डॉ0 जैम एसेन्डेनी- "यूनिवर्सल पोस्टल यूनियन" के डिप्टी डायरेक्टर जनरल ने बताया है कि विश्व के अन्य देशों की अपेक्षा भारत में डाक-सेवा अधिक सुचारू रूप से कार्य कर रही है। यहाँ गाँव आदि बहुत दूरी पर स्थित हैं जबकि यूरोपीय देशों में दूरियाँ बहुत कम हैं।

उनका कहना है कि भारत में डाक सेवा को अधिक सुचारू बनाने के लिये बम्बई और दिल्ली के मध्य 'Tracking and tracing system' पर विचार किया जा रहा है। इसके माध्यम से डाक वस्तुओं के एक स्थान से दूसरे स्थान तक आने जाने के दौरान उन पर कड़ी निगरानी रखी जा सकेगी।

बम्बई-दिल्ली के बीच परीक्षण करने के बाद इस नियम का विस्तार देश के अन्य भागों में किया जायेगा। यह व्यवस्था जापान, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड व विश्व के अन्य विकसित देशों में लागू है।

इस प्रकार इससे जनता की डाक-विभाग के प्रति शिकायतों को कम किया जा सकेगा और उन्हें डाक-वस्तुएँ समय से व सुरक्षित ढँग से प्राप्त हो जायेगी।



1. The Times of India, Dated-23 Sept. 1992.

सारांश

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध गोरखपुर प्रखण्ड व इसके उपप्रखण्डों के कुल 180 डाकियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति के अध्ययन पर आधारित है।

अध्ययन से स्पष्ट है कि डाकियों की आर्थिक दशा निम्न है जिससे उनकी सामाजिक स्थिति भी भिन्न बनी हुई है। अधिकांश उत्तरदाता ग्रामीण परिवेश के हैं। शहर में कार्य करने वाले उत्तरदाताओं का भी सम्पर्क गाँवों से बना हुआ है। डाकिये रहन-सहन से ग्रामीण प्रतीत होते हैं। उनमें परम्परावादिता विद्यमान है। इनमें से अधिकांश डाकियों के पिता कृषि व्यवसाय से ही सम्बन्धित रहे हैं किन्तु उन्होंने अपने पुत्रों को कृषि में न लगाकर नौकरी पेशे में लगाया है।

आधुनिकीकरण उन्हीं डाकियों का हो पाया है जिनके पिता शिक्षित रहे हैं तथा जिनके पिता की आय अच्छी रही है।

अधिकांश उत्तरदाताओं में परम्परावादिता विद्यमान है। उत्तरदाताओं में धार्मिक आस्था व विश्वास आज भी व्याप्त हैं। उनके द्वारा आज भी जातिगत नियमों का पालन किया जा रहा है, लेकिन शैक्षिक स्तर व जातिगत नियमों के पालन में सहचार पाया गया।

विवाह संस्था के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं की अभिवृत्ति को मिला-जुला माना जा सकता है। विवाह के कुछ पक्षों के सम्बन्ध में परिवर्तनशीलता की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर हुई है, जबकि कुछ के सन्दर्भ में आज भी परम्रागत मूल्यों को स्वीकार किया गया है। एक ओर विवाह की आयु में बढ़ोत्तरी के सम्बन्ध में आधुनिक मूल्यों को स्वीकार किया गया है तो दूसरी ओर विवाह संस्था की अनिवार्यता विवाह को जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध मानने तथा विवाह के धार्मिक स्वरूप को अपेक्षाकृत अधिक महत्व देने के सम्बन्ध में परम्रागत मूल्यों की ओर झुकाव भी परिलक्षित हुआ है।

परिवार के स्वरूप के सम्बन्ध में यह महत्वपूर्ण तथ्य उभरा है कि यद्यपि एकाकी परिवारों के प्रति उत्तरदाताओं में आकर्षण बढ़ा है किन्तु संयुक्त परिवार की स्वीकार्यता उनमें अभी बनी हुई है।

अध्ययन के अन्तर्गत अधिकांश उत्तरदाता हिन्दू हैं। इसमें समस्त उत्तरदाता विवाहित और शिक्षित हैं। इन्होंने अपने बच्चों की शिक्षा के प्रति जागरुकता प्रदर्शित की है। यद्यपि लड़के व लड़की दोनों की ही शिक्षा की आवश्यकता को स्वीकार किया गया है, परन्तु लड़कों की शिक्षा को किंचित अधिक महत्व दिया गया है।

सामाजिक जीवन से लम्बे समय तक जुड़े रहने के कारण प्रायः परम्पराएँ व रीति-रिवाज मानव-जीवन का अभिन्न अंग बन जाते हैं परन्तु सामाजिक

जीवन के लिये यह आवश्यक है कि समय के साथ-साथ इन परम्पराओं के प्रति समाज के दृष्टिकोण में परिवर्तन आए। लेकिन अध्ययन में स्पष्ट हुआ है कि अधिकांश डाकिये इनमें विश्वास अभी भी रखते हैं।

डाकियों को विभाग द्वारा मासिक वेतन के रूप में मिलने वाली आय अत्यन्त कम है, जिससे उनके रहन-सहन का स्तर अत्यन्त निम्न बना हुआ है। आर्थिक स्थिति निम्न होने के कारण ये हमेशा ऋण के भार से दबे हुए हैं। कभी-कभी समाज में सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिये अपनी सामाजिक स्थिति का दिखावा भी करते हैं। किसी प्रकार से वे अपने परिवार के लिये सुबह शाम के भोजन का प्रबन्ध कर पा रहे हैं।

डाकियों के कार्य की दशाएँ अत्यन्त कठिन है। उनके उत्तरदायित्व को देखते हुए विभाग द्वारा उन्हें जो सुविधाएँ प्रदान की जा रही है वे अपर्याप्त हैं।

डाकिये अपने समान व समकक्ष अन्य विभागों के सहकर्मियों से अपनी तुलना करने पर स्वयं को सामाजिक व आर्थिक दृष्टिकोण से निम्न पाते हैं। अब सभी जाति व समुदाय के व्यक्ति समय की माँग के अनुसार परम्परागत पेशे को छोड़कर नौकरी पेशे को अपना रहे हैं। हमारे अध्ययन से भी यह तथ्य स्पष्ट हुआ है; लेकिन जहाँ तक वर्तमान पेशे से सन्तुष्टि का प्रश्न है, डाकिये इससे संतुष्ट नहीं हैं। यही कारण है कि डाकिये अपने पुत्रों को इस पेशे में नहीं लाना चाहते हैं।



सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

1. **Agrawal A.N.**— 1948- Indian Labour Problems, Kitab Mahal, Allahabad.
2. **Agrawal S.N.**— 1962- Attitude Towards Family Planning in India, Asia Publishing House, Bombay.
3. **Allen V.L.**— 1960- Trade Unions and Government Longman, Green and Co. London.
4. **Anthony Heath**— 1981- Social Mobility Colline Sons and Co. Ltd.
5. **Ascoff R.L.**—1952- Designs of Social Research, Cambridge University Press, London.
6. Autobiography of Jawaher Lal Nehru.
7. **Bagley W.A.**— 1960- Facts and How to Find Them, Qitman Publishing House.
8. **Bajpai S.R.**— 1972- Methods in Social Survey and Research Kanpur.
9. **Benedix**— Tradition and Modernity Reorganized.
10. **Bhagawandas**— The Science of Social Organization Vol. I
11. **Blumer Herbert**— 1964- Sociology and Social Research, Chicago University Press, Chicago.
12. **Bogradus E.S.**— Sociology.
13. **Bose S.N.**— 1957- Indian Labour Code, Eastern Law Book House, Calcutta.
14. **Bottomore T.B.**— 1974- Sociology Macmillan London.

    Brown— Sociology
15. **Burges E.M.**— 1949- Research Methods in Sociology Chicago University Press, Chicago.
16. **Burgess E.W. & Locks H.J.**— 1926- The Family, American Book, Company, New York.
17. **Davis Kingsley**— 1956- Human Society, Mc Millan & Co. New York.
18. **Dak-Tar (Patrika)**— June 1986.
19. **Dak-Tar (Patrika)**— July 1986.
20. **Desai I.P.**— 1964- Some Aspects of Family in Mahuva, Asia Publishing House, Bombay.
21. **Desai A.B.**— 1961- Rural Sociology in India Bombay.
22. **Eales J.R.**— 1973- Fundamentals of Safety Education, McMillan & Co. New York.
23. **Fairchild**— Dictionary of Sociology.
24. **Festinger & Katz**— Methods in Behavioural Sciences.
25. **Gardner W. & Tylor P.**— 1975- Health at Work Association Business Programmes, London.
26. **Ghosh S.T.**— 1960- Trade Unionism in Under Developed Countries, Bookiand, Calcutta.
27. **Ghurye G.S.**— 1963- Caste Class in India, Popular Book Depot. Bombay.

28. **Glass D.V.**— 1950- Social Mobility in Britain Routledge and Kegan Paular Prakashan Bombay.
29. **Goode, W.J.**— 1975- The Family, Prentice Hall of India, Pvt. Ltd. New Delhi.
30. **Goode W.J. & Hatt P.F.**— 1952- Methods in Social Research Mc Graw Hill Book Co. New York.
31. **Gore M.S.**— Urbanisation and Family Change. Gorphilex - 87
32. **Gouldner, A.W.**— 1970- The Comming Crisis of Western Society. Heinemann, London.
33. **Green A.W.**— Sociology.
34. **Gupta G.R.**—Family and Social Change in Modern India Vikas Publishing, New Delhi.
35. **Gorphilex**— 1987
36. **Huttum J.H.**— Caste in India.
37. **Hoppock R.**— 1935- Job Satisfaction, Harper & Bross, New York.
38. **Hughes E.**— 1965- The Study of Occupation, Harper and Row, New York.
39. **Kartik V.B.**— 1960- Indian Trade Unions, Manaktales, Bombay.
40. **Karve Irawati**— Kinship Organization in India.
41. **Kane P.V.**— History of Dharma Shastra.
42. **Kapadia K.M.**— 1956- Marriage and Family in India; Oxford University Press, London.
43. **Kendravani**— P. & T. Training centre, Saharanpur, July-Sep. 1986.
44. **Koing Sammuel**— Sociology.
45. **Lipset S.M. & Benedix R.**— 1977- Social Mobility in Industrial Society, University of California Press.
46. **Lundberg G.**— 1950- Social Research, Oxford University Press, London.
47. **Mac Iver and Page**— Society.
48. **Majumdar D.N.**— 1950- Races and Cultures in India, Asia Publishing House Bombay.
49. **Mannheim**— Ideology and Utopia.
50. **Mann P.H.**— Methods of Social Enquiry.
51. **Mandelhauin D.G.**— 1963- The Society in India, University of California Press.
52. **Martindale D. & E. Monachesi**— 1951- Elements of Sociology, Harper and Bros, New York.
53. **Merchant K.T.**— Changing News on Marriage and Family.
54. **Mukerjee R.K.**—.1951- The Indian Working Class, Hind KitabLimited, Bombay.
55. **Myrdal Gunnar**— 1970- The Challenge of World Poverty.
56. **Nanda R.A.**— 1949- The Family, its Functions and Destiny, Harper, New York.
57. **Odaka K.**— 1950- Occupation and Stratification, Tokyo.
58. **Pannikar K.N.**— Hindu Society at Cross Road.

59. **Pearson Karl**— The Grammar of Science and C.B.L.
60. **Pibram Karl**— Encyclopeadia of the Social Sciences.
61. Post office Guide, part I Deptt. of Posts, India, 1986.
62. **Prabhu P.H.**— 1963- Hindu Social Organisation Popular Prakashan, Bombay..
63. **Prasad N.**— Caste System.
64. **Punekar S.D. & Punekar M.**— 1967- Trade Union Leadership in India, Lalvani, Publishing House, Bombay.
65. P. & T. Man. Vol. VIII.
66. P. & T. Man. Vol. VI.
67. **Radhakrishnan S.** — 1927- Religion and Society, Allenond Union, London.
68. **Ramaswamy E.A.**— The Worker and his Unions.
69. **Risley**— 1915- The People of India, Oxford University Press, London.
70. **Saiyadin K.C.**— Problem of Educational Reconstruction, Asia, Publishing House, Bombay.
71. **Saxena R.N.**— 1968- Sociology, Social Research and Social Problems in India.
72. **Selitz, Johoda & others**— 1959- Research Methods in Social Relations, Halt, Rinehart and Winston Inc. New York.
73. **Sidney and Beatrice webb**— History of Trade Unionism.
74. **Sriniwas M.N.**— 1952- Religion and society among South India, Oxford University.
75. **Srivastava K.V.**— 1960- Indian Village, Asia Publishing House, Bombay.
76. **Swamy's Hand book**— 1982.
77. The Report on Royal Commission on Labour 1931.
78. The Report of the Middle Class Family Budget by Govt. of India.
79. The Environmental Hygiene Committee. Report of 1949, quoted in S.C. Agrawala's Industrial Housing in India, Roxy Press, New Delhi, 1952.
80. U.P. Postal Circle News Letter-Vol.-4 July-Sep. 1984.
81. U.P. Postal Circle News Letter Jan-March. 1985.
82. U.P. Postal Circle News Letter Jan-March. 1987.
83. **Westermark**— The History of Human Marriage.
84. **Young P.V.**— 1975- Scientific Social Surveys and Research, Prentico Hall of India, Pvl. Ltd. new Delhi.
85. ब्लिट्ज होली विशेषांक, 20 मार्च 1973.
86. **डाक संलाप**— उत्तर प्रदेश डाक-परिमण्डल परिवार की पत्रिका जुलाई-अक्टूबर 1987.
87. **डाक संलाप**— अप्रैल-जून 1987.
88. **डाक संलाप**— उत्तर प्रदेश डाक परिमण्डल परिवार की पत्रिका (विश्व डाक दिवसविशेषांक) दिनांक - 9.10.87
89. **भारतीय डाकघर**— रोचक इतिहास व विकास - रत्न प्रकाश शील।
90. **केन्द्र वाणी (पत्रिका)**— डाक-तार प्रशिक्षण केन्द्र, सहारनपुर, 1986.